इतिहास के आइने में
नवाङ्गी टीकाकार
अभयदेवसूरिजी का गच्छ

*** देवलोक से दिव्य सानिध्य ***

प.पू. गुरुदेव श्री जम्बूविजयजी महाराज

*** मार्गदर्शन ***

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी

*** संपादक ***

भूषण शाह

*** प्रकाशक/प्राप्ति स्थान ***

मिशन जैनत्व जागरण

'जंबूवृक्ष' सी/504, श्री हरि अर्जुन सोसायटी,
चाणक्यपुरी ओवर ब्रिज के नीचे,
प्रभात चौंक के पास, घाटलोडीया
अहमदाबाद -380061
मो. 09601529519, 9429810625
E-mail -shahbhushan99@gmail.com

इतिहास के आइने में नवाङ्गी टीकाकार आ. अभयदेवसूरिजी का गच्छ

© संपादक एवं प्रकाशक

* प्रतियाँ : 2000
* मूल्य : 100 ₹
* प्रकाशन वर्ष : वि. सं. 2074, ई. सं. 2018
* संशोधन वर्ष : वि. सं. 2074, ई. सं. 2018

* प्राप्ति स्थान *

'मिशन जैनत्व जागरण' के सभी केन्द्र

अहमदाबाद
101, शान्तम् एपार्ट.
हरिदास पार्क,
सेटेलाइट रोड,
अहमदाबाद

मुंबई
हेरत मणियार
ए/11 , ओम जोशी एपार्ट
लल्लुभाई पार्क रोड,
ऐंजललेंड स्कूल के सामने
अंधेरी (वेस्ट) मुंबई

लुधियाना
अभिषेक जैन,
शान्ति निटवेर्स
पुराना बाजार
लुधियाना (पंजाब)

जयपुर (राज.)
आकाश जैन
ए/133, नित्यानंद नगर
क्वीन्स रोड, जयपुर

भीलवाड़ा (राज.)
सुनिल जैन (बालड़)
सुपार्श्व गृह जैन मंदिर के पास
जमना विहार-भीलवाड़ा

उदयपुर (राज.)
अरुण कुमार बडाला
अध्यक्ष अखिल भारतीय
श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक
युवक महासंघ उदयपुर शहर
427-बी, एमराल्ड टावर,
हाथीपोल,
उदयपुर-313001 (राज.)

नाशिक (महा.)
आनंद नागशेठिया
641, महाशोबा लेन
रविवार पेठ,
नाशिक (महा.)

Bangalore
Premlataji Chauhan
425, 2nd Floor,
7th B Main, 4th Block
Jaynagar, **Bangalore**

आग्रा (उ.प्र.)
सचिन जैन
डी-19, अलका कुंज
खावेरी फेझ-2
कमलानगर - आग्रा

Chennai
Komal Shah
B-13,kent apts,
26 Ritherdon rd, Vepery,
Chennai - 600007

* पत्र प्राप्त होने पर प्रस्तुत पुस्तक पू. साधु-साध्वी भगवंतों को भेंट स्वरूप भेजी जाएगी। * आवश्यकता न होने पर पुस्तक को प्रकाशक के पते पर वापस भेजने का कष्ट करें। * आप इसे Online भी पढ़ सकते हैं.... www.jainelibrary.org. पर। * पुस्तक के विषय में आपके अभिप्राय अवश्य भेजें। * पोस्ट से या कोरियर से मंगवाने वाले प्रकाशक के एड्रेस से मंगावा सकते हैं।

* मुद्रक : ममता क्रियेशन, मुंबई (77384 08740)

ग्रंथ समर्पण

प्रस्तुत ग्रंथ चांद्रकुलीन
नवांगी टीकाकार
आ. अभयदेवसूरिजी म.सा.,
एवं
संवेगरंगशाला के कर्ता
आ. जिनचंद्रसूरिजी म.सा.
को

सादर समर्पित

भूषण शाह

अनुक्रमणिका

क्र.		पृष्ठ.
1.	भूमिका	6
2.	नवाङ्गी टीकाकार आ. अभयदेवसूरिजी का संक्षिप्त परिचय	11
3.	इतिहास के आइने में अभयदेवसूरिजी का गच्छ!!	13
4.	जिनेश्वरसूरिजी एवं उनके शिष्यों के उल्लेख	14
5.	प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों के उल्लेख	18
6.	खरतरगच्छ के सहभावी रुद्रपल्लीय गच्छ एवं अन्य गच्छीय ग्रंथों के उल्लेख	19
7.	इतिहास विशेषज्ञों के उल्लेख	21
8.	12वीं शताब्दी के प्रक्षिप्त पाठ एवं जाली लेख!!!	22
9.	पुरातत्त्वाचार्य जिनविजयजी के उल्लेख	31
10.	सं. 1080 में दुर्लभराजसभा की कसौटी	36
11.	इतिहास में बढा एक और विसंवाद	36
12.	क्या जिनेश्वरसूरिजी और सूराचार्य मिले थे ?	37
13.	'खरतर' शब्द का अर्थ और बिरुद के रूप में विरोधाभास	39
14.	'खरतर' शब्द की प्रवृत्ति कब और किससे ?	43
15.	उपाध्याय सुखसागरजी का उल्लेख!!!	44
16.	'जैनम् टुडे' के लेख की समीक्षा	45
17.	सं. 1617 के मत-पत्र की समीक्षा	48
18.	आ. जिनचंद्रसूरिजी एवं अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे!!!	52
19.	क्या खरतरगच्छ अभयदेवसूरि संतानीय है ?	53
20.	पं. कल्याणविजयजी का महत्त्वपूर्ण लेख !!!	56
21.	अभयदेवसूरिजी एवं खरतरगच्छ में मान्यता भेद!!!	64
22.	अभयदेवसूरिजी की शिष्य-परंपरा में कौन ?	66
23.	मिली इतिहास की नयी कड़ी!!!	68
24.	अंतिम निष्कर्ष एवं हार्दिक निवेदन...	79

परिशिष्ट–1
25. दुर्लभराजा का समय निर्णय 81

परिशिष्ट–2
26. प्रभावक चरित्र का उल्लेख 83
27. 'सम्यक्त्व सप्ततिका' की टीका का उल्लेख 89

परिशिष्ट–3
28. जिनेश्वरसूरिजी एवं उनके शिष्य आदि के उल्लेख 92

परिशिष्ट–4
29. इतिहासप्रेमी ज्ञानसुन्दरजी म.सा. के ऐतिहासिक प्रमाणों से युक्त अभिप्राय 116

परिशिष्ट–5
30. खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह... 119
31. खरतरगच्छ का लेख तो सही! परंतु सं. 1234 का नहीं (सं. 1534 का है, उसकी सिद्धि) 138

परिशिष्ट–6
32. रुद्रपल्लीय गच्छ खरतरगच्छ की शाखा नहीं है। 140

परिशिष्ट–7
33. निष्पक्ष इतिहासकार पं. कल्याणविजयजी का ऐतिहासिक उपसंहार 145

परिशिष्ट–8
34. जिनपीयूषसागरसूरिजी के पत्र एवं उनकी समीक्षा 148

भूमिका

''उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा'' इस त्रिपदी को प्राप्त करके अंतर्मुहूर्त में गौतमस्वामी आदि 11 गणधर भगवंतों ने द्वादशांगी की रचना की। परमकृपालु परमात्मा महावीर स्वामी ने गणधर भगवंतों पर वास निक्षेप करके उनकी द्वादशांगी को प्रमाणित किया तथा उसके साथ में उन्हें द्रव्य-गुण-पर्याय से तीर्थ (शासन) चलाने की अनुज्ञा देकर तीर्थ (शासन) की स्थापना की।

करीबन् 2573 वर्ष पहले स्थापित किये गये श्रुत और चारित्र रूपी दो पहियों वाले इस जिनशासन को आचार्यों की परंपरा वहन करती आ रही है। दुःषमकाल एवं भस्मग्रह के दुष्प्रभाव के कारण उत्पन्न हुई विकट परिस्थितियों में भी चारित्राचार एवं श्रुतज्ञान की सुरक्षा हेतु अथाग पुरुषार्थ करना पड़ा था।

दुष्काल आदि के कारण विस्मृत प्रायः एवं त्रुटित होने लगे सूत्रों को संकलित करने के प्रयास भद्रबाहुस्वामी, खारवेल चक्रवर्ती, स्कन्दिलाचार्य तथा नागार्जुनाचार्य आदि के समय में किये गये थे, ऐसे उल्लेख मिलते हैं।

सूत्र रक्षा का अंतिम महत्त्वपूर्ण प्रयास, वीर निर्वाण 980 में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने आगमों को पुस्तकारूढ़ करवाकर किया था।

सूत्रों की सुरक्षा की तरह उनके अर्थों की सुरक्षा करना उससे भी कठिन कार्य था, क्योंकि अर्थ का विस्तार सूत्र से भी ज्यादा था। सूत्रों की तरह अर्थ भी मौखिक परंपरा से सुरक्षित रखे जाते थे। पहले सामान्य अर्थ दिया जाता था, बाद में आचार्य सूत्रों के अर्थों को अपनी-अपनी शैली से समझाते थे, वह 'निर्युक्ति' कही जाती थी, उसके बाद अन्त में नय-निक्षेप, सप्तभंगी तथा चार अनुयोगों से परिपूर्ण उसी सूत्र का संपूर्ण अर्थ शिष्य को दिया जाता था*। शिष्यों की मेधाशक्ति क्षीण होती देख आर्यरक्षित सूरिजी ने हर सूत्र पर चार अनुयोग करने की पद्धति को बदलकर सूत्रों पर नियत अनुयोग का ही उपयोग करने स्वरूप अनुयोगों का पृथक्करण करके अर्थों को ग्रहण करने एवं याद रखने में सुगमता प्रदान की।

निर्युक्ति साहित्य में भद्रबाहुस्वामीजी की निर्युक्तियाँ प्रसिद्ध एवं प्रचलित बनी। जो प्राकृत भाषा में निबद्ध है। जब निर्युक्तिओं से अर्थ को याद रखना दुष्कर हो गया था तथा जिनशासन में लेखन कार्य प्रचलित हो गया था, तब जिनभद्रगणि

---

* सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ णिज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य णिरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे
(नंदीसूत्र तथा भगवती सूत्र-शतक -25, उद्देश - 3)

क्षमाश्रमण, संघदासगणिजी, जिनदासगणिजी महत्तर, आदि पूर्वाचार्यों ने भाष्य एवं चूर्णियों की रचना करके सूत्रों के अर्थ को सुगम एवं सुव्यवस्थित किया। यह साहित्य प्राकृत एवं कहीं-कहीं पर संस्कृत मिश्र भी पाया जाता है।

सूत्रों के अर्थ को सुग्राह्य एवं चिरस्थायी बनाने हेतु संस्कृत में टीका रचने का महान उपक्रम भी आचार्यों ने किया, जिसमें सर्वप्रथम गन्धहस्तिसूरिजी ने 11 अंगों पर टीकाएँ बनायी थी, ऐसा हिमवंत स्थविरावली से पता चलता है। वर्तमान में उनकी एक भी टीका नहीं मिलती है।

आवश्यकनिर्युक्ति गा. 3 की व्याख्या करते हुए हरिभद्रसूरिजी ने आचाराङ्ग (1 अ. 4 उद्देश) की टीका का उद्धरण दिया है। यह पाठ चूर्णि से मेल नहीं खाता है, अतः अनुमान किया जाता है कि उनके सामने गन्धहस्तिजी की टीका रही होगी, क्योंकि शीलाङ्काचार्यजी तो हरिभद्रसूरिजी के बाद में हुए थे।

गन्धहस्तिसूरिजी के बाद, 10वीं शताब्दी में (वि.सं. 933) शीलाङ्का-चार्यजी हुए। उन्होंने भी गन्धहस्तिसूरिजी एवं अन्य आचार्य की टीका के आधार से अंगों पर टीकाएँ लिखने का प्रयास किया था।[*1] परन्तु, विक्रम की 12वीं शताब्दी की शुरुआत तक तो मेधाशक्ति की हानि, दुष्काल तथा विषम राजकीय परिस्थिति आदि कारणों से संरक्षण नहीं हो पाने से आगमों के अर्थ की परंपरा विच्छिन्न प्रायः हो गयी थी। अतः सूत्र भी दुर्बोध हो गये थे।[*2]

ग्यारह अंगों में से आचारांग एवं सूयगडांग इन दो अंगों पर ही शीलांका-चार्यजी की टीकाएँ उपलब्ध थी। शेष 9 अंगों के अर्थ, प्राप्त परंपरा एवं स्वयं के क्षयोपशम के अनुसार गुरु-भगवंतों के द्वारा यथाशक्य दिये जाते थे। स्थानाङ्ग

---

*1 अयञ्च श्लोकश्चिरन्तनटीकाकारेण न व्याख्यातः। तत्र किं सुगमत्वात् उताभावात्, सूत्रपुस्तकेषु तु दृश्यते तदभिप्रायञ्च वयं न विद्मः। (आचारांग प्रथम श्रुतस्कंध अ. 9, उद्देश-2, श्लो.-1 टीका)

प्रथम अध्ययन पर ही गन्धहस्ति टीका होने का शीलांकाचार्यजी ने अध्ययन 1 और 2 में उल्लेख किया है तथा नौवें अध्ययन में पुनः प्राचीन टीकाकार को सूचित किया है, **अतः स्पष्ट होता है कि उनके पास गन्धहस्ति के सिवाय अन्य टीका भी मौजूद थी।**

*2 समये तत्र दुर्भिक्षोपद्रवैर्देशदौस्थ्यतः।
सिद्धान्तस्त्रुटिमायासीदुच्छिन्ना वृत्तयोऽस्य च ।।101।।
ईषत्स्थितं च यत्सूत्रं प्रेक्षासुनिपुणैरपि।
दुर्बोधदेश्यशब्दार्थं खिलं जज्ञे ततश्च तत् ।।102।।
(प्रभावकचरिते 19, अभयदेवसूरि चरितम्)

आदि इन अंगों पर सुव्यवस्थित एवं रहस्य उद्घाटन करने वाली विशद टीका का अभाव था।*1

ऐसी परिस्थितिओं में शासनहितैकलक्षी, प्रकाण्ड विद्वान एवं शास्त्रपारगामी ऐसे एक महापुरुष ने शासनदेवी की विनंति स्वीकार करके विकट परिस्थितिओं*2 में भी उत्सूत्र प्ररुपणा से बचने हेतु पूर्ण सावधानी पूर्वक उपलब्ध प्राचीन टीकाओं के त्रुटित अंशों के आधार पर स्थानाङ्गादि नौ अंगों पर सुगम एवं विशद टीकाओं की रचना करके जिनशासन की विच्छिन्न होती आगमों की अर्थ परंपरा को चिरस्थायी बनाने का महत्तम एवं अनुपम कार्य किया। **उन महापुरुष का नाम था आचार्य अभयदेवसूरिजी, जो जिनशासन में 'नवाङ्गीटीकाकार' के नाम से प्रसिद्ध हुए।**

जिस प्रकार देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने आगम लेखन करवाकर सूत्रों को चिरस्थायी बनाने का अद्वितीय कार्य किया था, उसी तरह नव अङ्गों की नष्ट होती अर्थ परंपरा को चिरस्थायी बनाकर जिनशासन की अनुपम सेवा का कार्य नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरिजी ने किया था।

ऐसे महापुरुषों से संबंध रखती हर वस्तु, धन्यता का अनुभव करती है। पू. आनन्दघनजी महाराज ने भी 15वें भगवान की स्तवना में कहा है–

''धन्य ते नगरी, धन्य वेला घड़ी, मात–पिता कुल वंश, जिनेश्वर...।''

अतः नवाङ्गीटीकाकार जैसे महान ज्योतिर्धर जिस गच्छ या परंपरा में हुए थे, वह गच्छ भी गौरवान्वित बन जाता है, यह स्वाभाविक है। परंतु इतिहास का विशेष ज्ञान न होने के कारण 'अभयदेवसूरिजी किस गच्छ के थे'? इसका कईं लोगों को पता नहीं था। ऐसी परिस्थिति में प्राचीनकाल में एक बात का भारपूर्वक

---

*1. विविधार्थरत्नसारस्य देवताधिष्ठितस्य विद्याक्रियाबलवताऽपि पूर्वपुरुषेण कुतोऽपि कारणाद् अनुन्मुद्रितस्य स्थानाङ्गस्य उन्मुद्रणमिवानुयोगः प्रारभ्यते।

(स्थानाङ्ग टीका के प्रारंभ में)

*2. सत्सम्प्रदायहीनत्वात् सदूहस्य वियोगतः।
सर्वस्वपरशास्त्राणामदृष्टेरस्मृतेश्च मे।।1।।
वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धितः।
सूत्राणामतिगाम्भीर्यान्मतभेदाश्च कुत्रचित्।।2।।
क्षूणानि सम्भवन्तीह, केवलं सुविवेकिभिः।
सिद्धान्तानुगतो योऽर्थः, सोऽस्माद् ग्राह्यो न चेतरः।।3।। (स्थानाङ्ग वृत्ति प्रशस्ति)

प्रचार किया गया था और वर्तमानकाल में भी किया जा रहा है[*1] कि-'वि. सं. 1080 में पाटण में दुर्लभ राजा की राजसभा में चैत्यवासियों से हुए वाद में विजय की प्राप्ति के उपलक्ष्य में जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद मिला था। अतः उनकी परंपरा में हुए अभयदेवसूरिजी भी खरतरगच्छ के ही थे।

ऐसे प्रचार के कारण कई लोग अभयदेवसूरिजी को खरतरगच्छीय मानते थे और मानने लगे हैं।

इतिहास तो इतिहास होता है, उसे न तो बदला जा सकता है और ना ही झुठलाया जा सकता है। परंतु, यह कुदरत का नियम है कि जिसका प्रबल प्रचार के द्वारा तथा ठोस प्रमाणों के आधार से निराकरण नहीं किया गया हो, ऐसा गलत इतिहास भी प्रचार के माध्यम से सरल और भोली जनता तथा धीरे-धीरे विद्वद् समाज में भी मान्यता को प्राप्त कर लेता है।

ऐसा ही अभयदेवसूरिजी के गच्छ के विषय में हुआ है। एक वर्ग ऐसा है जो उन्हें चान्द्रकुलीन मानता है, तथा दूसरा उन्हें खरतरगच्छीय कहता है। इतना ही नहीं वर्तमान में तो अभयदेवसूरिजी की तरह, संवेगरंगशाला के कर्ता जिनचंद्रसूरिजी को खरतरगच्छीय माने या नहीं, इसमें भी विवाद चल रहा है।

उसके विषय में पू.आ. जिनपीयूषसागरसूरिजी का पत्र प.पू. गच्छाधिपति आ. जयघोषसूरिजी म.सा., अन्य आचार्यादि एवं मेरे ऊपर भी आया था। उसका जवाब गच्छाधिपति के आदेश से मैने उनको अनेक प्रमाणों के साथ भेज दिया था। मेरे भेजे हुए प्रमाणों पर अपने विचार दर्शाये बिना पुनः 'संवेगरंगशाला के कर्ता आ. जिनचंद्रसूरिजी खरतरगच्छीय ही थे' इस प्रकार अपनी उसी बात को पुनः दोहराता हुआ पत्र पू. गच्छाधिपति आ. जयघोषसूरिजी म.सा. को भेजा गया। जिसकी प्रतिलिपी मेरे ऊपर भी आयी थी।

इतिहास के विषय में मेरा कार्य चालु होने से उसका उत्तर देने का गच्छाधिपति की ओर से पुनः आदेश आया। अतः मैने दोनों पत्रों का सूक्ष्म अवलोकन किया। उनके दोनों पत्र ठोस एवं ऐतिहासिक प्राचीन प्रमाणों से युक्त नहीं थे।[*2] तथा उसी

---

*1. 'खरतरगच्छ का उद्भव' और 'जैनम् टुडे' अंक-अगस्त 2016 के पृ. 13 का लेख (जिनपीयूषसागरसूरिजी)
एवं खरतरगच्छ सम्मेलन संबंधित 'श्वेताम्बर जैन' का जून 2016 के विशेषांक में दिया हुआ मुनिश्री मनितप्रभसागरजी का 'खरतरगच्छ का गौरवशाली इतिहास' लेख।

*2. दोनों पत्र एवं उनकी समीक्षा के लिए देखें परिशिष्ट-8

दरमियान आचार्य श्री द्वारा 'जैनम् टुडे' अगस्त, 2016 के अंक में 'पू. अभयदेव सूरिजी खरतरगच्छीय ही थे' इस प्रकार के प्रचार हेतु लेख दिया गया था तथा अभी-अभी ''खरी-खोटी'' नाम की पुस्तिका छपी है, जिसके परिशिष्ट में भी यह लेख दिया गया है।

इस प्रकार मेरे सामने अभयदेवसूरिजी और जिनचंद्रसूरिजी संबंधी प्रश्न उपस्थित हुए थे, जिनका उत्तर देना जरुरी था।

अभयदेवसूरिजी और जिनचंद्रसूरिजी गुरुभाई थे। जिस गच्छ के अभयदेवसूरिजी थे, उस गच्छ के ही जिनचंद्रसूरिजी थे। अभयदेवसूरिजी के गच्छ के विषय में निर्णय हो जाने पर संवेगरंगशाला के कर्त्ता जिनचंद्रसूरिजी के गच्छ का निर्णय भी हो जाएगा। अतः वास्तव में **नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरिजी कौन से गच्छ के थे? तथा क्या वे खरतरगच्छ के कहलाने चाहिये या नहीं?** विषय में निर्णय हेतु प्राचीनतम प्रमाणों के आधार से ऐतिहासिक संशोधन करना जरुरी लगा।

ऐतिहासिक प्रमाणों के मंथन से प्राप्त सार स्वरूप सत्य इतिहास सभी को प्राप्त होवे इस हेतु यह **ऐतिहासिक शोध प्रबंध** प्रगट किया जा रहा है। जनसामान्य एवं संक्षेपरूचि जीवों की रूचि बनी रहे, इस हेतु से मूल लेख में प्रमाणों का केवल सूचन ही किया है, उनका संदर्भ ग्रंथ-पाठ सहित विश्लेषण पीछे के परिशिष्टों में दिया है। विशेषार्थी एवं विद्वज्जन उसका अवश्य अवलोकन करें ऐसा नम्र निवेदन है।

प्रस्तुत किये गये ऐतिहासिक शोध प्रबंध में सत्य इतिहास को ही प्रगट करने का उद्देश्य है, अतः मध्यस्थता से इसका अध्ययन करके एक महान ज्योतिर्धर के इतिहास को न्याय देवें, ऐसी वाचक वर्ग से अभ्यर्थना।

सत्य को प्रगट करने के साथ-साथ किसी की भावना को ठेंस न पहोंचे उसका ध्यान रखा गया है, फिर भी किसी को मनदुःख हुआ हो ता क्षमा करें। जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ लिखा गया हो तो.....

मिच्छा-मि-दुक्कड़म्...

ता. क. :- अगर कोई ऐतिहासिक त्रुटि ध्यान में आवे तो अवश्य सूचन करें ताकि उसे सुधारा जा सके।

"नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरिजी" का संक्षिप्त परिचय

मालवदेश में धारा नगरी थी। वहाँ पर भोज राजा का राज्य चल रहा था। महीधर नाम का न्याय संपन्न, धनवान व्यापारी निवास करता था। धनदेवी नाम की उसकी पत्नी थी। सं. 1072 में शुभ नक्षत्रों के योग में शुभ लक्षणों से सुशोभित तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ। सौम्य आकृति से सबको अभय देनेवाले उस पुत्र का नाम 'अभयकुमार' रखा गया।

एक बार विहार करते हुए आ. श्री जिनेश्वरसूरिजी धारा नगरी में पधारे, उनका वैराग्यमय उपदेश सुनकर वैराग्य वासित हुए बाल-अभयकुमार ने सं. 1077 /1080 में छोटी उम्र में ही माता-पिता की अनुमति लेकर दीक्षा ली। गुरुकुलवास में ग्रहण-आसेवन शिक्षा पूर्वक आगम-शास्त्रों का अध्ययन किया। ज्ञान और क्रिया में प्रवीण बने हुए जानकर गुरुदेव ने सं. 1088 में उन्हें आचार्य पदवी दी और वे 'अभयदेवसूरि' के नाम से विख्यात हुए।

कालक्रम से विच्छिन्न हुए अंग शास्त्रों के व्याख्या साहित्य के पुनरुद्धार हेतु शासनदेवी ने उन्हें प्रार्थना की। आचार्य श्री ने भी पूर्ण संविग्नता, सावधानी, भवभीरूता, पूर्वापर शास्त्रों के अनुसंधान पूर्वक टीकाओं की रचना की। तथा क्षति न रह जावे उस हेतु तत्कालीन समर्थ विद्वान और शुद्ध प्ररूपक ऐसे चैत्यवासी संघ के प्रमुख द्रोणाचार्यजी और उनके विद्वद् शिष्यमंडल के पास उनका संशोधन करवाया। इतना ही नहीं उनके इस कार्य में तत्कालीन संविग्न विहारी अजितसिंहसूरिजी के विद्या और क्रियाप्रधान शिष्य यशोदेवगणिजी का अद्भूत योगदान रहा था। इन टीकाओं का रचना काल प्रायः सं. 1120 से 1128 के बीच का था।

आ. अभयदेवसूरिजी ने नौ अंगों पर टीकाओं की रचना की थी, अतः वे **'नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरिजी'** के नाम से प्रसिद्ध हुए।

दीर्घकाल से चल रहे आयंबिल तप, रात्रि जागरण और अतिश्रम के कारण कर्मवशात् उन्हें कोढ़ रोग हुआ और अज्ञानी लोग उन पर उत्सूत्र भाषण का दोषारोपण करने लगे। तब आचार्यश्री ने शासनदेव धरणेन्द्र का ध्यान किया। दैवी सूचना अनुसार 'जयतिहुयण' स्तोत्र की रचना द्वारा स्तंभन पार्श्वनाथ भगवान को प्रगट किये। उनके स्नात्र-जल से आचार्यश्री का कोढ़-रोग शांत हुआ और जिनशासन की महती प्रभावना हुई।

अभयदेवसूरिजी ने वर्धमानसूरिजी को अपनी पाट-परंपरा सौंपी और आत्म-

साधना में लीन बने। सं. 1135/1139 में आचार्यश्री ने पाटण में (मतांतर से कपडवंज में) अनशन ग्रहण किया और समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए।

आचार्यश्री ने अंग साहित्य के अलावा अन्य ग्रंथों की टीकाओं की रचना भी की थी तथा स्वतन्त्र रूप से ग्रंथों की रचना भी की थी। उन सब की सूचि इस प्रकार है–

1) ठाणांगसुत्त–टीका – ग्रंथाग्र : 14250
2) समवायांग–टीका – ग्रंथाग्र : 3575
3) विवाहपण्णत्तिसुत्त–टीका – ग्रंथाग्र : 18616
4) नायाधम्मकहाओ–टीका – ग्रंथाग्र : 4252 (3800)
5) उवासगदसांग–टीका – ग्रंथाग्र : 900
6) अंतगडदसांग–टीका – ग्रंथाग्र : 1300
7) अणुत्तरोववाइदसांग–टीका – ग्रंथाग्रः 100
8) पण्हावागरणअंग – टीका ग्रंथाग्र : 4600
9) विवागसुय–टीका – ग्रंथाग्र : 900
10) उववाइसुत्तं–टीका – ग्रंथाग्र : 3125
11) पन्नवणासुत्तं, तइयपयसंग्गहणी, गाथा : 133
12) हारिभद्रीय पंचाशक – टीका
13) छट्ठाणपगरण (जिणेसरीय) भाष्य
14) पंचणिग्गंथी पगरणं
15) आराहणाकुलयं
16) जयतिहुअणथयं
17) आ. जिनचंद्रकृत नवतत्त्वप्रकरण भाष्यवृत्ति
18) सत्तरी – ग्रंथभाष्य
19) महावीरथयं (जइज्जासमणो) (जैनस्तोत्रसंदोह, पृ. 197)
20) शतारिप्रकरणवृत्ति–गाथाबद्ध
21) निगोदषट्त्रिंशिका
22) पुद्गलषट्त्रिंशिका
23) साहम्मियवच्छलकुलयं
24) वंदणयभासं

इस प्रकार आ. अभयदेवसूरिजी ने जिनशासन की अद्भूत सेवा और प्रभावना की थी।

इतिहास के आइने में
श्री अभयदेवसूरिजी का गच्छ!!

स्व-पर के कल्याण हेतु ही ऐसे महापुरुषों का संसार में अवतरण होता है। वे अपने आत्म-कल्याण के साथ-साथ असमर्थ एवं बालजीवों के उपकार हेतु अपनी शक्तिओं का सदुपयोग भी निःस्वार्थ भाव से करते हैं। उसी के सहारे बाल-जीव मोक्ष-मार्ग में गतिशील बनते हैं। कहा गया भी है-

''**परोपकाराय हि सतां विभूतयः**''

ऐसे परोपकारी महापुरुषों के जीवन को जानने एवं गुण-गान करने की तरह उनसे संबंधित ऐतिहासिक सत्यता को जानकर उसे न्याय देना भी उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करने का ही एक प्रकार है।

इसी भावना से वर्तमान में उपलब्ध नौ अंगों की अनुपम टीकाओं के रचयिता अभयदेवसूरिजी के गच्छ के विषय में जो मत भेद है, उसके निर्णय हेतु इतिहास के आइने में देखने का प्रयास यहाँ किया जा रहा है।

अभयदेवसूरिजी जिनेश्वरसूरिजी की परंपरा में ही हुए थे, यह अटल सत्य है। इसमें कोई मतभेद नहीं है, परंतु '**अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के थे या नहीं**' इसके निर्णय हेतु 'खरतरगच्छ की उत्पत्ति', जो दुर्लभराजा की राजसभा में खरतर बिरुद प्राप्ति के कारण जिनेश्वरसूरिजी से बतायी जाती है, उसकी ऐतिहासिक कसौटी करनी आवश्यक बनती है, क्योंकि **अगर जिनेश्वरसूरिजी से खरतरगच्छ की शुरुआत हुई हो तो ही ''अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के हैं'' ऐसा कहना उचित ठहरता है, अन्यथा नहीं।**

अतः इसके निर्णय हेतु सर्वप्रथम जिनेश्वरसूरिजी से लेकर उनकी शिष्य परंपरा के 200 साल तक के उल्लेख, खरतरगच्छ के सहभावी* रुद्रपल्लीय गच्छ एवं अन्य गच्छों के उल्लेख ऐतिहासिक प्रबन्ध तथा इतिहास विशेषज्ञों के उल्लेख यहाँ पर दिये जा रहे हैं।

---

* जिनवल्लभगणिजी के बाद जिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ एवं जिनेश्वरसूरिजी से रुद्रपल्लीगच्छ इस प्रकार दोनों परंपरा अलग होती है, अतः उन्हें सहभावी कहा है।

जिनेश्वरसूरिजी एवं उनके शिष्यों के उल्लेख

जिनेश्वरसूरिजी प्रकाण्ड विद्वान्, विशुद्ध चारित्री तथा प्रभावक आचार्य थे। इसमें कोई मतभेद नहीं है, परंतु वि. सं. 1080 में आ. जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद मिलने की बात उचित प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि अगर ऐसा होता तो वे अपने ग्रन्थों में खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख करते। उन्होंने सं. 1080 में ही जालोर में '**अष्टक प्रकरण**' की टीका लिखी थी एवं सं. 1108 में '**कथाकोश–प्रकरण**' की रचना की थी। इस बीच में उन्होंने '**पञ्चलिङ्गी प्रकरण**', '**वीर चरित्र**', '**निर्वाण लीलावती**', '**षट्स्थानक प्रकरण**', '**चैत्यवंदन विवरण**' आदि ग्रंथों की भी रचना की थी। परन्तु उन्होंने कहीं पर भी खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है।

मान लिया कि आ. श्री जिनेश्वरसूरिजी परमसवेगी एवं निस्पृह शिरोमणि थे, अतः उन्होंने अपने ग्रंथों में उक्त घटना का उल्लेख नहीं किया हो। **परंतु जिस तरह आ. जगच्चंद्रसूरिजी को 'तपा' बिरुद मिला था' ऐसा उक्त घटना के साक्षी, उनके ही शिष्य आ. देवेन्द्रसूरिजी ने कर्मग्रंथ की प्रशस्ति में अपने गुरुदेव की स्तुति करते हुए उल्लेख किया है एवं उक्त घटना के लिए सभी एकमत हैं।**[*1]

उसी तरह वि. सं. 1080 में **आ. जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिलने की घटना बनी होती तो उनके शिष्य–प्रशिष्य भी उनका उल्लेख अवश्य करते।** खुद की प्रशंसा के समय मौन रहना उचित है, परंतु गुरु भगवंत के गुणगान के समय में निस्पृहता से प्रेरित होकर मौन रहने का अवसर नहीं होता। **जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य–प्रशिष्य ने भी अपने ग्रंथों में उनके भरपूर गुणगान किये ही हैं, परंतु कहीं पर भी खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख किया हो ऐसा नहीं मिलता।** जैसे कि[*2] –

1. जिनेश्वरसूरिजी के गुरुभ्राता **बुद्धिसागरसूरिजी ने सं. 1080** में जालोर में

---

*1 अ) देखें आगे पृष्ठ 46 की टिप्पणी में दिये हुए पाठ।

ब) खरतरगच्छ के आ. जिनपीयूषसागरसूरिजी ने भी '**कमजोर कड़ी कौन?**' पृ. 133 पर लिखा है–'जगच्चन्द्रसूरि–आपकी कठोर तपश्चर्या से मुग्ध बन चित्तौड़ के महाराणा ने 'तपा' बिरुद दिया, जिससे बड़गच्छ का नाम तपागच्छ हुआ।'

स) तत्र तेषां श्री तपागच्छालङ्कारभूताः श्री देवेन्द्रसूरयो मीलिताः।

– अंचलगच्छ बृहत् पट्टावली, महेन्द्रसूरि अधिकार

*2. **यहाँ पर दिये ग्रंथों के साक्षी पाठ हेतु देखें** परिशिष्ट 3–4, 92 से 118.

'पद्मग्रंथी' ग्रंथ की रचना की। उसमें अपने गुरुभाई की भरपूर प्रशंसा की है, परंतु 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का निर्देश नहीं किया है।

2. जिनेश्वरसूरिजी के प्रधान शिष्य **धनेश्वरसूरिजी अपर नाम जिनभद्राचार्यजी** सं. 1095 में **'सुरसुंदरी चरित्र'** की रचना की। उसमें खरतर बिरुद की बात नहीं है।

3. आ. श्री **जिनचंद्रसूरिजी कृत 'संवेगरंगशाला'** में,

4. नवाङ्गी टीकाकार **श्री अभयदेवसूरिजी कृत टीका ग्रंथों** में तथा

5. सं. 1164 में **श्री जिनवल्लभगणिकृत 'अष्ट सप्ततिका'** आदि में खरतर बिरुद की बात नहीं है।

6. **आ.श्री जिनदत्तसूरिजी** ने **'गणधर सार्द्धशतक'** में श्री हरिभद्रसूरिजी की स्तुति में 8 श्लोक लिखे हैं एवं हरिभद्रसूरिजी चैत्यवासी नहीं थे, उसका खुलासा भी किया है, जबकि श्री जिनेश्वरसूरिजी के लिए 13 श्लोक लिखे परंतु **खरतर बिरुद प्राप्ति की बात नहीं लिखी है।**

* इतना ही नहीं, गणधर सार्द्धशतक के ऊपर **कनकचन्द्र गणिजी** ने सं. **1295 में टीका लिखी** थी, उसी के आधार से सं. 1676 में **पद्ममन्दिर गणिजी** ने भी संक्षेप से टीका रची[*1], उसमें भी **'खरतर' बिरुद की बात नहीं है।**

* तथा इतिहासवेत्ता **पं. कल्याणविजयजी** ने **'पट्टावली पराग'** में हस्तलिखित प्रत के आधार से बताया है कि सर्वराजगणिजी की **'गणधर-सार्द्धशतक'** की **लघुवृत्ति** तथा सुमतिगणिजी की **'बृहद्वृत्ति' में भी 'खरतर' बिरुद की बात नहीं है।**[*2]

* **जिनविजयजी** संपादित **'कथाकोष प्रकरण'** में **सर्वराजगणिजी** की

---

*1. श्रीमज्जिनेश्वरगुरोरन्तेषदासीच्च कनकचन्द्रगणिः। शर-निधि-दिनकरवर्षे (1295), पूर्वं तेन कृता वृत्तिः।।1।। रस-जलधि-षोडशमिते (1676), वर्षे पोषस्य शुद्धसप्तम्याम्। श्री जिनचंद्रगणाधिप-राज्ये जेसलसुरधराध्रे।।2।।
तट्टीकादर्शादिह, संक्षिप्य च पद्ममन्दिरेणापि। लिलिखेऽनुग्रहबुद्धया, संक्षेपरुचिज्ञ-जनहेतोः।।6।।

*2 देखें परिशिष्ट 3, पृ. 92.

लघुवृत्ति एवं **सुमतिगणिजी** की **बृहद्वृत्ति** के संदर्भ ग्रंथ दिये हैं, उनमें भी खरतर बिरुद की बात नहीं है।

* वर्तमान में बृहद्वृत्ति का '**प्राप्त खरतर बिरुद भगवन्तः श्री जिनेश्वरसूरयः**' ऐसा पाठ दिया जाता है, तत्संबंधी स्पष्टीकरण के लिए देखें परिशिष्ट 3, पृ. 100-103

7. **आ.श्री जिनपतिसूरिजी** ने भी '**सङ्घपट्टक**' की **बृहद्वृत्ति** में खरतर बिरुद की बात नहीं लिखी है। बल्कि 'सुरिःश्रीजिनवल्लभोऽजनि बुधश्चान्द्रे कुले।' इस प्रकार 'चान्द्रकुल' का ही उल्लेख किया है। उसी तरह '**पंचलिंगी प्रकरण**' की टीका में भी चान्द्रकुल ही लिखा है।

8. आ. श्री जिनपतिसूरिजी के शिष्य **श्री नेमिचंद्रसूरि कृत 'षष्टि शतक'** में 'नंदउ विहिसमुदाओ' लिखा है, 'खरयरसमुदाओ' नहीं लिखा है।

9. पू.आ.श्री अभयदेवसूरिजी के प्रशिष्य गुणचंद्रगणिजी जो बाद में आ. देवभद्रसूरिजी बने, उन्होंने सं. 1139 में '**महावीर चरियं,** सं. 1158 में '**कथारत्नकोश**', एवं सं. 1168 में **पासनाहचरियं** की रचना की थी। उनकी प्रशस्ति में चान्द्रकुल ही लिखा है।

10. अभयदेवसूरिजी के पट्टधर **वर्धमानसूरिजी**[*1] ने सं. 1140 में '**मनोरमा कहा**' एवं सं. 1160 में '**ऋषभदेव चरित्र**' की रचना की थी। इसकी प्रशस्ति में भी 'खरतर' बिरुद का उल्लेख नहीं है, केवल चान्द्रकुल का ही उल्लेख किया है।

11. सं.1292 में, **जिनपालोपाध्यायजी** ने जिनेश्वरसूरिजी रचित '**षट्स्थानक प्रकरण**' की टीका तथा सं. 1293 में **द्वादशकुलक की टीका** लिखी थी। उसकी प्रशस्ति में भी 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है, परंतु चान्द्रकुल ही लिखा है।

12. सं. 1294 में **पद्मप्रभसूरिजी** ने '**मुनिसुव्रत चरित्र**' की रचना की। उसकी प्रशस्ति में भी 'खरतर' बिरुद की बात नहीं है।

13. सं. 1305 में **जिनपालोपाध्यायजी** ने **खरतरगच्छालङ्कार गुर्वावली**

---

1. गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति एवं बृहद्गुर्वावली के अनुसार भी अभयदेवसूरिजी ने वर्धमानसूरिजी को अपनी पाट-परंपरा सौंपी थी। तथा जिनवल्लभगणिजी ने वर्धमानसूरिजी की प्रशंसा अष्टसप्ततिका के 49वें श्लोक में की है। देखें पृ. 55.

लिखी थी। उसमें भी खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है। वह सिंधी प्रकाशन माला से प्रकाशित हो चुकी है तथा **महोपाध्याय विनयसागरजी** ने उसका अनुवाद **'खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास'** में दिया है। उसमें भी खरतर बिरुद प्राप्ति की बात नहीं लिखी है। (प्रमाण के लिए देखें–परिशिष्ट–3, पृ. 109 से 115)

14. सं. 1328 में लक्ष्मीतिलक उपाध्यायजी ने प्रबोधमूर्ति गणिजी विरचित 'दुर्गपदप्रबोध' ग्रंथ पर वृत्ति लिखी। उसकी प्रशस्ति में 'चान्द्रकुलेऽजनि गुरुजिनवल्लभाख्यो' लिखा है। तथा **जिनदत्तसूरिजी से 'विधिपथ' सुख पूर्वक विस्तृत हुआ** ऐसा लिखा है। उसमें **'खरतर गच्छ' की तो कोई बात ही नहीं लिखी है।**

जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद नहीं मिला था!!! क्योंकि जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' विरुद होता तो उनके समय से उनका गच्छ 'खरतरगच्छ' के रूप में प्रसिद्ध होता! जब कि जिनदत्तसूरिजी से अथवा उनके बाद ही खरतरगच्छ की प्रसिद्धि मानी जाती है । देखिये :–

'खरतरगच्छ के विद्वानों का मन्तव्य''

1. ''आगे जिनवल्लभसूरि एवं जिनदत्तसूरि के समय यह परम्परा विधिमार्ग के नाम से जानी गयी और यही आगे चलकर खरतरगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई।''

–महो. विनयसागरजी

(खरतरगच्छ का बृहत इतिहास, खण्ड 1 पृ. 12)

2. ''जिनदत्तसूरिजी के समय विधिमार्ग 'खरतरगच्छ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

–मुनि मनितप्रभसागरजी म.सा.

(समस्या, समाधान और संतुष्टि, पृ. 192)

प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों के उल्लेख

1. **प्रभाचंद्रसूरिजी** द्वारा रचित **'प्रभावक चरित्र' (सं. 1334),** एक ऐतिहासिक ग्रंथ है, जिसे सभी गच्छ प्रामाणिक मानते हैं। उसमें दिये गये 'अभयदेवसूरि प्रबन्ध' में जिनेश्वरसूरिजी का भी वर्णन दिया है। उसमें उनका पाटण जाना तथा कुशलतापूर्वक वसतिवास वाले साधुओं के विहार की अनुमति प्राप्त करने का विस्तृत वर्णन भी दिया है, परंतु **उसमें न तो 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का उल्लेख है और न ही राजसभा में किसी वाद के होने का निर्देश है।** उसमें केवल सुविहित साधुओं के विहार की अनुमति प्राप्ति का ही उल्लेख है।

2. **सूरि पुरंदर हरिभद्रसूरिजी रचित 'सम्यक्त्व सप्ततिका' ग्रंथ की टीका रूद्रपल्लीय गच्छ के संघतिलकसूरिजी ने रची है।** उस ग्रंथ की 26वीं गाथा की टीका में प्रसंगोपात जिनेश्वरसूरिजी की कथा भी दी है। उसमें भी जिनेश्वरसूरिजी का पाटण जाना एवं सुविहित मुनिओं के विहार की अनुमति की बात लिखी है, **परंतु राजसभा में चैत्यवासिओं से वाद और 'खरतर' बिरुद की प्राप्ति का कोई निर्देश नहीं किया है।**

जिनविजयजी की दृष्टि में "प्रभावक चरित्र"

इसमें कोई शक नहीं कि प्रभाचंद्र एक बड़े समदर्शी, आग्रहशून्य, परिमितभाषी, इतिहासप्रिय, सत्यनिष्ठ और यथासाधन प्रमाणपुरःसर लिखने वाले प्रौढ प्रबन्धकार हैं। उन्होंने अपने इस सुन्दर ग्रंथ में जो कुछ भी जैन पूर्वाचार्यों का इतिहास संकलित किया है, वह बड़े महत्त्व की वस्तु है। इस ग्रंथ की तुलना करने वाले केवल जैन साहित्य-ही में नहीं अपितु समुच्चय संस्कृत साहित्य में भी एक-दो ही ग्रंथ हैं।

-कथाकोष प्रकरण, पृ. 21

खरतरगच्छ के सहभावी रुद्रपल्लीय गच्छ एवं अन्य गच्छीय ग्रंथों के उल्लेख

1. रुद्रपल्लीय गच्छ और वर्तमान खरतरगच्छ की पाट परंपरा जिनवल्लभगणिजी के बाद क्रमशः जिनशेखरसूरिजी एवं जिनदत्तसूरिजी से अलग होती है। अगर जिनशेखरसूरिजी के पूर्वज जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला होता तो जिनशेखरसूरिजी की शिष्य परंपरा भी अपनी उत्पत्ति खरतरगच्छ से बताती, परंतु ऐसा नहीं है। **रुद्रपल्लीय गच्छ** के (सं. 1468 में) **जयानन्दसूरिजी** ने '**आचार दिनकर**' की टीका की प्रशस्ति में चान्द्रकुल में हुए जिनशेखरसूरिजी से रुद्रपल्लीय गच्छ की उत्पत्ति बतायी है।

   इससे यह भी पता चलता है कि **सं. 1468 तक तो यह गच्छ खुद को चान्द्रकुल की ही एक शाखा मानता था, अर्थात् खरतरगच्छ की शाखा नहीं मानता था।** परंतु वर्तमान में इसे खरतरगच्छ की शाखा के रूप में गिनाया जाता है, जो उचित नहीं है। इस बात का विशेष ऐतिहासिक स्पष्टीकरण आगे किया जायेगा।[1]

   रुद्रपल्लीय गच्छ के उल्लेख से पता चलता है कि जिनेश्वरसूरिजी की शिष्य परंपरा खरतरगच्छ के रुप में प्रसिद्ध नहीं हुई, परंतु जिनदत्तसूरिजी की शिष्य परंपरा ही खरतरगच्छ के रूप में प्रसिद्ध हुई है।

2. **अंचलगच्छ** के '**शतपदी ग्रंथ**' में '**वेदाभ्रारुणकाले**' के द्वारा खरतरगच्छ की उत्पत्ति वि. सं. 1204 में बतायी है।

3. **तपागच्छ** की 51वीं पाट पर हुए आचार्य मुनिसुंदरसूरिजी ने **वि.सं. 1466** में '**गुर्वावली–विज्ञप्तिपत्र**' की रचना की थी, उसमें स्त्री–पूजा के निषेध को लेकर खरतरगच्छ की उत्पत्ति होना बताया है। खरतरगच्छ की यह मान्यता जिनदत्तसूरिजी से शुरु हुई थी। अतः यह स्पष्ट होता है कि **तपागच्छ के पूर्वाचार्य भी 'जिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति हुई'** ऐसा मानते थे, न कि जिनेश्वरसूरिजी से।

4. इसी तरह **तपागच्छ के हर्षभूषण गणिजी** ने सं. 1480 में '**श्राद्धविधि विनिश्चय**' की रचना की, उसमें भी '**वेदाभ्रारुणकाले**' पाठ के द्वारा

---

1. देखें–परिशिष्ट 6, पृ. 140

खरतरगच्छ की उत्पत्ति वि. सं. 1204 में बतायी है।

5. सोमसुन्दरसूरिजी के शिष्य **जिनसुन्दरसूरिजी** ने वि.सं. **1483 में 'दीपालिका कल्प'** की रचना की थी। उसकी 129 वीं गाथा में खरतरगच्छ की उत्पत्ति का 1204 में बतायी है। देखिये-

वत्सरैर्द्वादशशतैश्चतुर्भिरधिकैर्गतैः 1204।
भावी विक्रमतो गच्छः ख्यातः खरतराख्यया।।129।।

ये सभी ग्रंथ उपाध्याय धर्मसागरजी के भी 100-125 साल पहले के तपागच्छ के पूर्वाचार्यों के हैं।

6. राजगच्छपट्टावली एवं कडुआमत पट्टावली में भी 'वेदाभ्रारुणकाले' के द्वारा सं. 1204 में ही खरतरगच्छ की उत्पत्ति बताई है। - (विविधगच्छ पट्टावली संग्रह)

स्पष्टीकरण

15 वीं शताब्दी के आस-पास खरतरगच्छ के ग्रंथों में 'जिनेश्वरसूरिजी से खरतगरगच्छ की उत्पत्ति हुई', ऐसा प्रचार किया जाने लगा और यह मान्यता बहु-प्रचलित हो गयी थी। अपने पूर्वाचार्यों की खरतरगच्छ संबंधी धारणा का ख्याल न होने से उपरोक्त प्रचलित प्रघोष के अनुसार सं. 1511 में 'पं. सोमधर्मगणिजी', सं. 1517 में 'पं. रत्नमंदिरगणिजी' आदि ने 'उपदेशसप्ततिका', **'उपदेशतरंगिणी'** आदि ग्रंथों में अभयदेवसूरिजी को खरतरगच्छीय मान लिया तो वह प्रमाण नहीं कहलाता है, क्योंकि उनके पूर्वाचार्यों ने सं. 1204 में ही खरतरगच्छ की उत्पत्ति बतायी है।

ऐसा ही आत्मारामजी म.सा. आदि के कथन के विषय में भी समझ सकते हैं। **जिनपीयूषसागरसूरिजी ने 'जैनम् टु-डे', अगस्त 2016, पृ. 15 में मुनिसुंदरसूरिजी द्वारा 'उपदेश तरंगिणी' की रचना की गयी थी, ऐसा लिखा है जो उचित प्रतीत नहीं होता है** क्योंकि (जैन सत्य प्रकाश क्र. 139), 'जैन परंपरानो इतिहास' भाग-3, पृ. 164 के अनुसार सं. 1517 में रत्नमंदिरगणिजी ने 'उपदेशतरंगिणी' की रचना की थी। दुसरी बात उपदेश तरंगिणी में खरतरगच्छ या अभयदेवसूरिजी संबंधी कोई बात ही नहीं है।

इतिहास विशेषज्ञों के उल्लेख...

1. इतिहासवेत्ता पं. कल्याणविजयजी ने अपने ऐतिहासिक संशोधनों का सार संक्षेप में इस प्रकार बताया है–

   आज तक हमने खरतरगच्छ से सम्बन्ध रखने वाले सेंकड़ों शिलालेखों तथा मूर्तिलेखों को पढ़ा है, परन्तु ऐसा एक भी लेख दृष्टिगोचर नहीं हुआ, जो विक्रम की 14वीं शती के पूर्व का हो और उसमें 'खरतर' अथवा 'खरतरगच्छ' नाम उत्कीर्ण हो, इससे जाना जाता है कि 'खरतर' यह शब्द पहले 'गच्छ' के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। (पट्टावली पराग – पृ. 354)

2. इसी प्रकार का अभिप्राय ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार से इतिहासप्रेमी ज्ञानसुंदरजी म.सा. ने भी व्यक्त किया है।[*1]

3. डॉ. बुलर ने भी सं. 1204 में जिनदत्तसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति मानी है।

4. **'खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह'** में **मोहपाध्याय विनयसागरजी** ने 2760 लेखों का संग्रह दिया है, उनमें खरतरगच्छ के उल्लेख वाला सर्वप्रथम लेख 14वीं शताब्दी का ही है, उससे भी इतिहासवेत्ता पं. कल्याणविजयजी एवं ज्ञानसुंदरजी म.सा. की बात की पुष्टि होती है। उन लेखों में से 14वीं शताब्दी तक के लेख पीछे परिशिष्ट–5 में अवलोकन हेतु दिये गये हैं।

   महो विनयसागरजी ने भी **'दुर्लभराज ने जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद प्रदान किया हो अथवा नहीं किन्तु इतना तो सुनिश्चित है** कि.... (खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास' पृ. 12) इस उल्लेख के द्वारा **खरतर बिरुद की प्राप्ति में संदेह बताया है** तथा पृ. 13 पर **''अतः यह स्पष्ट है कि वर्धमान, जिनेश्वर, अभयदेव खरतरगच्छीय नहीं....''** के द्वारा **अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे, ऐसा स्वीकारा है।**[*2]

5. पुरातत्त्वाचार्य **जिनविजयजी** ने खरतर बिरुद प्राप्ति का सर्वप्रथम उल्लेख जिस ग्रंथ में मिलता है ऐसे वृद्धाचार्य प्रबन्धावली ग्रंथ (15–16वीं शताब्दी का) को असंबद्ध प्रायः एवं अनैतिहासिक माना है और उसके आधार पर लिखी गयी परवर्ती पट्टावलियों को भी विशेष महत्त्व नहीं दिया है। (विशेष के लिये देखें –पृ. 33–34)

---

*1 विशेष के लिये देखें परिशिष्ट–4, पृ. 116

*2 विशेष के लिए देखें पृ. 40–41

12वीं शताब्दी के प्रक्षिप्त पाठ एवं जाली लेख !!!

इस प्रकार हमने देखा कि–

1. जिनेश्वरसूरिजी से लेकर 200 साल तक के किसी भी ग्रंथ में खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं मिलता है।

2. इतना ही नहीं रुद्रपल्लीय गच्छ के किसी भी ग्रन्थ में जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिलने का उल्लेख नहीं किया है।

3. केवल जिनदत्तसूरिजी की शिष्य-परंपरा के अर्वाचीन ग्रंथों में ही खरतर बिरुद की बात मिलती है।

अतः 'जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला था', यह बात शंकास्पद बन जाती है। **अन्य गच्छों के प्राचीन 'शताब्दी' आदि आदि ग्रंथों में सं. 1204 से खरतरगच्छ की उत्पत्ति के उल्लेख से यह शंका और पुष्ट हो जाती है, क्योंकि 12वीं शताब्दी तक के किसी भी ग्रंथ में खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं मिलता है।**

हाँ ! खरतरगच्छ के अनुयायियों के द्वारा जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद मिलने के प्राचीन प्रमाण के रूप में गुणचन्द्रगणिजी रचित **'महावीर चरियं'** (सं. 1139) की प्रशस्ति का यह श्लोक दिया जाता है–

'गुरुसाराओ धवलाओ', 'सुविहिआ' खरयसाहुसंतई जाया।
हिमवंताओ गंगव्व निग्गया सयलजणपुज्जा।।

–समयसुंदरगणिजी कृत सामाचारी शतक, पृ. 19, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई

परन्तु, इस श्लोक में **'खरय'** यह पाठ उचित नहीं लगता है, क्योंकि हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान भंडार, (वाडी पार्श्वनाथ भंडार) **पाटण की प्राचीन हस्तप्रत** (डा. 182 नं, 7030) में केवल **'सुविहिया साहुसंतई'**.... ऐसा ही पाठ है।

वास्तव में सुविहिया यह भी पाठांतर ही है, क्योंकि **अतिप्राचीन ताड़पत्रीय** ग्रंथ में **'निम्मल साहुसंतई'** ही लिखा है। (हेमचंद्राचार्य जैन ज्ञान भंडार, संघनो भंडार, पाटण, डा. 44 पो. 44)

उसकी प्रतिकृति यहाँ पर दी जा रही है।

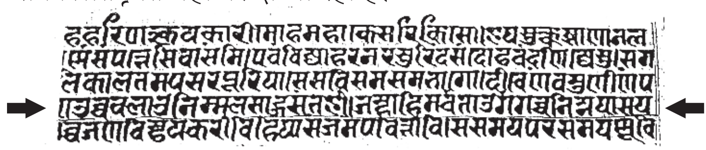

दूसरी बात, **'खरय' इन तीन अक्षरों को जोड़ने पर इस श्लोक में छंदोभंग का दोष भी लगता है,** क्योंकि प्रशस्ति के ये श्लोक **गाहा** छंद में बने हुए हैं। जो कि मात्रा छंद है। 'खरय' जोड़ने पर 3 मात्राएँ बढ़ जाती हैं, अतः छंद का भंग होता है।

तथा **'प्रवचन परीक्षा' जिसे हीरविजयसूरिजी एवं विजयसेनसूरिजी ने भी प्रमाणित किया था**[*1]**,** उसके अनुसार पता चलता है कि भूतकाल में भी महावीर चरियं का यह श्लोक प्रमाण के रूप में दिया गया था।

वह इस प्रकार था :-

'गुरुसाराओ धवलाउ खरयरी साहुसंतई जम्हा।
हिमवंताओ गंगुव्व निग्गया सयलजणपुज्जा।।'[*2]

परंतु वास्तव में यहाँ पर मूल है **'निम्मला'** शब्द था, जिसे बदलकर जैसलमेर की हस्तप्रत में **'खरयरी'** कर दिया गया था, ऐसा नारदपुरी '(नारलाई)' से प्राप्त **हस्तप्रत** के आधार से सिद्ध किया गया था। (प्रवचन परीक्षा प्रस्ताव 4, श्लोक 47-48, पृ. 288)

इस गाथा के अर्थ के निरीक्षण से भी 'निम्मला' शब्द ही उचित लगता है, क्योंकि इस गाथा का अर्थ यह है कि जैसे - **हिमवंत से गंगा निकली** उसी तरह बड़ी महिमावाले एवं शुद्ध चारित्री होने से जो गुरुसार एवं धवल हिमवंत के जैसे थे, ऐसे **जिनेश्वरसूरिजी से गंगा की तरह निर्मल साधु परंपरा निकली।**

यहाँ पर साहुसंतई को गंगा की उपमा के लिए निम्मला शब्द ही उपयुक्त है 'खरयरी' नहीं है, क्योंकि गंगा निर्मल कही जाती है, खरतरी नहीं कही जाती है।

अतः **''सुविहिआ खरय साहुसंतई''** और **''खरयरी साहुसंतई''** ये दोनों पाठ अशुद्ध एवं प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं।

पुण्यविजयजी की वेदना

इस तरह के प्रक्षिप्त पाठों के विषय में आगम प्रभाकर पू. पुण्यविजयजी म. ने भी कथारत्नकोश भा.-1 की प्रस्तावना में लिखा है कि-

---

*1 **देखें इसी ग्रंथ की प्रशस्ति** में तथा **विजय प्रशस्ति महाकाव्य,** सर्ग-10, श्लोक-4

*2 मूल श्लोक इस प्रकार है- **गुरुसाराओ धवलाउ निम्मला साहुसंतई जम्हा।**
हिमवंताओ गंगुव्व निग्गया सयलजणपुज्जा।।

‘जो के जेलसमेरनी ताड़पत्रीय पार्श्वनाथ चरित्रनी प्रतिनी प्रशस्तिमा ‘विउलाए वइरसाहाए’ पाठने भूंसी नाखीने बदलामां ‘खरयरो वरसाहाण’ पाठ अने ‘आयरियजिणेसरबुद्धिसागरायरियनामाणो’ पाठने भूंसी नाखीने तेना स्थानमां ‘आयरियजिणेसरबुद्धिसागरा खरयरा जाया’ पाठ लखी नाखेलो मले छे; परंतु ए रीते भूंसी–बगाडीने नवा बनावेला पाठोने अमारी प्रस्तुत प्रस्तावनामां प्रमाण तरीके स्वीकार्या नथी। ऊपर जणाववामां आव्यु तेम जेसलमेरमां एवी घणी प्राचीन प्रतिओ छे जेमांनी प्रशस्ति अने पुष्पिकाओना पाठोने गच्छव्यामोहने अधीन थई बगाडीने ते ते ठेकाणे ‘खरतर’ शब्द लखी नाखवामां आव्यो छे, जे घणुं ज अनुचित कार्य छे’।

आ.जिनपीयूषसागरसूरिजी के अप्रमाणिक प्रमाण!!

इसी प्रकार जिनपीयूषसागरसूरिजी ने ‘खरतरगच्छ का उद्भव’ नाम की पुस्तिका के पृ. 31 पर प्राचीन प्रमाण के रूप में देवभद्रसूरिजी रचित ‘पासनाह चरियं’ (सं. 1168) की प्रशस्ति में खरतर बिरुद का उल्लेख किया जाना बताया है। **उनकी यह बात स्पष्ट रूप से गलत सिद्ध होती है। क्योंकि उसकी प्रशस्ति में चान्द्रकुल का ही उल्लेख किया है, खरतर बिरुद की बात ही नहीं है। वह प्रशस्ति पीछे परिशिष्ट में पृ. 81 पर दी गयी है।**

इस तरह उक्त पुस्तिका में सं. 1147 का खरतरगच्छ की प्राचीनता की सिद्धि करने वाला लेख दिया है एवं अन्य प्राचीन लेखों के प्रमाण दिये हैं। **वे सब कब के जाली सिद्ध हो चुके हैं। पता नहीं क्यों उन्हीं पुरानी बातों को लेकर अपने मत की सिद्धि करने का प्रयास किया जाता है?**

धन्यवाद तो साहित्य वाचस्पति महोपाध्याय विनयसागरजी को है, जिन्होंने उन लेखों को खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास में अप्रामाणिक माना है[*1] एवं खरतरगच्छ प्रतिष्ठालेख संग्रह में उन्हें स्थान नहीं दिया है।

जिनपीयूषसागरसूरिजी का लेख इस प्रकार हैः–

यह उल्लेख संवत् 1139 में बने हुए श्री वीर चरित्र में है, यह रचना नवांगी वृत्तिकार खरतरगच्छीय श्री अभयदेवसूरिजी के सन्तानीय श्री गुणचन्द्रगणिजी ने की है। अन्य गच्छीय पट्टावलियों में जो बहुत ही अर्वाचीन है उनमें खरतरगच्छ की उत्पत्ति सं. 1204 में होना लिखा है, यह मत सरासर भ्रामक व वास्तविकता से परे है। **जैसलमेर दुर्ग में**

*1 **देखें पृ. 28 पर**

पार्श्वनाथ मंदिर में प्राप्त शिलालेख जो सं. 1147 का है, उसमें स्पष्ट लिखा है **'खरतरगच्छ जिनशेखरसूरिभिः।'**

सं. 1188 में रचित देवभद्रसूरिकृत पार्श्वनाथ चरित्र की प्रशस्ति में 1170 में लिखित पट्टावली में 'खरतर विरुद' मिलने का स्पष्ट उल्लेख है।

जैतारण राजस्थान के धर्मनाथ स्वामी के मंदिर में सं. 1171 माघ सुदी पंचमी का सं. 1169. सं. 1174 के अभिलेखों में स्पष्ट लिखा है-'खरतरगच्छे सुविहिता गणाधीश्वर जिनदत्तसूरि।

भीनासर (बीकानेर) के पार्श्वनाथ के मंदिर में पाषाण प्रतिमा पर सं. 1181 का लेख अंकित है, उसमें भी 'खरतरगणाधीश्वर श्री जिनदत्तसूरिभिः' लिखा है। (खरतरगच्छ का उद्‌भव पृ. 31-32)

लेख की समीक्षा

1. जिनपीयूषसागरसूरिजी ने **महावीर चरियं** की जो बात लिखी है **उसका स्पष्टीकरण** आगे पृ. 22-23 पर किया जा चुका है।
2. **जैसलमेर दुर्ग** के सं. **1147** वाले लेख तथा **भीनासर (बीकानेर)** के सं. 1181 वाले लेख का स्पष्टीकरण **ज्ञानसुंदरजी म.सा. के शब्दों में** इस प्रकार है :-

खरतर शब्द को प्राचीन साबित करने वाला एक प्रमाण खरतरों को ऐसा उपलब्ध हुआ है कि जिस पर वे लोग विश्वासकर कहते हैं कि बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर के संग्रह किये हुए शिलालेख खण्ड तीसरे में वि. सं. 1147 का एक शिलालेख है।

'सं. 1147 वर्षे श्रीऋषभ बिंबं श्रीखरतर गच्छे श्री जिनशेखर सूरिभिः कारापितं।।'

-बा. पू. सं. खं. तीसरा लेखांक 2124

पूर्वोक्त शिलालेख जैसलमेर के किल्ले के अन्दर स्थित चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मंदिर में है। जो विनपबासन भूमि पर बीस विहरमान तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ स्थापित है, उनमें एक मूर्ति में यह लेख बताया जाता है। परन्तु जब फलोदी के वैद्य मुहता पांचूलालजी के संघ में मुझे जैसलमेर जाने का सौभाग्य मिला तो, मैं अपने दिल की शङ्का निवारणार्थ प्राचीन लेख संग्रह खण्ड तीसरा जिसमें निर्दिष्ट लेख

मुद्रित था साथ में लेकर मन्दिर में गया और खोज करनी शुरु की। परन्तु अत्यधिक अन्वेषण करने पर भी 1147 के संवत् वाली उक्त मूर्ति उपलब्ध नहीं हुई। अनन्तर शिलालेख के नम्बरों से मिलान किया, पर न तो वह मूर्ति ही मिली और न उस मूर्ति का कोई रिक्त स्थान मिला (शायद यहाँ से मूर्ति उठाली गई हो) पुनः इस खोज के लिये मैंने यर्तिवर्य प्रतापरत्नजी नाडोल वाले और मेघराजजी मुनौत फलोदीवालों को बुलाके जाँच कराई, अनन्तर अन्य स्थानों की मूर्तियों की तलाश की पर प्रस्तुत मूर्ति कहीं पर भी नहीं मिली। **शिलालेख संग्रह नम्बर 2120 से क्रमशः 2137 तक की सारी मूर्तिएँ सोलहवीं शताब्दी की हैं। फिर उनके बीच 2124 नम्बर की मूर्ति वि. सं. 1147 की कैसे मानी जाय?** क्योंकि न तो इस सम्वत् की मूर्ति हीं वहाँ है और न उसके लिए कोई स्थान खाली है। जैसलमेर में प्रायः 6000 मूर्तियाँ बताते हैं, पर किसी शिलालेख में बारहवीं सदी में खरतरगच्छ का नाम नहीं है। **अतः 1147 वाला लेख कल्पित है फिर भी लेख छपाने वालों ने इतना ध्यान भी नहीं रखा कि शिलालेख के समय के साथ जिनशेखरसूरि का अस्तित्व था या नहीं?**

अस्तु ! अब हम जिनशेखरसूरि का समय देखते हैं तो वह वि. सं. 1147 तक तो सूरि–आचार्य ही नहीं हुए थे, क्योकि जिनवल्लभसूरि का देहान्त वि. सं. 1167 में हुआ, तत्पश्चात् उनके पट्टधर सं. 1169 जिनदत्त और **1205 में जिनशेखर आचार्य हुए तो फिर 1147 सं. में जिनशेखरसूरि का अस्तित्व कैसे सिद्ध हो सकता है?**

खरतर शब्द खास कर जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण ही पैदा हुआ था, और जिनशेखरसूरि और जिनदत्तसूरि के परस्पर में खूब क्लेश चलता था। ऐसी स्थिति में जिनशेखरसूरि खरतर शब्द को गच्छ में मान ले या लिख दे वह सर्वथा असम्भव है। उन्होंने तो अपने गच्छ का नाम ही रुद्रपाली गच्छ रखा था। इस विषय में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी का उल्लेख हम ऊपर लिख आए हैं। अतः इस लेख के लिए अब हम दावे के साथ यह निःशंकतया कह सकते हैं कि उक्त 1147 संवत् का शिलालेख किसी खरतराऽनुयायी ने जाली (कल्पित) छपा दिया है। **नहीं तो यदि खरतर भाई आज भी उस मूर्ति का दर्शन करवा दें** तो इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है।

भला ! यह समझ में नहीं आता है कि खरतरलोग खरतर शब्द को प्राचीन बनाने में इतना आकाश पाताल एक न कर यदि अर्वाचीन ही मान लें तो क्या हर्ज

है?

जिनदत्तसूरि के पहिले खरतर शब्द इनके किन्हीं आचार्यों ने नहीं माना था। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का शिलालेख हम पूर्व लिख आये हैं। वहाँ तक तो खरतर गच्छ मंडन जिनदत्त सूरि को ही लिखा मिलता है इतना ही क्यों पर उसी खण्ड के लेखांक 2385 में तो जिनदत्तसूरिजी को खरतरगच्छावतंस भी लिखा है, **अतः खरतरमत के आदिपुरुष जिनदत्तसूरिजी ही थे।**

※ श्रीमान् अगरचंदजी नाहटा बीकानेर वालों द्वारा मालूम हुआ कि वि. सं. 1147 वाली मूर्ति पर का लेख दब गया है। अहा–क्या बात है–आठ सौ वर्षों का लेख लेते समय तक तो स्पष्ट बचता या बाद केवल 3–4 वर्षों में ही दब गया, यह आश्चर्य की बात है। नाहटाजी ने भीनासर में भी वि. सं. 1181 की मूर्ति पर शिलालेख में 'खरतरगच्छ' का नाम बतलाया है। इसी का शोध के लिये एक आदमी भेजा गया, पर वह लेख स्पष्ट नहीं बचता है, केवल अनुमान से ही 1181 नाम लिया है।

(ज्ञानसुन्दरजी म.सा.–खरतरमतोत्पत्ति भा–1, पृ. 21–22–23)

3. **इसी तरह जैतारण आदि के लेख के विषय में भी यही बात है।**

''खरतरगच्छ का उद्भव'' पुस्तिका में प्रेस संबंधित भरपूर अशुद्धियाँ हैं, उसमें संवत् भी ठीक नहीं छपे हैं। जैसे कि सं. 1188 में देवभद्रसूरिजी रचित 'पार्श्वनाथ चरित्र' ऐसा लिखा है, परन्तु वास्तव में सं. 1168 में यह ग्रंथ रचा गया था।

जैतारण के जिन लेखों की बात वहाँ पर की गयी है, वे लेख इस प्रकार हैं–

1. 'सं. 1171 माघ शुक्ल 5 गुरौ सं. हेमराजभार्यहेमादे पु. सा. रूपचंद रामचन्द्र श्री पार्श्वनाथ बिंब करापितं अ. खरतरगच्छे सुविहित गणाधीश श्री जिनदत्तसूरिभिः।'
2. 'सं. 1174 वैशाख शुक्ला 3 सं. म.... भार्यहेमादें पु. ... चन्द्रप्रभ बिम्ब.... प्र. खरतरगच्छे सुविहित गणाधीश्वर श्री जिनदत्तसूरिभिः'
3. 'सं. 1181 माघ शुक्ल 5 गुरौ प्राग्वट ज्ञातिय सं. दीपचन्द्र भार्य दीपादें पु. अबीरचंद्र अमीरचंद्र श्री शान्तिनाथ बिंब करापितं प्र. खरतरगच्छे सुविहित गणाधीश्वर श्री जिनदत्तसूरिभिः'
4. 'सं. 1167 जेठ वदी 5 गुरौ स. रेनुलाल भार्य रत्नादें पु. सा. कुनणमल श्री चन्द्रप्रभ बिंब करापित प्र. सुविहित खरतर गच्छे गणाधीश्वर श्री

जिनदत्तसूरिभिः'

उपरोक्त शिलालेखों में चतुर्थ शिलालेख 1167 का है। जिनदत्तसूरिजी को सूरि पद वि. सं. 1169 में मिला था। उसके पूर्व जिनदन्तसूरिजी का नाम सोमचंद्र था। **जब 'जिनदत्तसूरि' इस नाम की प्राप्ति ही उन्हें सं. 1169 में हुई थी, तो सं. 1167 के शिलालेख में जिनदत्तसूरिभिः ऐसा उल्लेख आ ही कैसे सकता है?**

जिनदत्तसूरिजी ने जिस तरह जिनबिंबों की प्रतिष्ठा की थी, उसी तरह उन्होंने कई ग्रंथों की रचना भी की थी। मूर्तियों के नीचे 2-3 पंक्ति के शिलालेख में खरतरगच्छीय सुविहित गणाधीश्वर इत्यादि विशेषण लिखे जा सकते थे, तो उनके ग्रंथों की लम्बी प्रशस्तिओं में 'खरतर' शब्द की गन्ध तक भी क्यों नहीं मिलती है? यह बड़े आश्चर्य की बात है!! अतः उपर के सभी लेख अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं।

दूसरी बात इनकी लिपी भी परवर्तीकालीन है, ऐसा महोपाध्याय विनयसागरजी ने भी स्वीकारा है।

महोपाध्याय विनयसागरजी ने **'खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास' खण्ड-1 पृ.** 53 पर इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया है-

स्व. श्री भंवरलालजी नाहटा के मतानुसार महावीर स्वामी का मंदिर, डागों की गवाड़, बीकानेर में वि. सं. 1176 मार्गसिर वदि 6 का एक लेख है। यह लेख एक परिकर पर उत्कीर्ण है। इसमें जांगलकूप दुर्ग नगर में विधि चैत्य-महावीर चैत्य का उल्लेख है। इसी वर्ष, माह और तिथियुक्त एक अन्य अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर में संरक्षित एक प्रतिमा के परिकर पर उत्कीर्ण है। इन दोनों लेखों में ''वीरचैत्ये विधौ'' और शब्द से ऐसा लगता है कि ये जिनदत्तसूरि द्वारा ही प्रतिष्ठापित रहे हैं।

कुछ ऐसी भी जिन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जिन पर स्पष्ट रूप से ''**प्रतिष्ठितं खरतरगणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः**'' ऐसा शब्द उत्कीर्ण है। **इसकी लिपि परवर्तीकालीन है। दूसरे इस समय तक खरतरगच्छ शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ था, अतः ये लेख अप्रमाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं है।** (बीकानेर जैन लेख संग्रह, लेखांक 2183)

इस प्रकार महो.विनयसागरजी ने स्पष्ट शब्दों में स्पष्टीकरण किया है कि - उस समय तक खरतरगच्छ शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ था।

लालचन्द्र भगवानदास गांधीजी की कपोल कल्पना

इस प्रकार महोपाध्याय विनयसागरजी भी **'खरतर' शब्द की प्रसिद्धि जिनदत्तसूरिजी के समय तक नहीं हुई थी, बाद में हुई थी,** ऐसा स्वीकारते हैं। **परंतु कुछ अनुरागी जन खरतर बिरुद को प्राचीन सिद्ध करने हेतु 'खर' ये अक्षर जहाँ पर भी दिख जावे इसे 'खरतर' बिरुद का सूचक मानने को तैयार हो जाते हैं।** ऐसा ही जिनपीयूष-सागरसूरिजी की पुस्तिका 'खरतरगच्छ का उद्भव' में पृ. 5 पर दिये गये पं. लालचन्द्र भगवानदास गांधी के लेख में दिखता है। वह लेख जिनदत्तसूरिजी रचित **'कालस्वरूपकुलक' की 25वीं गाथा** संबंधी है। उसमें

''तुम्हह इहु पहुं चाहिलि दंसिउ हियइ बहुत्तु खरउ वीमंसिउ।''

इस वाक्य को **'खरतर'** बिरुद का सूचक माना है।

उनका लेख इस प्रकार है-

''उपर्युक्तायामेव गाथायां 'बहुत्तु खरउ' पदं प्रयुज्य ग्रन्थकर्त्रा निजाभिमतस्य विधिपथस्य 'खरतर' इति गच्छसंज्ञा ध्वनिता वितर्क्यते। विधिपथस्यैव तस्य कालक्रमेण प्रचलिता 'खरतरगच्छ' इत्यभिधाऽद्यावधि विद्यते।''

इसमें 'विधिपथस्यैव.....' के द्वारा भी स्पष्ट होता है कि **उस समय में जिनदत्तसूरिजी का गच्छ विधिपथ के रूप में प्रसिद्ध था** एवं बाद में उसकी खरतरगच्छ के नाम से प्रसिद्धि हुई।

'खरउ' से खरतरगच्छ के सूचित होने की बात का निराकरण इस ग्रंथ की टीका से ही हो जाता है। टीका का पाठ इस प्रकार है।

तुम्हह इहु पहु चाहिलि दंसिउ, हियइ बहुत्तु खरउ वीमंसिउ।
इत्थु करेज्जहु तुम्हि सयायरु, लीलइ जिव तरेहु भवसायरु।।25।।

(युष्माकमेष पन्थाश्चाहिलेन दर्शितो, हृदये प्रभूतं खरं विमर्श्य (मर्शितः)।
अत्र कुर्यात यूयं सदाऽऽदरं, लीलया यथा तरथ भवसागरम् ।।25।।)

व्या. युष्माकं यशोदेवाभू-आसिग-सम्भवानां एष पन्थाश्चाहिलेन युष्मत्पित्रा दर्शितः। अथ च चाहिलिकोऽर्थो वीक्ष्य सन्मार्ग्गपरीक्षणेन हृदये **बहु प्रभूतं खरमत्यर्थं विमर्श्य अत्र सन्मार्गे कुर्यात** यूयं सदा सर्वदा आदरं प्रयत्नं लीलया यथा तरथ भवसागरम्। किलाणहिलपाटकपत्तने चाहिलनामा श्रावको धर्मार्थी विचारचातुरीचञ्चुरभूत्। तस्य च चत्वारः पुत्रा बभूवुः। तद्यथा-**यशोदेवः,** अद्भुत **आभू** इति प्रसिद्धः, **आसिगः, सम्भवश्चेति।** तेन च चाहिलेन धर्म-गुरुपरीक्षा-

परायणेन प्रभुश्री जिनदत्तसूरयो धर्म्माचार्यतया प्रतिपन्नाः। ते च तत्पुत्राः पित्राज्ञारता अपि धर्मज्ञा अपि कालदोषात् युतभावं कर्तुमीषुः। स च चाहिलस्तथा गुणमनीक्षमाणः पुत्राणां शिक्षाप्रदिदापयिषया तथाविधस्वरूपगर्भां विज्ञप्तिकां प्रभुश्रीजिनदत्तसूरीणां प्रेषयामास। ततस्तैरपि करुणासुधासमुद्रैस्तेषामुप–चिकीर्षया एवंविधधर्मदेशनागर्भः प्रतिलेखः प्रेषितः। ततस्ते एतदनुसारेण प्रवर्त्तमाना विविधमानृधुः, विधिधर्मं चाराधयामासुरिति।।25।।

इसमें '**खरउ वीमंसिउ**' का अर्थ–'**खरमत्यर्थं विमर्श्य...**' इस प्रकार किया है। एवं श्लोक का भावार्थ यह है कि चाहिल नाम के व्यक्ति को चार पुत्र थे, वे काल के दोष से सद्धर्म से भ्रष्ट हो गये थे, अतः उन्हें प्रतिबोध करने हेतु जिनदत्तसूरिजी को विज्ञप्ति भेजी थी। उसके जवाब के रूप में जिनदत्तसूरिजी ने यह उपदेशात्मककुलक उन पुत्रों को भेजा था। इसमें अंत में यह उपदेश दिया कि आपके पिता चाहिल ने जो मार्ग बताया है, उसके **विषय में खूब विचार करके सन्मार्ग में सदा प्रवृत्त** रहना। इस प्रकार यहाँ पर '**खरउ वीमंसिउ' के द्वारा उन पुत्रों को खूब विचार करने की बात कही थी तो उसमें 'खरउ' से खरतरगच्छ का सूचित होना कैसे माना जा सकता है?**

टीका प्रशस्ति

सूरप्रभोऽभिषेकः श्रीजिनपतिसूरिपदकमलभृङ्गः।
व्यावृत द्वारात्रिंशतमल्पमेधसां किमपि बोधाय।।1।।
कालस्वरूपकुलकं व्याख्याय यदर्जितं मया पुण्यम्।
तेनास्तु भव्यलोकः सकलोऽपि विधिप्रबोधरतः।।2।।

इस प्रशस्ति में भी सूरप्रभ उपाध्याय ने 'विधिप्रबोधरतः' के द्वारा अपने गच्छ को विधिगच्छ के रूप में बताया है।

इस प्रकार हमने देखा कि **खरतरगच्छ के अनुयायियों के द्वारा 'खरतर' बिरुद प्राप्ति विषयक दिये जाने वाले प्राचीन प्रमाण, ऐतिहासिक कसौटी करने पर अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं,** अतः पूर्व में बताये हुए प्राचीन प्रमाणों के आधार से सिद्ध होता है कि जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का उल्लेख उनकी परंपरा में 200 साल तक किसी ने नहीं किया है परंतु चान्द्रकुल आदि का ही उल्लेख किया है। **अतः स्पष्ट होता है कि जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद नहीं मिला था।**

पुरातत्त्वाचार्य जिनविजयजी के उल्लेख...

जिनेश्वरसूरिजी के जीवन चरित्र विषयक अर्वाचीन साहित्य के अवलोकन के पूर्व में यहाँ पर **जिनविजयजी** के तत्संबंधी लेख देने उचित लगते हैं। वे इस प्रकार हैः-

(1) जिनेश्वर सूरि के जीवन चरित्र का साहित्य

जिनेश्वर सूरि के इस प्रकार के युगावतारी जीवन कार्य का निर्देश करनेवाले उल्लेख यों तो सेंकडों ही ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। क्योंकि उनकी शिष्य सन्तति में आज तक सेंकडों ही विद्वान् और ग्रन्थकार यतिजन हो गये हैं और उन सबने प्रायः अपनी अपनी कृतियों में इनके विषय में थोड़ा-बहुत स्मरणात्मक उल्लेख अवश्य किया है। इन ग्रंथों के सिवाय, बीसियों ऐसी गुरुपट्टावलियाँ हैं, जिनमें इनके चैत्यवास निवारण रूप कार्य का अवश्य उल्लेख किया हुआ रहता है। ये पट्टावलियाँ भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न यतियों द्वारा, प्राकृत, संस्कृत और प्राचीन देश्य भाषा में लिपिबद्ध की हुई है। इन ग्रंथस्थ लेखों के अतिरिक्त जिनमूर्तियों और जिनमन्दिरों के ऐसे अनेक शिलालेख भी मिलते हैं। जिनमें भी इनके विषयका कितनाक सूचनात्मक एवं परिचयात्मक निर्देश किया हुआ उपलब्ध होता है। **परन्तु ये सब निर्देश, अपेक्षाकृत उत्तरकालीन हो कर, मूलभूत जो सबसे प्राचीन निर्देश हैं उन्हीं के अनुलेखन रूप होने से तथा कहीं-कहीं विविध प्रकार की अनैतिहासिकताका स्वरूप धारण कर लेने से, इनके विषय में यहाँ खास विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।** हम यहाँ पर उन्हीं निर्देशों का सूचन करते हैं जो सबसे प्राचीन हो कर ऐतिहासिक मूल्य अधिक रखते हैं। **(कथाकोष-प्रकरण-प्रस्तावना, पृ. 7-8)**

(2) जिनेश्वरसूरि के चरित्र की साहित्यिक सामग्री।

जिनेश्वरसूरि के जीवन का परिचय करानेवाली ऐतिहासिक एवं साहित्यिक मुख्य साधन-सामग्री निम्न प्रकार है-

1. जिनदत्तसूरिकृत **'गणधरसार्द्धशतक'** ग्रंथ की **सुमतिगणि** विरचित **बृहद्वृत्ति**।
2. जिनपालोपाध्याय संगृहीत **'स्वगुरुवार्ता नामक बृहत् पट्टावलि'** का आद्य प्रकरण।

3. प्रभाचंद्रसूरिविरचित '**प्रभावकचरित्र**' का अभयदेवसूरिप्रबन्ध।

4. सोमतिलकसूरिकृत '**सम्यक्त्व सप्ततिकावृत्ति**' में कथित धनपाल-कथा।

5. किसी अज्ञातनामक विद्वान् की बनाई हुई प्राकृत 'वृद्धाचार्य-प्रबन्धावलि'..

5) पांचवाँ साधन, एक प्राकृत '**बृद्धाचार्यप्रबन्धावलि**' है जो हमें पाटण के भण्डार में उपलब्ध हुई है। **इसके रचयिता का कोई नाम नहीं मिला।** मालूम देता है जिनप्रभ सूरि (विविधतीर्थकल्प तथा विधिप्रपा आदि ग्रंथों के प्रणेता) के किसी शिष्य की की हुई रचना है, क्योंकि इसमें जिनप्रभ सूरि एवं उनके गुरु जिनसिंह सूरि का भी चरित-वर्णन किया हुआ है। इसमें संक्षेप में वर्द्धमान सूरि, जिनेश्वर सूरि आदि आचार्यों का चरित-वर्णन है परंतु **वह प्रायः इधर-उधर से सुनी गई किंवदन्तियों के आधार पर लिखा गया मालूम दे रहा है। इससे इसका भी ऐतिहासिकत्व विशेष विश्वसनीय हमें नहीं प्रतीत होता।** जिनेश्वर सूरि की पूर्वावस्था का ज्ञापक उल्लेख इसमें और ही तरह का है जो सर्वथा कल्पित मालूम देता है।

इन साधनों में, प्रथम के तीन निबन्ध हमें अधिक आधारभूत मालूम देते हैं और इसलिये इन्हीं निबन्धों के आधार पर हम यहाँ जिनेश्वर सूरि के चरित का सार देने का प्रयत्न करते हैं। **(कथाकोष प्रकरण-प्रस्तावना पृ. 20-21)**

(3) वृद्धाचार्य प्रबन्धावलिगत जिनेश्वर सूरि के चरित का सार।

ऊपर हमने, इनके चरित का साधनभूत ऐसे एक प्राकृत 'वृद्धाचार्य-प्रबन्धावलि' नामक ग्रंथ का भी निर्देश किया है। इसमें बहुत ही संक्षेप में जिनेश्वर सूरि का प्रबन्ध दिया गया है जो कि असंबद्धप्रायः है।*

(कथाकोषप्रकरण-प्रस्तावना, पृ. 36)

(4) कथाओं के सारांश का तारण।

इस प्रकार ऊपर हमने जिनेश्वरसूरि के चरित का वर्णन करने वाले जिन

---

* जिनविजयजी की यह बात सही है, क्योंकि इस प्रबन्धावली में सं. 1167 में स्वयं अभयदेवसूरिजी के हाथ से जिनवल्लभगणिजी को आचार्य पद दिये जाने की बात लिखी है, वह इतिहास विरुद्ध है। इतिहास में अभयदेवसूरिजी का सं. 1134/ सं. 1138 स्वर्गवास होना बताया है, तो सं. 1167 में वे कैसे मौजूद हो सकते हैं? – संपादक

प्रबन्धों-निबन्धों का सार उद्धृत किया है, उससे उनके चरित के दो भाग दिखाई पड़ते हैं-एक उनकी पूर्वावस्था का और दूसरा दीक्षित होने के बाद का। पूर्वावस्था के चरित के सूचक प्रभावक चरित आदि जिन भिन्न-भिन्न 3 आधारों का हमने सार दिया है, उससे ज्ञात होता है कि वे परस्पर विरोधी हो कर असंबद्ध से प्रतीत होते हैं। **इनमें सोमतिलकसूरि कथित धनपालकथा वाला जो उल्लेख है यह तो सर्वथा कल्पित ही समझना चाहिये। क्योंकि धनपाल ने स्वयं अपनी प्रसिद्ध कथा-कृति 'तिलकमञ्जरी' में अपने गुरु का नाम महेन्द्रसूरि सूचित किया है और प्रभावक चरित में भी उसका यथेष्ट प्रमाणभूत वर्णन मिलता है। इसलिये धनपाल और शोभन मुनि का जिनेश्वर सूरि को मिलना और उनके पास दीक्षित होना आदि सब कल्पित है।** मालूम देता है सोमतिलकसूरि ने धनपाल की कथा और जिनेश्वर सूरि की कथा, जो दोनों भिन्न-भिन्न हैं, उनको एकमें मिलाकर इन दोनों कथाओं का परस्पर संबंध जोड़ दिया है जो सर्वथा अनैतिहासिक है।

वृद्धाचार्य प्रबन्धावलि में, जिनेश्वरसूरि की सिद्धपुर में सरस्वती के किनारे वर्धमानसूरि से भेंट हो जाने की जो कथा दी गई है, वह भी **वैसी ही काल्पनिक समझनी चाहिए।**

प्रभावकचरित की कथा का मूलाधार क्या होगा सो ज्ञात नहीं होता। इसमें जिस ढंग से कथा का वर्णन दिया है, उससे उसका असंबद्ध होना तो नहीं प्रतीत होता। दूसरी बात यह है कि प्रभावकचरितकार बहुत कुछ आधारभूत बातों-ही-का प्रायः वर्णन करते हैं। उन्होंने अपने ग्रंथ में यह स्पष्ट ही निर्देश कर दिया है कि इस ग्रंथ में जो कुछ उन्होंने कथन किया है उसका आधार या तो पूर्व लिखित प्रबन्धादि है या वैसी पुरानी बातों का ज्ञान रखने वाले विश्वस्त वृद्धजन हैं। इसमें से जिनेश्वर की कथा के लिये उनको क्या आधार मिला था इसके जानने का कोई उपाय नहीं है। संभव है वृद्धपरंपरा ही इसका आधार हो। **क्योंकि यदि कोई लिखित प्रबन्धादि आधारभूत होता तो उसका सूचन हमें उक्त सुमतिगणि या जिनपालोपाध्याय के प्रबन्धों में अवश्य मिलता।** इन दोनों ने अपने निबन्धों में इस विषय का कुछ भी सूचन नहीं किया है **इससे ज्ञात होता है कि जिनेश्वरकी पूर्वावस्था के विषय में कुछ विश्वस्त एवं आधारभूत वार्ता उनको नहीं मिली थी।** ऐसा न होता तो वे अपने निबन्धों में इसका सूचन किये बिना कैसे चुप रह सकते थे। क्योंकि उनको तो इसके उल्लेख करने का सबसे अधिक आवश्यक और

उपयुक्त प्रसंग प्राप्त था और इसके उल्लेख बिना उनका चरितवर्णन अपूर्ण ही दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में **प्रभावकचरित्र के कथन को कुछ संभवनीय मानना हो तो माना जा सकता है।(कथाकोषप्रकरण–प्रस्तावना, पृ. 37)**

(5) परन्तु सुमतिगणिजी और जिनपालोपाध्याय ने इस वर्णन को खूब बढ़ा–चढ़ाकर तथा अपने गुरुओं का बहुत ही गौरवमय भाषा में और चैत्यवसियों का बहुत ही क्षुद्र एवं ग्राम्य भाषा में, नाटकीय ढंग से चित्रित किया है– जिसका साहित्यिक दृष्टि से कुछ महत्त्व नहीं है। तब प्रभावक चरितकार ने उस वर्णन को बहुत ही संगत, संयत और परिमित रूप में आलेखित किया है, जो बहुत कुछ साहित्यिक मूल्य रखता है।

(कथाकोषप्रकरण–प्रस्तावना, पृ. 40–41)

जिनविजयजी के लेखों का सार

इन लेखों के आधार से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि –

1) जिनविजयजी के द्वारा गणधरसार्द्धशतक की बृहद्वृत्ति, गुर्वावली और प्रभावक चरित्र ये तीन ग्रंथ ही जिनेश्वरसूरिजी के चरित्र के विषय में आधार रूप माने गये हैं।

2) तथा धनपाल कवि और शोभनमुनि की कथा को जिनेश्वरसूरिजी से जोड़ने के कारण सोमतिलकसूरिजी की 'सम्यक्त्व सप्ततिका' की टीका को प्रमाणित नहीं माना है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि '**वर्तमान में कवि धनपाल और शोभनमुनिजी के खरतरगच्छीय होने का जो प्रचार किया जा रहा है, वह इतिहास से विरुद्ध है।**'

3. वृद्धाचार्य प्रबन्धावली जो 15–16वीं शताब्दी की अज्ञात कर्तृक कृति है, वह असंबद्ध प्रायः है, अतः ऐतिहासिक मूल्य नहीं रखती है।

4. सुमतिगणिजी और जिनपाल उपाध्यायजी द्वारा किया गया वाद का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण होने से विशेष महत्त्व का नहीं है। ऐसी स्थिति में 'प्रभावक चरित्र' के वर्णन को मुख्य प्रमाण मानना उचित लगता है।

इस प्रासंगिक निरीक्षण के बाद हम अपने मूल विषय पर आते हैं। **''जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला था'' ऐसा जिनविजयजी निर्दिष्ट पाँच साहित्यिक सामग्री में से केवल वृद्धाचार्य प्रबन्धावली में ही उल्लेख मिलता है।**

और वह भी जिनविजयजी के मत से विशेष ऐतिहासिक मूल्य नहीं रखती है। तथा खरतर बिरुद की प्राप्ति की बात जिसमें आती है, ऐसी वर्तमान में उपलब्ध 18-19वीं शताब्दी की पट्टावलियाँ भी इस प्रबन्धावली के आधार से ही लिखी गयी है। अतः जिनविजयजी ने उन्हें भी विश्वसनीय नहीं मानी है।

महो. विनयसागरजी ने भी अर्वाचीन पट्टावलियों में त्रुटियाँ होने की बात को 'खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास' के स्वकथ्य में पृ. 36 पर स्वीकारा है। देखिये– 'क्षमाकल्याणोपाध्याय रचित खरतरगच्छ पट्टावली की रचना वि. सं. 1830 में हुई है। यह पट्टावली श्रवण परम्परा पर आधारित है। 8, 9 शताब्दी पूर्व के आचार्यों के वृत्तान्त एवं घटनाओं में कुछ भूल हो, यह स्वाभाविक है।'

इस प्रकार जिनविजयजी के संशोधनात्मक उल्लेख से ही 'वृद्धाचार्य प्रबन्धावलि एवं उसका अनुसरण करनेवाली अर्वाचीन पट्टावलीयाँ अनैतिहासिक सिद्ध होती हैं, उसी के साथ उसमें बताई गयी 'खरतर बिरुद प्राप्ति की बात' अनैतिहासिक एवं अर्वाचीन कल्पना सिद्ध होती है। इस बात की पुष्टि महो. विनयसागरजी के उल्लेख से भी होती है।

अतः खरतर बिरुद प्राप्ति की बात के उसके निराकरण हेतु विशेष लिखने की जरुरत नहीं रहती है, फिर भी खरतर बिरुद प्राप्ति की बात का लंबे समय से प्रचार किया गया होने से सामान्य जन के अंतःस्थल में वह ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। इसलिए 'खरतर बिरुद प्राप्ति' के जो उल्लेख मिलते है, उनका क्रमबद्ध ऐतिहासिक निराकरण यहाँ पर दिया जा रहा है, ताकि इसे पढ़कर चिरकाल से रूढ़ हुई गलत मान्यता को सुधारी जा सके।

महो. विनयसागरजी का स्पष्ट बयान!!!

''कुछ ऐसी भी जिन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं, जिन पर स्पष्ट रूप से 'प्रतिष्ठितं खरतरगणाधीश्वर श्री जिनदत्तसूरिभिः' ऐसा शब्द उत्कीर्ण है। इसकी लिपि परवर्तीकालीन है। दूसरे इस समय तक खरतरगच्छ शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ था, अतः ये लेख अप्रामाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं है।''

(बीकानेर जैन लेख संग्रह, लेखांक 2183)

–खरतरगच्छ का बृहत इतिहास, खण्ड 1, पृ. 53

सं. 1080 में दुर्लभ राजसभा की कसौटी

खरतरगच्छ के परवर्ती साहित्य में जिनेश्वरसूरिजी को सं. 1080, सं. 1024 आदि में दुर्लभ राजा की सभा में 'खरतर' बिरुद मिलने के उल्लेख मिलते हैं। परंतु कसौटी करने पर वे गलत सिद्ध होते हैं, क्योंकि

पं. गौरीशंकरजी ओझा के '**सिरोही राज के इतिहास**', पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ के '**भारतवर्ष का प्राचीन राजवंश**', '**गुर्जरवंश भूपावली**' तथा आचार्य मेरुतुंगसूरिकृत '**प्रबंध चिन्तामणि**' आदि अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि '**दुर्लभ राजा सं. 1066 से सं. 1078** तक ही विद्यमान थे तथा उनके बाद सं. 1078 से सं. 1120 तक भीमराज का राज्य था।[*1] और इसीलिये खरतर यति रामलालजी ने खरतर बिरुद की प्राप्ति के विषय में 'महाजनवंश मुक्तावली' पृ. 167 पर सं. 1080 में दुर्लभ (भीम) और खरतर-वीरपुत्र आनन्दसागरजी ने श्री कल्पसूत्र के हिन्दी अनुवाद में भी वि. सं. 1080 में राजा दुर्लभ (भीम) ऐसा लिखना चालु किया।[*2]

(भीम) इस तरह कोष्ठक में लिखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें अपनी पट्टावलीओं में बतायी सं. 1080 में दुर्लभ राजा की बात में संदेह हो गया था।

इतिहास में बढ़ा एक और विसंवाद

इन सब ऐतिहासिक विसंवादों के निराकरण हेतु वर्तमान में सं. 1075 में 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का नया प्रचार किया जाने लगा है,[*3] ताकि दुर्लभराजा की मौजुदगी में इस बिरुद प्राप्ति की सिद्धि हो सके।

सं. 1075 में खरतर बिरुद प्राप्ति की कल्पना का अब तक के किसी भी साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता है। **इस तरह किसी आधार एवं ऐतिहासिक स्पष्टीकरण को दिये बिना अपनी मान्यता की सिद्धि के लिए इतिहास में फेरफार करना इतिहास का द्रोह कहलाता है**[*4] और इससे खरतरगच्छ की उत्पत्ति में प्रचलित विसंवादों में एक और बढ़ौती ही हुई है। इस कारण से 'खरतरगच्छ के उद्‌भव' के विषय में खरतरगच्छ के अनुयायियों में भी मतभेद पड़ गया है।

*1 देखें-परिशिष्ट 1, पृ. 81

*2 देखें-खरतरमतोत्पत्ति भाग -2, पृ. 3

*3 देखें-खरतरगच्छ का गौरवशाली इतिहास-मुनि मनितप्रभसागरजी, श्वेताम्बर जैन, जून 2016

*4 पू. जिनपियूषसागरजी म. ने भी ''खरतरगच्छ का उद्‌भव'' पुस्तक निकालकर सं. 1075 के मत का खण्डन किया है।

क्या जिनेश्वरसूरिजी और सूराचार्य मिले थे?

वृद्धाचार्य प्रबन्धावली आदि खरतरगच्छ के परवर्ती ग्रंथों में तथा खरतरगच्छ के इतिहास संबंधी प्रायः वर्तमान के सभी साहित्य में* सं. 1080 में **जिनेश्वरसूरिजी का चैत्यवासी सूराचार्य के साथ वाद होना भी बताया जाता है,** जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विसंवाद से भरा हुआ प्रतीत होता है क्योंकि–

1. एक तो सं. 1080 में दुर्लभ राजा के नहीं होने से, उसकी राज–सभा में वाद ही शक्य नहीं है।

2. दुसरी बात, **प्रभावक चरित्र** के अनुसार सूराचार्य तो द्रोणाचार्य के भतीजे एवं शिष्य थे। तथा इसी ग्रंथ में सूराचार्य का दुर्लभराजा के बाद में हुए भीम देव (पाटण) एवं भोजराजा (मालवा) संबंधित रोमांचक इतिहास भी दिया है।

दुर्लभ राजा की राज्यसभा में जिनेश्वरसूरिजी के प्रतिस्पर्धी आचार्य एवं चैत्यवासिओं के अधिपति के रूप में सूराचार्य का होना भी संभव नहीं है क्योंकि जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य ऐसे अभयदेवसूरिजी के समय तक तो सूराजार्य के गुरु द्रोणाचार्य ही पाटण संघ के प्रमुख आचार्य के रूप में विद्यमान थे। एवं वे चैत्यवासी होते हुए भी शुद्ध प्ररुपक थे, इसीलिए अभयदेवसूरिजी ने भी अपनी नवाङ्गी टीकाओं एवं अन्य ग्रंथों का उनके पास संशोधन करवाया था।

अभयदेवसूरिजी ने स्वयं 'भगवती सूत्र' की टीका की प्रशस्ति के–

शास्त्रार्थनिर्णयसुसौरभलम्पटस्य, विद्वन्मधुव्रतगणस्य सदैव सेव्यः।
श्री निर्वृताख्यकुलसन्नदपद्मकल्पः श्री द्रोणसूरिरनवद्ययशःपरागः।।9।।

शोधितवान् वृत्तिमिमां युक्तो विदुषां महासमूहेन।
शास्त्रार्थनिष्कनिकषणकषपट्टककल्पबुद्धीनाम्।।10।।

इन दो श्लोकों में 9वें श्लोक में–द्रोणाचार्यजी को शास्त्रार्थ निर्णय हेतु आश्रयणीय कहकर उनकी ज्ञान–गरिमा एवं शुद्धप्ररूपकता की प्रशंसा की है।

उसी तरह 10वें श्लोक में '**विदुषां महासमूहेन...**' के द्वारा द्रोणाचार्यजी के शिष्यों की ज्ञान गरिमा एवं शुद्ध प्ररूपकता की भी प्रशंसा की है।

* देखें – खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास–महोपाध्याय विनयसागरजी।
– खरतरगच्छ का उद्भव–आ. जिनपीयूषसागरसूरिजी।
– खरतरगच्छ का गौरवशाली इतिहास–मुनि मनितप्रभसागरजी, श्वेताम्बर जैन, जुन 2016

सूराचार्य द्रोणाचार्यजी के प्रमुख शिष्य थे अतः यह प्रशंसा मुख्यतया उनको लेकर की गयी थी।

तथा स्वयं द्रोणाचार्यजी ने ओघनिर्युक्ति की टीका में चैत्यवासियों का खण्डन करके उद्यत विहार की प्ररूपणा की है, अतः उनकी मौजुदगी तक तो सूराचार्य का वरिष्ठ आचार्य होने एवं चैत्यवास के पक्ष में बैठकर वाद के लिए उपस्थित होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। इतिहास प्रेमी इस पर चिंतन करें।

जिनविजयजी के अभिप्राय की समीक्षा

इस प्रकार प्रभावक चरित्र एवं अभयदेवसूरिजी की टीका की प्रशस्ति तथा द्रोणाचार्यजी की ओघंनिर्युकि टीका के अनुसार जब जिनेश्वरसूरिजी और सूराचार्य का वाद ही संभवित नहीं होता है, तब से ''बृहद्वृत्ति, गुर्वावली आदि के आधार से जिनेश्वरसूरिजी का सूराचार्य से वाद हुआ होने पर भी प्रभावक चरित्र में सूराचार्य के चरित्र वर्णन में उनके मानभंग के भय से वाद का वर्णन नहीं किया गया'', इस प्रकार का जिनविजयजी का ओसवाल वंश पृ. 33-34 पर जो अभिप्राय दिया गया है और जिसका उद्धरण 'खरतरगच्छ का उद्भव' पृ. 33-34 पर किया गया है, वह भी निरस्त हो जाता है।

दुसरी बात- जिनविजयी ने अनाभोग के कारण ऐसा अभिप्राय दिया होगा ऐसा लगता है, क्योंकि स्वयं ने ही बृहद्वृत्ति, गुर्वावली से ज्यादा प्रभावक चरित्र को प्रमाणिक माना है तथा बृहद्वृत्ति तथा गुर्वावली के वर्णन को अतिशयोक्ति माना है। (देखें पीछे पृ. 34)

‘खरतर’ शब्द का अर्थ एवं बिरुद के रूप में विरोधाभास

I ‘खरतर’ यह शब्द वाद में जीते हुए जिनेश्वरसूरिजी के पक्ष की सच्चाई की प्रशंसा के लिए प्रयुक्त किया गया था, ऐसा मानना ही उचित नहीं लगता है क्योंकि–

1. संस्कृत में ‘खरतर’ शब्द का अर्थ–अति कठोर, तेज, तीखा, निष्ठुर, कर्कश, गरम आदि होता है एवं व्यवहार में भी उसका प्रयोग ‘विशेष कठोरता’ के लिये होता है। वर्तमान में भी ‘इनका स्वभाव खडतल है’ और ‘यह संयम में खडतल है’ इस प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं। परंतु खरतर शब्द का कहीं भी सत्य–निष्ठता के अर्थ में प्रयोग नहीं पाया जाता है।

2. इस विसंवाद को टालने के लिये अगर कहा जाय कि ‘खरे हो’ ऐसे अर्थ वाला ‘खरतर’ शब्द ‘खरा’ ऐसे देशी शब्द से बना है जिसका प्रयोग किया गया था।[*1] तो वह भी शक्य नहीं है क्योंकि खरा यह देशी शब्द है और तर यानि तरप् यह संस्कृत प्रत्यय है, तो दोनों का जोड़ान कैसे होगा? तथा दुर्लभ राजा जैसा विद्वान राजा इस प्रकार का गलत प्रयोग कैसे कर सकता है? यह भी विचारणीय है।

3. तथा व्यवहार में ‘खरा’ का प्रतिपक्षी शब्द ‘खोटा’ होता है।[*2] अगर ‘खरे हो’ इस अर्थ में जीतने वाले पक्ष को खरतर बिरुद दिया गया तो, हारनेवाले पक्ष के लिये ‘खोटे हो’ इस अर्थ वाले शब्द का प्रयोग किया

---

*1 ‘समस्या समाधान और संतुष्टि’ पृ. 192 पर मनितप्रभसागरजी म.सा. ने, **‘राजा ने खड़े होकर क्या कहा?’** इस प्रश्न 22 के जवाब में लिखा कि –**‘आचार्यवर ! आप खरे हो !’ इसीसे खरतरगच्छ की परम्परा का सूत्रपात हुआ।’**
विचारणीय प्रश्न – इसी पृ. 192 के प्रश्न 25 के जवाब में ‘‘जिनदत्तसूरिजी के समय विधिमार्ग ‘खरतरगच्छ’ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।’’ ऐसा लिखा है तो प्रश्न होता है कि जिनेश्वरसूरिजी को सं. 1080 में ‘खरे हो’ ऐसा संबोधन किया गया हो और 125 साल के लंबे समय के बाद सं. 1204 में जिनदत्तसूरिजी के समय में गच्छ का नाम ‘खरतरगच्छ’ हुआ यह कैसे संभव है?

*2. अभी अभी खरतरगच्छ की ओर से छपी ‘खरी–खोटी’ इस पुस्तिका का नाम भी इस बात की पुष्टि करता है।

गया होना चाहिए परंतु ऐसा नहीं है, क्योंकि हारनेवाले चैत्यवासी 'कँवला' 'कोमला' इस प्रकार कोमलता वाचक शब्दों से कहे जाने लगे, ऐसा खरतरगच्छ की पट्टावलियाँ कहती है। अतः खरतरगच्छ की पट्टावलीयों से भी 'खरा हो' इस अर्थ में खरतर बिरुद का दिया जाना गलत सिद्ध होता है।

इस प्रकार व्याकरण, व्यवहार एवं खरतरगच्छ की पट्टावली के उल्लेखों से 'खरा हो' इस अर्थ में 'खरतर' बिरुद का दिया जाना गलत सिद्ध होता है।

II दूसरी बात जिनेश्वरसूरिजी को आचार की कठोरता के उपलक्ष्य में 'खरतर' बिरुद दिया गया था, ऐसा भी नहीं कह सकते हैं। क्योंकि शिथिलाचारी ऐसे चैत्यवासी एवं उद्यत विहारी ऐसे जिनेश्वरसूरिजी में से किसकी चर्या कठोर थी वह तो सामान्य जन में भी प्रसिद्ध थी। अतः **'आचार की कठोरता किसकी है?' उसके निर्णय हेतु वाद का होना ही संभव नहीं है और न ही वाद में विजय पाने पर किसी के आचार की कठोरता की प्रशंसा की जाती है, वहाँ तो विजयी पक्ष की सत्यता एवं ज्ञान की उत्कृष्टता ही प्रशंसनीय होती है।**

इस प्रकार सिद्ध हाता है कि 'जिनेश्वरसूरिजी का पक्ष **खरा** है, **शास्त्रीय** है' अथवा 'उनका **चारित्र कठोर** है', इसमें से किसी भी अर्थ में **'खरतर'** शब्द का बिरुद के रूप में प्रयोग किया जाना ही **जब संभव नहीं है,** तब जिनेश्वरसूरिजी को **खरतर** बिरुद दिया गया था, यह कैसे कह सकते हैं?

महोपाध्याय विनयसागरजी ने भी **'खरतरगच्छ का वृहद् इतिहास', प्रथम खण्ड पृ.** 12 पर-

''खरतरगच्छीय परंपरा के अनुसार चौलुक्य नरेश दुर्लभराज की राजसभा में चैत्यवासियों के प्रमुख आचार्य सूराचार्य से शास्त्रार्थ में विजयी होने पर राजा ने जिनेश्वरसूरि को खरतर उपाधि प्रदान की और उनकी शिष्यसन्तति खरतरगच्छीय कहलायी। **दुर्लभराजा ने जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद प्रदान किया हो अथवा नहीं किन्तु इतना तो सुनिश्चित है कि शास्त्रार्थ में**[*1] उनका पक्ष सबल अर्थात खरा सिद्ध हुआ और उसी समय से सुविहितमार्गीय मुनिजनों के लिये गूर्जर भूमि विहार हेतु खुल गया। मुनि जिनविजय आदि विभिन्न विद्वानों ने भी इस बात को स्वीकार

*1 सूराचार्य से वाद हुआ था या नहीं उसके स्पष्टीकरण के लिये देखिये पृ. 37-38

किया है।''

तथा पृ. 13 पर –

''**यह सत्य है कि इस समय खरतर शब्द का प्रचलन नहीं रहा किन्तु जैसा कि ऊपर हम देख चुके हैं खरतर शब्द से पहले इसके लिये 'सुविहितमार्ग' एवं 'विधिमार्ग' जैसे शब्द प्रचलित रहे और वर्धमान, जिनेश्वर, अभयदेव आदि को सभी विद्वान् सुविहितमार्गीय ही बतलाते हैं।** स्वयं खरतरगच्छीय परम्परा भी उन्हें अपना पूर्वज मानती है। और कोई भी अन्य परम्परा स्वयं को इनसे सम्बद्ध नहीं करती[*1] अतः **यह स्पष्ट है कि वर्धमान, जिनेश्वर, अभयदेव खरतरगच्छीय नहीं** अपितु खरतरगच्छीय जिनवल्लभ, जिनदत्त, मणिधारी जिनचंद्रसूरि, जिनपतिसूरि आदि के पूर्वज अवश्य थे और ऐसी स्थिति में उत्तरकालीन मुनिजनों द्वारा अपने पूर्वकालीन आचार्यों को अपने गच्छ का बतलाना स्वाभाविक ही है।''[*2]

इन उल्लेखों से जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिलने के विषय में संदेह बताया है एवं अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे, ऐसा स्वीकार किया है।

खरतरगच्छ के ही इतिहासज्ञ जब इस प्रकार स्वीकार कर रहे हैं, तब खरतरगच्छ के सभी अनुयायिओं को भी इस विषय पर शान्ति से विचार करना जरुरी बन जाता है।

प्रमाण क्या कहते हैं ???

'**खरतरगच्छ का उद्भव**' पुस्तिका के पृ. 17 पर दिया गया '**गणधर–सार्धशतक**' की बृहद्वृत्ति'**प्राप्त खरतर बिरुद भगवन्तः श्री जिनेश्वरसूरयः**' ऐसा पाठ, पृ. 100 से 103 पर दिये गये प्रमाणों से बाधित होता है।

---

*1. उनकी यह बात उचित नहीं है क्योंकि रूद्रपल्लीय गच्छ तथा अभयदेवसूरि संतानीय (छत्रापल्लीय) परंपरा भी स्वयं को इन्हीं पूर्वाचार्यों सेजोड़ती ही है। –देखें पृ. 19 और 68

*2. अभयदेवसूरिजी आदि जिनवल्लभगणिजी, जिनदत्तसूरिजी आदि के पूर्वज थे कि नहीं उसके स्पष्टीकरण हेतु देखिये पृ. 53–55

निष्कर्ष

इस प्रकार

1. जिनेश्वरसूरिजी एवं उनके शिष्यों के उल्लेख ।
2. खरतरगच्छ के सहभावी रुद्रपल्लीय गच्छ एवं अन्य गच्छों के उल्लेख।
3. प्राचीन ऐतिहासिक प्रबंध-प्रभावक चरित्र के उल्लेख।
4. पं. कल्याणविजयजी आदि ऐतिहासिक विशेषज्ञों के अपने ठोस ऐतिहासिक अध्ययन के आधार से दिये गये मंतव्य के उल्लेख।
5. पाठ प्रक्षेप की प्रवृत्ति।
6. सं. 1080 में दुर्लभ राजा की कसौटी
7. जिनेश्वरसूरिजी और सूराचार्य के वाद की अनुपपत्ति और
8. खरतर शब्द के बिरुद के रूप में विरोधाभास आदि से **जब सिद्ध होता है कि जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद नही मिला था, तो खरतर बिरुद की प्राप्ति को सं. 1080 में (जो इतिहास से विसंवादी है) अथवा सं. 1075 में (जिसका कहीं पर भी निर्देश नहीं है) मानना कहाँ तक उचित है? और उसके आधार पर सहस्राब्दी को मनाना भी विचारणीय बनता है।**

तथा जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद नहीं मिला होने से उनकी परंपरा में हुए "**नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरिजी भी खरतरगच्छीय नहीं थे।**" यह सिद्ध हो जाता है।

खरतरगच्छीय नहीं थे कवि धनपाल !!!

-जिनविजयजी

धनपाल ने स्वयं अपनी प्रसिद्ध कथा-कृति 'तिलकमञ्जरी' में अपने गुरु का नाम महेन्द्रसूरि सूचित किया है और प्रभावक चरित में भी उसका यथेष्ट प्रमाणभूत वर्णन मिलता है। इसलिये धनपाल और शोभन मुनि का जिनेश्वरसूरि को मिलना और उनके पास दीक्षित होना आदि सब कल्पित है।

- कथाकोष प्रकरण-प्रस्तावना, पृ. 37

‘खरतर’ शब्द की प्रवृत्ति कब और किससे?

इस प्रकार जब सिद्ध होता है कि जिनेश्वरसूरिजी से खरतरगच्छ की उत्पत्ति नहीं हुई, तब प्रश्न उठता है कि खरतरगच्छ के आद्य पुरुष कौन थे?

इस पर अगर विचार किया जाय तो पता चलेगा कि–

खरतरगच्छ में जिनदत्तसूरिजी को प्रथम दादा गुरुदेव के रूप में जितना महत्त्व एवं बहुमान दिया गया है, उतना जिनेश्वरसूरिजी के विषय में नहीं दिखता है। तथा वर्तमान में भी खरतरगच्छ वाले प्रतिक्रमण में जिनत्तसूरिजी का काउस्सग्ग करते हैं, जिनेश्वर–सूरिजी का नहीं।

दूसरी बात जिनवल्लभगणिजी के गुरुभाई एवं जिनदत्तसूरिजी के समकालीन ऐसे जिनेशेखरसूरिजी की शिष्य परंपरा भी खुद को ‘रुद्रपल्लीय’ कहती है, ‘खरतर’ नहीं।

अतः अनुमान किया जा सकता है कि **‘खरतर’ शब्द की प्रवृत्ति जिनदत्तसूरिजी से हुई होगी, इसीलिए ‘खरतर’ गच्छ की परंपरा उन्हीं को वफादार भी है।**

अंचलगच्छ के शतपदी ग्रंथ तथा तपागच्छ की पट्टावली आदि अन्य गच्छ के ग्रंथों में सं. 1204 से हीं खरतरगच्छ की उत्पत्ति बतायी जाती है, जो उपर किये गये अनुमान को पुष्ट करती है। तथा कई इतिहासज्ञ भी इसी बात को प्रमाणित करते हैं।*1

इतना ही नहीं, **वर्तमान में, शत्रुंजय की पावन भूमि पर हुए खरतरगच्छ महासम्मेलन एवं पदारोहण समारोह की आमंत्रण पत्रिका में लिखा है कि– ‘दादा गुरुदेव श्री जिनदत्तसूरिजी के काल में खरतरगच्छ के रूप में गौरवान्वित हुआ।’** तथा **‘समस्या–समाधान और संतुष्टि’** पुस्तक के पृ. 192 में **मुनि मनितप्रभसागरजी** ने प्रश्न 25 में **‘जिनदत्तसूरि के समय विधिमार्ग किस नाम से प्रसिद्ध हुआ?’** के जवाब में **‘खरतरगच्छ’** यह जवाब दिया है। इन दोनों उल्लेखों से इस बात की पुष्टि भी होती है।

---

*1. विशेषार्थी देखें 1) निबन्ध निचय पृ. 27, पं. कल्याणविजयजी म.सा.
2) डॉ बुलर की रिपोर्ट पृ. 149
3) तथा **जैनधर्मनो प्राचीन इतिहास** भाग–2 पृ.19 –पं.हीरालाल

उपाध्याय सुखसागरजी का उल्लेख

उपाध्याय मुनि सुखसागरजी महाराजजी ने ता. 20 मई, 1956 को अजमेर में श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज अष्टम शताब्दी निर्वाण महोत्सव में **अभिभाषण** दिया था, जो पुस्तिका के रूप में छपा हुआ मिलता है। उसमें उन्होंने पृ. 18-19 पर इस प्रकार कहा है कि-

''इस तरह पीछे बहुत प्रसिद्धि प्राप्त उक्त **खरतरगच्छ के अतिरिक्त, जिनेश्वरसूरि की शिष्य परंपरा में से अन्य कई एक छोटे बड़े गण-गच्छ प्रचलित हुए** और उनमें भी कई बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वान, ग्रंथकार, व्याख्यानिक, वादी, तपस्वी, चमत्कारी साधु यति हुए जिन्होंने अपने व्यक्तित्व से जैन समाज को समुन्नत करने में उत्तम योग दिया।''

इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकारा है कि जिनेश्वरसूरिजी की शिष्य परंपरा में से अन्य कई एक छोटे-बड़े गण-गच्छ प्रचलित हुए।

इससे भी स्पष्ट होता है कि खरतरगच्छ जिनेश्वरसूरिजी से शुरु नहीं हुआ था।

इतना ही नहीं पृ. 16 पर 'खरतरगच्छ' की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार का वक्तव्य दिया हैः-

विधिपक्ष अथवा खरतर गच्छ का प्रादुर्भाव और गौरव

इन्हीं जिनेश्वरसूरि के एक प्रशिष्य आचार्य श्री जिनवल्लभसूरि और उनके पट्टधर श्री जिनदत्तसूरि (वि.सं. 1169-1211) हुए जिन्होंने अपने प्रखर पाण्डित्य, प्रकृष्ट चारित्र और प्रचण्ड व्यक्तित्व के प्रभाव से मारवाड़, मेवाड़, वागड़, सिंध, दिल्ली मण्डल और गुजरात के प्रदेश में हजारों अपने नये-नये भक्त श्रावक बनाये, हजारों ही अजैनों को उपदेश दे-दे कर नूतन जैन बनाये, स्थान-स्थान पर अपने पक्ष के अनेकों नये जिनमन्दिर और जैन उपाश्रय तैयार करवाये। अपने पक्ष का नाम इन्होंने विधिपक्ष ऐसा उद्घोषित किया और जितने भी नये जिनमंदिर इनके उपदेश से, इनके भक्त श्रावकों ने बनवाये, उनका नाम विधिचैत्य ऐसा रखा गया। **परंतु पीछे से चाहे जिस कारण से हो इनके अनुगामी समुदाय को खरतर पक्ष या खरतरगच्छ ऐसा नूतन नाम प्राप्त हुआ** और तदनन्तर यह समुदाय इसी नाम से अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ, जो नाम आज तक अविच्छिन्न रूप से विद्यमान है।''

इसमें तो उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकारा है कि **''जिनदत्तसूरिजी के पश्चात् ही उनके समुदाय को किसी कारण से खरतरगच्छ ऐसा नूतन नाम प्राप्त हुआ।''**

''जैनम् टुडे'' के लेख की समीक्षा

एक बार पुनः स्पष्टीकरण करना उचित प्रतीत होता है कि जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद प्राप्ति की बात एवं खरतरगच्छ की उत्पत्ति के विषय में इतना ऐतिहासिक अन्वेषण एवं स्पष्टीकरण इसलिए किया गया है क्योंकि **'अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के ही थे' एवं 'महोपाध्याय धर्मसागरजी गलत थे' वगैरह आक्षेप दिये जा रहे हैं एवं खरतरगच्छ सर्वप्राचीन गच्छ है, इस प्रकार का प्रचार वर्तमान में किया जा रहा है।**[*1]

इतिहास का गलत प्रचार, इतिहास की गलत परंपरा को जन्म न दे देवें, इसलिए ऐतिहासिक स्पष्टीकरण करना जरुरी बन जाता है।

जैनम् टुडे का लेख

इतना ही नहीं 'जैनम् टुडे' के लेख में तो ऐसा तर्क भी दिया गया है कि-

''प्राचीन समय में शीलांकाचार्यजी, श्रीमलयगिरिजी, 1444 ग्रन्थकर्ता श्री हरिभद्रसूरिजी, 500 ग्रंथकर्ता श्री उमास्वाति वाचकजी, श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी, श्रीदेवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी, श्री श्यामाचार्यजी, पूर्वधर चूर्णिकार श्री जिनदासगणि, महतराचार्यजी श्री शांतिसूरिजी, श्री यशोदेवसूरि आदि अनेक महापुरुषों ने किसी ने तो अपने बताए ग्रन्थ में अपने गच्छ का नाम नहीं लिखा। किसी ने अपने गुरु तक का नाम नहीं लिखा फिर अन्य ग्रंथों के आधार से उन पुरुषों को उनके गच्छ के जानने में आते हैं।

'श्राद्धदिनकृत्य टीका', 'धर्मरत्न प्रकरण टीका', 'सुदंसणा चरिय' इन तीन ग्रंथों के प्रमाण से आ. जगच्चंद्रसूरिजी का तपागच्छ एवं मणिरत्न सूरिजी का शिष्य होना प्रमाणित नहीं होता। क्या आचार्य जगच्चन्द्रसूरिजी को तपागच्छ के एवं मणिरत्नसूरिजी के शिष्य मानना या नहीं ?

इसी प्रकार श्री अभयदेवसूरिजी ने भी अपने बनाये अनेकों ग्रंथों में खरतर नाम नहीं लिखा.....। (जैनम् टुडे, अगस्त 2016, पृ. 24)

*1. देखें 'खरतरगच्छ का उद्भव' और 'जैनम् टुडे' अंक-अगस्त, 2016 के पृ. 13 पर जिनपीयूषसागरसूरिजी का लेख एवं खरतरगच्छ सम्मेलन संबंधित **'श्वेतांबर जैन'** का जून 2016 के विशेषांक में दिया हुआ **मुनिश्री मनितसागरजी का 'खरतरगच्छ का गौरवशाली इतिहास'** लेख।

समीक्षा

I. इस प्रकार जिनपीयूषसागरसूरिजी ने अपनी बात की सिद्धि के लिए तपागच्छ के आचार्य के विषय में प्रश्न उठाया है।अतः सर्वप्रथम इस विषय में ही स्पष्टीकरण जरूरी लगता है कि –' देवेन्द्रसूरिजी ने तो कर्मग्रंथ की प्रशस्ति में *[1] अपने गुरु को चान्द्रकुल का बताया है एवं 'तपा' बिरुद मिलने की ऐतिहासिक बात लिखी है। इसलिए आ. श्री जगच्चंद्रसूरिजी को 'तपा' बिरुद मिला, यह सत्य हकीकत है। गुणरत्नसूरिकृत 'क्रियारत्न समुच्चय' की प्रशस्ति आदि में *[2] मणिरत्नसूरिजी को जगच्चंद्रसूरिजी के गुरु के रूप में स्पष्ट रूप से बताया है तथा मणिरत्नसूरिजी क्रियोद्धार के कुछ समय बाद स्वर्गस्थ हो चुके थे। दूसरी बात यह है कि, उपाध्याय देवभद्रगणिजी, जगच्चंद्रसूरिजी के तत्कालीन उपसंपदादाता थे। अतः जगच्चंद्रसूरिजी उनके ही निश्रावर्ती के रूप में पहचाने जाते थे।अतः देवेन्द्रसूरिजी आदि के तत्कालीन ग्रंथों में उपाध्याय देवभद्रगणिजी का ही गुरु के रूप में उल्लेख मिलता है। इस प्रकार जगच्चंद्रसूरिजी को 'तपा' बिरुद मिलना एवं उनका मणिरत्नसूरिजी का शिष्य होना सिद्ध होता है।

II. ''शीलांकाचार्य आदि पूर्वाचार्यों ने भी अपने बनाये ग्रंथों में अपने गच्छ का नाम नहीं लिखा है, परंतु अन्य ग्रंथों के आधार से उन पुरुषों को उनके गच्छ के मानने में आते हैं।'' ऐसा जो लिखा है वह उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि–

1. **निर्वृत्तिकुलीन श्रीशीलाचार्येण** तत्त्वादित्यापरनाम्ना वाहरिसाधुसहायेन कृता टीका परिसमाप्तेति। – आचारांग – टीका, प्रथम श्रुतस्कन्ध का अन्त

इसमें **शीलांकाचार्यजी ने स्वयं को निर्वृत्तिकुल का बताया है।**

2. आवश्यक–निर्युक्ति–टीका के अन्त में देखिएः–

'समाप्ता चेयं शिष्यहिता नाम आवश्यक टीका। कृतिः सिताम्बराचार्च

---

*1. क्रमात् प्राप्ततपाचार्येत्याख्या भिक्षुनायकाः।
समभूवन् कुले चान्द्रे श्री जगच्चंद्रसूरयः।।
–आ.देवेन्द्रसूरिकृत स्वोपज्ञ कर्मग्रंथ टीका–प्रशस्ति

*2 मणिरत्नगुरोः शिष्याः श्री जगच्चंद्रसूरयः।
सिद्धान्तवाचनोद्भूतवैराग्यरसवार्द्धयः।।
चारित्रमुपसंपद्य यावज्जीवमभिग्रहात्।
आचामाम्लतपस्तेनुस्तपागच्छस्ततोऽभवत्।।
– आ. गुणरत्नसूरिजी कृत क्रियारत्न समुच्चय–प्रशस्ति

जिनभटनिगदानुसारिणो विद्याधरकुलतिलकाचार्यजिनदत्तशिष्यस्य धर्मतो याकिनीमहत्तरासूनोः अल्पमतेः **आचार्यहरिभद्रस्य।**'

इसमें **हरिभद्रसूरिजी म. ने स्वयं को विद्याधर कुल का बताया है एवं अपने गुरु का नाम भी बताया है।**

3. **वाणिजकुल संभूओ कोडियगणिओ उ वयरसाहीतो।**
गोवालियमहत्तरओ, विक्खाओ आसि लोगंमि।।1।।

ससमयपरसमयविऊ, ओयस्सी दित्तिमं सुगंभीरो।
सीसगणसंपरिवुडो, वक्खाणरतिप्पिओ आसी।।2।।

तेसिं सीसेण इमं, उत्तरज्झयणाण चुण्णिखंडं तु।
रइयं अणुग्गहत्थं, सीसाणं मंदबुद्धीणं।।3।।

जं एत्थं उस्सुत्तं, अयाणमाणेण विरतितं होज्जा।
तं अणुओगधरा मे, अणुचिंतेउं समारेंतु।।4।।

– पृ. 283 उत्तराध्ययन चूर्णि, जिणदासगणि महत्तर

इसमें भी **जिनदासगणि महत्तर ने अपने कुल का नाम वाणिज्य कुल बताया ही है।**

4. **अस्ति विस्तारवानुर्व्यां, गुरुशाखासमन्वितः।**
आसेव्यो भव्यसार्थानां, श्रीकोटिकगणद्रुमः।।1।।

तदुत्थवैरशाखायामभूदायतिशालिनी।
विशाला प्रतिशाखेव, श्रीचंद्रकुलसन्ततिः।।2।।

तस्याश्चोत्पद्यमानच्छदनिचयसदृक्काचकर्णान्वयोत्थः,
श्रीथारापद्रगच्छप्रसवभरलसद्धर्मकिञ्जल्कपानात।
श्रीशान्त्याचार्यभृङ्गो यदिदमुदगिरद्वाङ्मधु श्रोत्रपेयं,
तद् भो भव्याः! त्रिदोषप्रशमकरमतो गृह्यतां लिह्यतां च।।3।।

– उत्तराध्ययन टीका, शांतिसूरिजी

इसमें वादिवेताल **शान्त्याचार्यजी ने भी अपने के थारापद्रगच्छ का बताया है। इस प्रकार पूर्वाचार्यों द्वारा अपने ग्रंथों में अपने कुल एवं गच्छ का निर्देश किया गया होने पर भी उसका निषेध करके भोली प्रजा के आगे अपनी बात की गलत रीति से सिद्धि करना उचित नहीं है।**

दूसरी बात 'अभयदेवसूरिजी ने अपने ग्रंथों में 'खरतर' नाम नहीं लिखा है, परंतु उन्हें अन्य ग्रंथों के आधार से खरतरगच्छीय मान लेना चाहिये'। यह बात तब स्वीकार्य होती, जब उन्होंने अपने ग्रंथों में अपने कुल का बिलकुल निर्देश नहीं किया होता। परंतु उन्होंने स्पष्ट रूप से खुद को अनेक ग्रंथों में चान्द्रकुल का बताया है। **उनके चान्द्रकुलीन होने के निर्देश से ही उनके खरतरगच्छीय नहीं होने की सिद्धि होती है।**

सं. 1617 के मतपत्र का निराकरण

III. 'जैनम् टुडे' के अगस्त 2016 के अंक में **'सत्य नहीं अटल सत्य! नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि खरतरगच्छ के।'** इस लेख में जो-जो तर्क दिये हैं, उन सबका जवाब इस पुस्तक में आ गया है। इस लेख में-

'विक्रम सं. 1617 में अकबर प्रतिबोधक* युगप्रधानाचार्य चतुर्थ दादागुरुदेव श्री जिनचंद्रसूरिजी ने जब पाटण में चातुर्मास किया तब उपाध्याय धर्मसागरजी म. के उक्त आक्षेपों का निराकरण करने के लिए एक विशाल संगीति का आयोजन किया। उसमें तत्कालीन मूर्धन्य आचार्यों, मुनियों और विद्वानों को बुलाया। उनके समक्ष खरतरगच्छ की उत्पत्ति एवं आचार्य नवांगी टीकाकार श्री स्थंभण पार्श्वनाथप्रगटकर्त्ता श्री अभयदेवसूरि खरतरगच्छ में हुए हैं, उनके संदर्भ में अनेकों ग्रंथों के प्रमाण प्रस्तुत कर सभी गच्छ के उपस्थित आचार्य, उपा. मुनि ने निष्पक्षता से मान्य किया कि आचार्य अभयदेवसूरि खरतरगच्छ की परम्परा में हुए हैं।'

ऐसा उल्लेख दिया है तथा उसकी पुष्टि हेतु निर्णयकारों के हस्ताक्षर वाले मत-पत्र की प्रतिलिपी भी दी है, उसका समाधान इस प्रकार है कि-

1. आ. जंबूसूरिजी 'तपा-खरतर भेद' पुस्तक के पृ. 118 पर बोल 139 की टिप्पणी 17 में बताते हैं कि यह मतपत्र नकली है।

'श्री जिनचंद्रसूरिजीना जीवनचरित्रनी चोपडीमां सं. 1617मां पाटण मुकामे सर्वगच्छीओनी सभामां अभयदेवसूरि खरतरगच्छना होवानो निर्णय थयानुं तथा ते पट्टक उपर बधानी सहीओ थयानुं तेओ जणावे छे, परंतु विचारपूर्वक तपासी जोता ए आखुं य खतपत्र बनावटी होवानुं मालूम पड्युं छे, अने एवा कोई बनावटी

* अकबर प्रतिबोधक कौन? इसके विषय में स्पष्टीकरण के लिए देखें हमारी पुस्तिका **''अकबर प्रतिबोधक कौन ?'' -संपादक**

उल्लेखों पोताना गच्छना ममत्वथी खरतरोए करेला छे, माटे ते मानवा लायक नथी.'

जंबूसूरिजी का यह अनुमान अगर सही है, तो फिर कोई समाधान देने की जरुरत नहीं होती है। कुछ अंश तक उनका कथन सही भी लगता है क्योंकि धर्मसागरजी अत्यंत निडर वक्ता थे। वे वाद-विवाद के लिए हमेशा तत्पर रहते थे इतना ही नहीं, वे तो सामने से ही वाद के लिए पहुंच जाते थे। **अतः तीन बार बुलाने पर भी वे नहीं आए, यह बात स्वीकार नहीं सकते हैं।**

2. **अगर ऐसा मतपत्र हो तो भी इतना तो निश्चित है कि 'अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय थे' इस बात का दानसूरिजी, हीरविजयसूरिजी एवं विजयसेनसूरिजी ने समर्थन नहीं किया था।** उन्होंने तो महो. धर्मसागरजी का ''अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे,'' इसकी सिद्धि करनेवाले पत्र को पढ़ने के बाद यहाँ तक कह दिया था कि ''**अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय थे ऐसे स्पष्ट अक्षर बताओ, तो हम लिखकर देने को तैयार हैं।**'' उनकी यह बात सुनकर खरतरगच्छ के प्रमुख श्रावक पुनः लौट गये थे। इस बात से यह सिद्ध होता है कि **इस मतपत्र में सभी गच्छों की सम्मति नहीं थी। क्योंकि सबसे बड़ा तपागच्छ का वर्ग उसमें सहमत नहीं था।**

अन्य मतवालों के धर्मसागरजी के विरुद्ध, अभयदेवसूरिजी के खरतरगच्छीय होने के समर्थन में हस्ताक्षर करने के पीछे ये कारण प्रतीत होते हैं....

1. महो. धर्मसागरजी म.सा. निडर एवं स्पष्ट वक्ता थे। उन्हें जिस गच्छ में जो-जो दोष दिखता था, उसकी वे कड़क समालोचना करते थे। इसलिए सभी गच्छवाले उनके प्रति विरोध की भावना रखते थे।
2. अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय थे ऐसा प्रचार 15-16वीं शताब्दी से विशेष रूप से शुरु हो गया था। तथा **17वीं शताब्दी तक तो यह प्रघोष सर्वत्र प्रचलित हो चुका था कि अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय थे।** अतः सभी गच्छवाले आमतौर से इसी के साथ मानते थे। इतना ही नहीं देखा-देखी में अनाभोग से तपागच्छ के साधुओं ने भी लिख दिया था कि अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय है।
3. 14-15वीं शताब्दी के अंत तक तो अभयदेवसूरिजी की मूल शिष्य परंपरा जो **अभयदेवसूरि संतानीय** के नाम से खुद को संबोधित करती

थी, वह विलुप्त हो चुकी थी। रुद्रपल्लीय गच्छ भी नाम शेष हो चुका था। क्योंकि सं. 1605 के बाद का कोई भी उल्लेख उस गच्छ संबंधी नहीं मिलता है। (खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह–लेख नं. 1148)

अतः 'अभयदेवसूरि खरतर गच्छ के थे', इस बात का स्पष्ट रूप से विरोध कर सके ऐसा कोई मौजुद नहीं था।

एसी परिस्थितिओं में जब धर्मसागरजी के विरुद्ध सम्मेलन किया गया, तब सभी ने एकमत होकर खरतरगच्छ के पक्ष का समर्थन किया होगा, तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

मत–पत्र की कसौटी

मान लिया कि कई गच्छ वालों ने मिलकर इस मतपत्र को प्रमाणित किया था परंतु ऐतिहासिक प्रमाणों की दृष्टि से मतपत्र की यह बात प्रामाणिक नहीं बनती है, क्योंकि जिन प्रमाणों को आगे करके अभयदेवसूरिजी के खरतरगच्छीय होने की बात लिखी है, वे प्रमाण या तो गलत ढंग से पेश किये गये हैं अथवा अर्वाचीन है, अर्थात् मौलिक नहीं है। जैसे कि –

अ) **प्रभावक चरित्र** के अभयदेवसूरि–चरित्र को प्रमाण के रूप में बताया है, **उससे तो प्रत्युत यह सिद्ध होता है कि जिनेश्वरसूरिजी का न तो राजसभा में किसी से वाद हुआ था और न ही उन्हें खरतर बिरुद की प्राप्ति हुई थी।**[*1] अर्थात् जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद ही नहीं मिला होने से "**अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे**" ऐसा मत–पत्र में दिये गये प्रभावक चरित के प्रमाण से ही सिद्ध होता है। **तथा अपने से विरुद बात की सिद्धि हो ऐसे प्रमाणों को आगे करके लिखा गया मत–पत्र भी कितना प्रामाणिक है एवं कितना महत्त्व रखता है, यह समझ सकते हैं।**

ब) जिनवल्लभगणिकृत सार्द्धशतक –कर्मग्रन्थ की धनेश्वरसूरिजी की टीका में तो, जिनवल्लभगणिजी अभयदेवसूरिजी के शिष्य थे, **इतना ही लिखा है,**[*2] और उसे

*1 देखें परिशिष्ट–2, पृ. 83।

*2 जिणवल्लहगणि "त्ति जिनवल्लभगणिनामकेन मतिमता सकलार्थसङ्ग्राहिस्थानाङ्गाद्य–ङ्गोपाङ्गपञ्चाशकादिशास्त्रवृत्तिविधानावाप्तावदातकीर्तिसुधाधवलितधरामण्डलानां श्रीमद भयदेवसूरीणां शिष्येण 'लिखितं' कर्मप्रकृत्यादिगम्भीरशास्त्रेभ्यः समुद्धृत्य दृब्धं जिनवल्लभ–गणिलिखितम्।" **– सार्द्ध शतक कर्मग्रंथ–टीका**

भी विद्या-शिष्यत्व की अपेक्षा से स्वीकारना चाहिए (विशेष के लिये देखें - पृ. 53) **उसमें अभयेदवसूरिजी के खरतरगच्छीय होने की बात कहाँ है?**

स) तथा 'उपदेशसप्ततिका' आदि के उल्लेख तो पृ. 20 पर बताये अनुसार अर्वाचीन हैं। तत्कालीन प्रघोष के प्रभाव के वश होकर अनाभोग से लिखे हुए होने से वे महत्त्व के नहीं है, क्योंकि उपदेश सप्ततिका के कर्त्ता के पूर्वाचार्यों ने सं. 1204 में खरतरगच्छ से उत्पत्ति बतायी है।[*1] **इतना ही नहीं दिये गये प्रमाणों से भी प्राचीन प्रमाणों से अभयदेवसूरिजी के खरतरगच्छीय नहीं होने की सिद्धि हम पृ. 14 से 30 पर कर चुके हैं।**

IV 'जैनम् टुडे' के इस लेख के अंत में ऐसा तर्क दिया है कि अन्य गच्छों की पट्टावलियों में नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरिजी का नाम नहीं लिखा है, केवल खरतरगच्छ की पट्टावलियों में ही लिखा है, अतः वे खरतरगच्छीय थे।

उनकी यह बात भी उचित नहीं है। क्योंकि रूद्रपल्लीय गच्छ एवं अभयदेव-सूरि-संतानीय की पट्टावलियों में भी अभयदेवसूरिजी का नाम मिलता है और ये दोनों गच्छ खरतरगच्छ से भिन्न थे अर्थात् उसकी शाखा रूप भी नहीं थे, क्योंकि उनके साहित्य एवं लेखों में कहीं पर भी 'खरतर' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। (विशेष के लिए देखें - पृ. 19, 119 और 140)

खरतरगच्छीय पट्टवालियों में अभयदेवसूरिजी का नाम किस तरह जुड़ा, उसकी विस्तृत जानकारी के लिये देखिये -पृ. 53 से 55

इस प्रकार जैनम् टुडे में दिये गये जिनपीयूषसागरसूरिजी के लेख एवं मत-पत्र के बारे में प्रासंगिक स्पष्टीकरण करने के बाद हम मूल विषय पर आते हैं।

1617 का मत-पत्र अप्रमाण !!!

क्योंकि

1. जैन संघ का सबसे बड़ा वर्ग-तपागच्छ उसमें सहमत नहीं था। (देखें पृ. 49)
2. उसमें दिये गये 'प्रभावक चरित्र' आदि प्रमाणों से 'अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे' ऐसा ही सिद्ध होता है। (देखें पृ. 83)

---

*1. देखें पृ. 19

आ. जिनचंद्रसूरिजी एवं अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे!!

1. जैसे आ. जगच्चंद्रसूरिजी को 'तपा' बिरुद मिलने का उल्लेख उनके शिष्य आ. देवेन्द्रसूरिजी ने स्वोपज्ञ कर्मग्रंथ टीका-प्रशस्ति में किया है तथा इस घटना के लिए सभी एक मत हैं।*1 वैसे जिनेश्वरसूरिजी को बिरुद मिलने की बात का उल्लेख उनके बाद लगभग 200 साल तक (सं. 1305 तक) आ. जिनचंद्रसूरिजी, आ. अभयदेवसूरिजी तथा जिनवल्लभगणिजी, आ. जिनदत्तसूरिजी आदि ने कहीं पर नहीं किया है*2 तथा खरतरगच्छ की उत्पत्ति 1204 में हुई ऐसा अंचलगच्छ के सं. 1294 में बने शतपदी ग्रंथ में उल्लेख मिलता है।

अतः जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद नहीं मिला, ऐसा सिद्ध होने से उनकी परंपरा में हुए ''अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे'' ऐसा प्राचीन प्रमाणों से सिद्ध होता है।

2. 'खरतर बिरुद प्राप्ति' की सिद्धि के लिए दिये जाने वो 'वृद्धाचार्य प्रबन्धावली' आदि अर्वाचीन प्रमाणों की बात का निराकरण पृ. 31 से 35 में किया जा चुका है।

3. इतना ही नहीं, 'अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय थे' इसकी सिद्धि हेतु 'जैनम् टुडे' में दिये गये तर्क एवं मत-पत्र आदि का निराकरण भी पृ. 45 से 51 में किया जा चुका है।

अतः **''अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे'' यह बात तर्क एवं प्रमाण से अटल सत्य के रूप में सिद्ध हो जाती है।** यहाँ पर ऐसी जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि 'अगर अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे, तो किस गच्छ के थे?' उसका जवाब उनके ग्रंथों की प्रशस्ति से मिल जाता है, उन्होंने स्पष्ट रूप से खुद को 'चान्द्रकुल' का बताया है।*3

इस प्रकार **'इतिहास के आइने'** में यह **अटल सत्य** स्पष्ट रूप से दिखायी देता है **कि नवाङ्गी टीकाकार आ. अभयदेवसूरिजी म.सा. एवं उनके वडील गुरुभ्राता संवेगरंगशाला के कर्ता आ. जिनचंद्रसूरिजी म.सा. खरतरगच्छ के नहीं परंतु चान्द्रकुल के ही थे।**

---

*1. देखें पृ. 14 एवं 46 की टिप्पणी

*2. देखें पृ. 14 एवं विशेष के लिए परिशिष्ट - 3, पृ-92

*3 देखें परिशिष्ट -3, पृ. 95 से 97

क्या खरतरगच्छ अभयदेवसूरिजी संतानीय हैं?

यहाँ पर ऐसी जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है, कि 'यद्यपि अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के नहीं थे, परंतु वर्तमान खरतरगच्छ अभयदेवसूरिजी की परंपरा में है ऐसा कहने में तो क्या कोई हर्ज है ?'

इस प्रश्न के उत्तर को पाने के लिए जिनवल्लभगणिजी का अभयदेवसूरिजी से क्या संबंध था ? वह देखना जरुरी होता है।

अभयदेवसूरिजी और जिनवल्लभगणिजी

जिनवल्लभगणिजी अभयदेवसूरिजी के नहीं, परंतु कूर्चपुरीय जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य थे। उसके निम्न लिखित प्रमाण मिलते हैंः-

1. पं. नेमिकुमार पोरवाल-'आवस्सय विसेसभास' की पुष्पिका में लिखते हैं कि-

लिखितं पुस्तकं चेदं नेमिकुमारसंज्ञिना।
प्राग्वटकुलजातेन शुद्धाक्षरविलेखिना।।

सं. 1138 पोष वदि 7।। कोट्याचार्यकृता टीका समाप्तेति। ग्रन्थाग्रमस्यां त्रयोदशसहस्राणि सप्तशताधिकानि।।13700।। पुस्तकं **चेदं विश्रुतश्रीजिनेश्वर-सूरिशिष्य जिनवल्लभगणेरिति।।**

पुष्पिका-

विस्फूर्जितं यस्य गुणैरुपात्तैः शाखायितं शिष्यपरम्पराभिः।
पुष्पायितं यद्यशसा स **सूरिर्जिनेश्वरोऽभूद् भुवि कल्पवृक्षः।।4।।**

शाखाप्ररोह इव **तस्य** विवृद्धशुद्ध-बुद्धिच्छदप्रचयवञ्चितजात्यतापः।
शिष्योऽस्ति शास्त्रकृतधी**र्जिनवल्लभाख्यः**
सख्येन यस्य विगुणोऽपि जनो गुणी स्यात्।।5।।

(जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह, पृ. 1; जैन लिटरेचर एण्ड फिलोसोफी, पृ. नं. 1106 की पुष्पिकाः भांडारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना-प्रकाशित प्रशस्तिसंग्रह, भाग-3; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पाराः 219)

इस प्राचीन उल्लेख से स्पष्ट होता है कि अभयदेवसूरिजी के देवलोक होने के समय तक तो जिनवल्लभगणिजी जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य के रूप में ही थे। क्योंकि यह सं. 1138 का उल्लेख है और अभयदेवसूरिजी का देवलोक सं. 1135/1138 में माना जाता है।

2. ''प्रश्नोत्तरैकषष्ठिशतक'' में जिनवल्लभगणिजी स्वयं लिखते हैं कि-

ब्रूहि श्रीजिनवल्लभस्तुतिपदं कीदृग्विद्याः के सताम्।।159।।

अवचूरिः - मद्गुरवो-ऽजिने-ऽश्व-रस-ऊ-रयः।

मद्गुरवो जिनेश्वरसूरयः।

(जिनवल्लभगणिजी कृत- प्रश्नोत्तरैकषष्ठिशतक)

इसमें जिनवल्लभगणिजी ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि मेरे गुरु जिनेश्वरसूरिजी हैं।

और आगे ''**के वा सद्गुरवो**'' के जवाब में अभयदेवसूरिजी को सद्गुरु के रूप में बताया है। अर्थात् मेरे गुरु तो चैत्यवासी ऐसे जिनेश्वरसूरिजी हैं जबकि सद्गुरु तो सुविहित ऐसे अभयदेवसूरिजी हैं, यानि के वे मेरे गुरु नहीं हैं, परंतु विद्या दाता एवं सुविहित होने से सद्गुरु हैं।

बृहद्गच्छीय धनेश्वरसूरिजी ने सूक्ष्मार्थ-विचार-सारोद्धार (सार्द्धशतक) प्रकरण की टीका में जिनवल्लभगणिजी को अभयदेवसूरिजी के शिष्य के रूप में बताया है, वह विद्या-शिष्यत्व की अपेक्षा से समझना चाहिये। यानि, जिनवल्लभ-गणिजी ने अभयदेवसूरिजी के पास से श्रुत प्राप्त किया था, उतना ही उसका अर्थ समझना चाहिये। एवं अन्य परवर्ती आचार्यों के विविध ग्रंथों में जिनवल्लभगणिजी के अभयदेवसूरिजी के शिष्य होने के जो उल्लेख मिलते हैं, वे कर्ण-परंपरा एवं तत्काल प्रचलित लोकरूढ़ि के आधार से किये गये थे। अतः विशेष प्रमाणरूप नहीं बनते हैं। क्योंकि **स्वयं जिनवल्लभगणिजी ने ''मद्गुरवो जिनेश्वरसूरयः' के द्वारा जिनेश्वरसूरिजी को अपने गुरु के रूप में बताया है।**

3. तथा सबसे प्रबल प्रमाण तो **जिनवल्लभगणिजीकृत अष्टसप्ततिका** जो अभयदेवसूरिजी के देवलोक होने के 25-30 साल बाद वि. सं. 1164 में लिखी गयी थी। उसमें-

लोकार्च्यकूर्चपुरगच्छ महाघनोत्थ-मुक्ताफलोज्ज्वलजिनेश्वरसूरिशिष्यः।

प्राप्तः प्रथां भुवि गणिर्जिनवल्लभोऽत्र, तस्योपसम्पदमवाप्य ततःश्रुतश्च।।52।।

इस श्लोक से जिनवल्लभगणिजी ने स्वयं को कूर्चपुरीय जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य के रूप में ही बताया है एवं कहा है कि उन्होंने अभयदेवसूरिजी की उपसम्पदा लेकर श्रुत प्राप्त किया था। जिनवल्लभगणिजी ने अभयदेवसूरिजी की ज्ञानोपसम्पदा ही ली थी। **अर्थात् केवल अध्ययन हेतु उनके पास रहे थे, उनके**

शिष्य नहीं बने थे।

इतना ही नहीं उन्होंने प्रसन्नचंद्रसूरिजी, वर्धमानसूरिजी आदि चार आचार्यों को अभयदेवसूरिजी के प्रभावक शिष्यों के रूप में बताया भी है। **परंतु स्वयं को अभयदेवसूरिजी का शिष्य नहीं बताया है।** वह इस तरह से हैं-

सत्तर्कन्यायचर्चार्चितचतुरगिरः श्री प्रसन्नेन्दुसूरिः
सूरिश्रीवर्धमानो यतिपतिहरिभद्रो मुनीड् देवभद्रः
इत्याद्याः सर्वविद्यार्णवकलशभुवः सञ्चरिष्णूरूकीर्तिः
स्तम्भायन्तेऽधुनाऽपि श्रुतचरणरमाराजिनो यस्य शिष्याः।।49।।

दुसरी बात **गणधर सार्धशतक बृहद्वृत्ति** में भी लिखा है कि- '**जिनवल्लभगणिजी चैत्यवासी के शिष्य थे** इसलिए अभयदेवसूरिजी ने स्वयं उन्हें आचार्य पद देकर पट्टधर नहीं बनाया था।'

अतः स्पष्ट होता है कि जिनवल्लभगणिजी ने अभयदेवसूरिजी के पास ज्ञान-उपसंपदा ली थी शिष्यत्व नहीं स्वीकारा था।

इस प्रकार जब सिद्ध होता है कि जिनवल्लभगणिजी अभयदेवसूरिजी के शिष्य नहीं थे, अतः स्पष्ट हो जाता है कि उनकी शिष्य परंपरा कहलानेवाली वर्तमान खरतरगच्छ की परंपरा भी अभयेदवसूरिजी संतानीय नहीं हो सकती है।

* यहाँ प्रश्न यह हो सकता है कि, अगर जिनवल्लभगणिजी की परम्परा अभयेदवसूरिजी शिष्य परंपरा नहीं कहलाती है, तो उनकी पट्टावलियों में अभयदेवसूरिजी आदि के नाम क्यों मिलते हैं?

उसका समाधान इस प्रकार हो सकता है कि - जिनवल्लभगणिजी अभयेदवसूरिजी के गुणानुरागी एवं ज्ञान-उपसंपदा की दृष्टि से विद्या शिष्य के रूप में रहे थे, अतः जिनवल्लभगणि की परम्परा में हुए साधु ''जिनवल्लभ-गणिजी एवं अभयदेवसूरिजी के बीच गुरु-शिष्य का सम्बन्ध था'', ऐसा मान कर स्वयं को अभयदेवसूरिजी से जोड़ने लग गये।

कुछ भी हो, खरतरगच्छ की पट्टावलिओं में अभयदेवसूरिजी के उल्लेख होने मात्र से इस ऐतिहासिक सत्य को नहीं नकारा जा सकता है कि **जिनवल्लभगणिजी चैत्यवासी ऐसे कूर्चपुरीय जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य थे** अभयदेवसूरिजी के नहीं और इसलिए जिनवल्लभगणिजी की परंपरा में हुआ **खरतरगच्छ भी अभयदेवसूरि संतानीय नहीं कहलाता है।**

पं. कल्याणविजयजी का महत्त्वपूर्ण लेख!!!

खरतरगच्छ की अनेक पट्टावलियों एवं ऐतिहासिक ग्रंथों के गहन अभ्यास के आधार से **प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता पं. कल्याणविजयजी म.सा.** ने **'निबंध-निचय'** तटस्थतापूर्वक जिनवल्लभगणिजी के वृत्तान्त पर विशद प्रकाश में डाला है।

अभयदेवसूरिजी और जिनवल्लभगणिजी के बीच क्या संबंध था? इत्यादि बातों के स्पष्टीकरण हेतु उनके लेख के कुछ अंश यहाँ पर दिये जाते हैं। देखियेः-

''खरतरगच्छ के पट्टावलीलेखक जिनवल्लभगणि के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की एक दूसरी से विरुद्ध बातें लिखते हैं। कोई कहते हैं-वे अपने मूल गुरु को मिलकर वापस पाटन आए, और श्री अभयदेव सूरिजी से उपसम्पदा लेकर उनके शिष्य बने। तब कोई लिखते हैं कि वे प्रथम से ही चैत्यवास से निर्विण्ण थे और अभयदेवसूरिजी के पास आकर उनके शिष्य बने और आगम सिद्धान्त का अध्ययन किया। खरतरगच्छीय लेखकों का एक ही लक्ष्य है कि जिनवल्लभ को श्री अभयदेवसूरि का पट्टधर बनाकर अपने सम्प्रदाय का सम्बन्ध श्री अभयदेवसूरि से जोड़ देना। कुछ भी हो, परन्तु श्री जिनवल्लभगणि के कथनानुसार वे अन्त तक कूर्चपुरीय आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि के ही शिष्य बने रहे हैं, ऐसा इनके खुद के उल्लेखों से प्रमाणित होता है। विक्रम सं. 1138 में लिखे हुए कोट्याचार्य की टीका वाले विशेषावश्यक भाष्य की पोथी के अन्त में जिनवल्लभगणि स्वयं लिखते हैं-

यह (1) पुस्तक प्रसिद्ध श्री जिनेश्वरसूरि के शिष्य जिनवल्लभ गणी की है।

इसी प्रकार जिनवल्लभ गणी प्रश्नोत्तरशतक नामक अपनी कृति में लिखते हैं कि 'जिनेश्वराचार्यजी मेरे गुरु हैं', यह प्रश्नोत्तरशतक काव्य जिनवल्लभ गणि ने श्री अभयदेवसूरिजी के पास से वापस जाने के बाद बनाया था, ऐसा उसी कृति से जाना जाता है, क्योंकि उसी काव्य में एक भिन्न पद्य में श्री अभयदेव सूरिजी की भी प्रशंसा की है।

जिनवल्लभगणि के 'रामदेव' नामक एक विद्वान् शिष्य थे, जिन्होंने वि.सं. 1173 में जिनवल्लभ सूरि कृत 'षडशीति-प्रकरण' की चूर्णि बनाई है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि जिनवल्लभ गणिजी ने अपने तमाम चित्र काव्य सं. 1169 में चित्रकूट के श्री महावीर मन्दिर में शिलाओं पर खुदवाए थे और मन्दिर के द्वार की दोनों तरफ उन्होंने धर्म-शिक्षा और संघपट्टक शिलाओं पर खुदवाए थे, ऐसा पं. हीरालाल हंसराज कृत 'जैन धर्मनो प्राचीन इतिहास' नामक पुस्तक के 38 वें तथा 39 वें पृ. में लिखा है।

उपाध्याय धर्मसागरजी ने जिनवल्लभ गणी कृत 'अष्टसप्तिका' नामक काव्य के कुछ पद्य 'प्रवचन परीक्षा' में उद्घृत किए हैं, उनमें से एक पद्य में श्री अभयदेव सूरिजी के चार प्रमुख शिष्यों की प्रशंसा की है और एक पद्य में उन्होंने श्री अभयदेवसूरिजी के पास श्रुत सम्पदा लेकर अपने शास्त्राध्ययन की सूचना की है। इत्यादि बातों से यही सिद्ध होता है कि जिनवल्लभगणि जो कूर्चपुरीय गच्छ के आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे, वे अपने गुरु की आज्ञा से अपने गुरु भाई जिनशेखर मुनि के साथ आगमों का अध्ययन करने के लिए, पाटन श्री अभयदेवसूरिजी के पास गए थे और उनके पास ज्ञानोपसंपदा ग्रहण करके सूत्रों का अध्ययन किया था।

खरतर गच्छ के पट्टावलीलेखक शायद उपसम्पदा का अर्थ ही नहीं समझे, इसलिए कोई उनके पास दीक्षा लेने का लिखते हैं तो कोई 'आज से हमारी आज्ञा में रहना' ऐसा उपसम्पदा का अर्थ करते हैं, जो वास्तविक नहीं है। उपसम्पदा अनेक प्रकार की होती है - ज्ञानोपसम्पदा, दर्शनोपसम्पदा, चारित्रोप-सम्पदा, मार्गोपसम्पदा आदि। इनमें प्रत्येक उपसम्पदा जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट प्रकार से तीन तरह की होती है, ज्ञान तथा दर्शन प्रभावक शास्त्र पढ़ने के लिये ज्ञानोपसम्पदा तथा दर्शनोपसम्पदा दी-ली जाती है, चारित्रोपसम्पदा चारित्र को शुद्ध पालने के भाव से बहुधा ली जाती है और वह प्रायः यावज्जीव रहती है, ज्ञानोपसम्पदा तथा दर्शनोपसम्पदा कम से कम 6 मास की और अधिक-से-अधिक 12 बारह वर्ष की होती थी।

मार्गोपसम्पदा लम्बे विहार में मार्ग जानने वाले आचार्य से ली जाती थी और मार्ग का पार करने तक रहती थी। उपसम्पदा स्वीकार करने के बाद उपसम्पन्न साधु को अपने गच्छ के आचार्य तथा उपाध्याय का दिग्बन्ध छोड़कर उपसम्पदा देने वाले गच्छ के आचार्य तथा उपाध्याय का दिग्बन्धन करना होता था और उपसम्पदा के दर्म्यान उपसम्पन्न श्रमण अपने गच्छ तथा आचार्य उपाध्याय की आज्ञा न पालकर उपसम्पदा प्रदायक गच्छ के आचार्य उपाध्याय की आज्ञा में रहते थे और उन्हीं के गच्छ की सामाचारी का अनुसरण करते थे, इत्वर (सावधिक) उपसम्पदा की अवधि समाप्त होने के उपरान्त उपसम्पन्न व्यक्ति उपसम्पदा देने वाले आचार्य की आज्ञा लेकर अपने मूल गुरु के पास जाता था और उनके दिग्बन्धन में रहता था।

श्री जिनवल्लभ गणी ने इसी प्रकार ज्ञानोपसम्पदा लेकर अभयदेव सूरिजी से आगमों की वाचना ली थी और बाद में वे अपने मूल गुरु जिनेश्वरसूरिजी के पास

गए थे। जिनेश्वरसूरि चैत्यवासी होने से शिथिलाचारी थे, तब जिनवल्लभ वैहारिक श्रमण समुदाय के साथ रहने से स्वयं चैत्यवासी न बनकर वैहारिक रहना चाहते थे, इसीलिये अपने मूल गुरु से मिलकर वे वापस पाटण चले गए थे।

उनके दुबारा पाटण जाने तक श्री अभयदेवसूरिजी पाटण में थे या विहार करके चले गये थे, यह कहना कठिन है, फिर भी इतना कहा जा सकता है कि नवांगी वृत्तियों के समाप्त होने तक वे पाटण में अवश्य रहे होंगे, क्योंकि तत्कालीन पाटण के जैन श्रमण संघ के प्रमुख आचार्य श्री द्रोण के नेतृत्त्व में विद्वानों की समिति ने अभयदेव सूरि निर्मित सूत्रवृत्तियों का संशोधन किया था, आगमों की वृत्तियाँ विक्रम संवत् 1128 तक में बनकर पूरी हो चुकी थी, इसलिए इसके बाद श्री अभयदेवसूरिजी पाटण में अधिक नहीं रहे होंगे, 1128 के बाद में बनी हुई इनकी कोई कृति उपलब्ध नहीं होती, लगभग इसी अर्से में हरिभद्रसूरीय पंचाशक प्रकरण की टीका आपने 'धवलका' में बनाई है, इससे भी यही सूचित होता है, कि आचार्य श्री अभयदेवसूरिजी ने 1128 में ही पाटण छोड़ दिया था। इस समय वे बाद का इनका कोई ग्रंथ दृष्टिगोचर नहीं हुआ, इससे हमारा अनुमान है कि आचार्य श्री अभयदेव सूरिजी ने अपने जीवन के अन्तिम दशक में शारीरिक अस्वास्थ्य अथवा अन्य किसी प्रतिबन्धक कारण से साहित्य के क्षेत्र में कोई कार्य नहीं किया।

आपका स्वर्गवास भी पाटण से दूर 'कपडवंज' में हुआ था, आपके स्वर्गवास का निश्चित वर्ष भी श्री अभयदेव सूरि के अनुयायी होने का दावा करने वालों को मालूम नहीं है, इस परिस्थिति में यही मानना चाहिये कि श्रीअभयदेवसूरिजी विक्रम संवत् 1128 के बाद गुजरात के मध्य प्रदेश में ही विचरे हैं। खरतरगच्छ के अर्वाचीन किसी किसी लेखक ने इनके स्वर्गवास का समय सं. 1151 लिखा है, तब किसी ने जिनवल्लभ गणी को सं. 1167 में अभयदेव सूरि के हाथ से सूरि-मंत्र प्रदान करने का लिखकर अपने अज्ञान का प्रदर्शन किया है। अभयदेव सूरिजी 1151 अथवा 1167 तक जीवित नहीं रहे थे, अनेक अन्य गच्छीय पट्टावलियों में इनका स्वर्गवास 1135 में और मतान्तर से 1139 में लिखा है, जो ठीक प्रतीत होता है, आचार्य जिनदत्त कृत 'गणधर-सार्धशतक' की वृत्तियों में श्री सुमति गणि तथा सर्वराज गणि ने भी अभयदेवसूरिजी के स्वर्गवास के समय की कुछ भी सूचना नहीं की, इसलिए 'बृहद् पौषध-शालिक' आदि गच्छों की पट्टावलियों में लिखा हुआ अभयदेव सूरिजी का निर्वाण समय ही सही मान लेना चाहिए।

अभयदेवसूरि का स्वर्गवास मतान्तर के हिसाब से सं. 1139 में मान लें तो भी

सं. 1167 का अन्तर 28 वर्ष का होता है। खरतरगच्छ के तमाम लेखकों का एकमत्य है कि सं. 1167 में जिनवल्लभ गणि को देवभद्रसूरि ने आचार्य अभयदेवसूरिजी के पट्ट पर प्रतिष्ठित कर उन्हें आचार्य बनाया था। खरतरगच्छ के लगभग सभी लेखकों का कथन है, कि अभयदेवसूरिजी स्वयं जिनवल्लभ को अपना पट्टधर बनाना चाहते थे, परन्तु चैत्यवासि-शिष्य होने के कारण गच्छ इसमें सम्मत नहीं होगा, इस भय से उन्होंने जिनवल्लभ को आचार्य नहीं बनाया, परन्तु अपने शिष्य प्रसन्नचन्द्राचार्य को कह गये थे कि समय पाकर जिनवल्लभ गणि को आचार्य पद प्रदान कर देना। प्रसन्नचन्द्र सूरि को भी अपने जीवन दर्मियान जिनवल्लभ को आचार्य पद देने का अनुकूल समय नहीं मिला और अपने अन्तिम समय में इस कार्य को सफल करने की सूचना देवभद्र सूरि को कर गए थे और संवत् 1167 में आचार्य देवभद्र ने कतिपय साधुओं के साथ चित्तौड़ जाकर जिनवल्लभ गणि को आचार्य पद से विभूषित किया।

उपरोक्त वृत्तान्त पर गहराई से सोचने पर अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं। *पहला तो यह कि यदि अभयदेव सूरिजी ने जिनवल्लभ गणि को अपना शिष्य बना लिया था और विद्वत्ता आदि विशिष्ट गुणों से युक्त होने के कारण उसे आचार्य बनाना चाहते थे, तो गच्छ को पूछकर उसे आचार्य बना सकते थे। वर्धमान आदि अपने चार शिष्यों को आचार्य बना लिया था और गच्छ का विरोध नहीं हुआ, तो जिनवल्लभ के लिये विरोध क्यों होता ? जिनवल्लभ चैत्यवासी शिष्य होने से उसके आचार्य पद का विरोध होने की बात कही जाती है, जो थोथी दलील है, अभयदेवसूरिजी का शिष्य हो जाने के बाद वह चैत्यवासियों का शिष्य कैसे कहलाता, यह समझ में नहीं आता।*

मान लिया जाय कि जिनवल्लभ को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने के कार्य में श्री अभयेदव सूरिजी के शिष्य परिवार में दो मत थे, तो चौबीस वर्ष के बाद उन्हें आचार्य कैसे बनाया? *क्या उस समय अभयदेवसूरिजी का शिष्यसमुदाय एकमत हो गया था? अथवा समुदाय में दो भाग पाड़कर आचार्य देवभद्र ने यह कार्य किया था? जहाँ तक हमें इस प्रकरण का अनुभव है उक्त प्रकरण में कुछ और ही रहस्य छिपा हुआ था, जिसे खरतर गच्छ के निकटवर्ती आचार्यों ने प्रकट नहीं किया और पिछले लेखक इस रहस्य को खोलने में असमर्थ रहे हैं।* ***खरतरगच्छ के प्राचीन ग्रंथों के अवगाहन और इतर प्राचीन साहित्य का मनन करने से हमको प्रस्तुत प्रकरण का जो स्पष्ट दर्शन मिला है, उसे पाठक गण के ज्ञानार्थ नीचे उपस्थित करते हैं–***

जिनवल्लभ वर्षों तक अभयदेवसूरि के शिष्यसमुदाय के साथ रहे थे, वे स्वयं विद्वान् एवं क्रियारूचि आत्मा थे, वह समय अधिकांश शिथिलाचारी साधुओं का था। उनका शैथिल्य देखकर जिनवल्लभ के हृदय में दुःख होता था। अच्छे वक्ता होने के कारण वे शिथिलाचार के विरुद्ध बोला करते थे। देवभद्र आदि कतिपय अभयदेव सूरि के शिष्य भी उन्हें उभाड़ते और चैत्यवासियों के विरुद्ध बोलने को उत्तेजित किया करते थे। धीरे-धीरे जिनवल्लभ गणी का हृदय निर्भीक होता गया और चैत्यवासियों के विरोध के प्रचार के साथ अपने वैहारिक साधुओं के पालने के नियम बनाने तथा अपने नये मन्दिर बनाने के प्रचार को खूब बढ़ाया, राज्य सेअपने विधि चैत्य के लिए जमीन मांगी गई। स्थानिक संघ के विरोध करने पर भी जमीन राज्य की तरफ से दे दी गई। बस फिर क्या था, जिनवल्लभगणी तथा इनके पृष्ठपोषक साधु तथा गृहस्थों के दिमाग की गर्मी हद से ऊपर उठ गई और जिनवल्लभगणी तो खुल्ले आम अपनी सफलता और स्थानिक चैत्यवासियों की बुराइयों के ढोल पीटने लगे। कहावत है कि ज्यादा घिसने से चन्दन से भी आग प्रकट हो जाती है, पाटन में ऐसा ही हुआ। जिनवल्लभ गणी के निरंकुश लेक्चरों से स्थानिक जैन संघ क्षुब्ध हो उठा, सभी गच्छों के आचार्यों तथा गृहस्थों ने संघ की सभा बुलाई और जिनवल्लभ गणी को संघ से बहिष्कृत कर पाटन में ढिंढोरा पिटवाया कि-

''जिनवल्लभ के साथ कोई भी पाटणवासी आचार्य और श्रमणसंघ, किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखे, इस पर भी कोई साधु इसके साथ व्यवहार रखेगा तो वह भी जिनवल्लभ की तरह संघ से बहिष्कृत समझा जायगा।''

पाटण के जैन संघ की तरफ से उपर्युक्त जाहिर होने के बाद जिनवल्लभ गणिजी की तूती सर्वथा बन्द हो गई, उनके लेक्चर सुनने के लिए सभाओं का होना बंद हो गया। उनके अनुयायियों ने उन्हें सलाह दी कि पाटण में तो आपके व्याख्यानों से अब कोई लाभ न होगा, अब बाहर गांवों में प्रचार करना लाभदायक होगा। गणीजी पाटण छोड़कर उसके परिसर के गांवों में चले गए और प्रचार करने लगे, परन्तु उनके संघ बाहर होने की बात उनके पहले ही पवन के साथ गांवों में पहुँच चुकी थी, वहाँ भी इनके व्याख्यानों में आने से लोग हिचकिचाते थे। थोड़े समय के बाद गणीजी वापस पाटण आए और अपने हितचिन्तकों से कहा-गुजरात में फिरने से तो अब विशेष लाभ न होगा। गुजरात को छोड़कर अब किसी दूसरे देश में विहार करने का निर्णय किया, उनके समर्थकों ने बात का समर्थन किया, आचार्य देवभद्र ने जिनशेखर को, जो जिनवल्लभ का गुरु भाई था, जिनवल्लभ के

साथ जाने की आज्ञा दी। परन्तु जिनशेखर ने संघ बाहर होने के भय से जिनवल्लभ गणी के साथ जाने से इन्कार कर दिया, आचार्य देवभद्र जिनशेखर के इस व्यवहार से बहुत ही नाराज हुए तथापि जिनशेखर ने अपना निर्णय नहीं बदला और जिनवल्लभ गणी को गुजरात छोड़कर उत्तर की तरफ अकेले विहार करना पड़ा। मरुकोट होते हुए वे चातुर्मास्य आने के पहले चित्तोड़ पहुँचे।

यद्यपि बीच में मारवाड़ जैसा लम्बा चौड़ा देश था और कई बड़े-बड़े नगर भी थे, परन्तु जिनवल्लभ गणी का पाटण में जो अपमान हुआ था, उसकी हवा सर्वत्र पहुँच चुकी थी। चित्तौड में भी जैनों की पर्याप्त बस्ती थी और अनेक उपाश्रय भी थे, इसपर भी उन्हें चातुर्मास्य के योग्य कोई स्थान नहीं मिला। ***खरतरगच्छ के लेखक उपाश्रय आदि ने मिलने का कारण चैत्यावासियों का प्राबल्य बताते हैं, जो कल्पना मात्र है।*** *चैत्यवासी अपनी पौषधशालाओं में रहते थे और चैत्यों की देखभाल अवश्य करते थे, फिर भी वैहारिक साधु वहाँ जाते तो उन्हें गृहस्थों के अतिरिक्त मकान उतरने के लिए मिल ही जाते थे।* ***वर्धमान सूरि का समुदाय वैहारिक था और सर्वत्र विहार करता था फिर भी उसको उतरने के लिए मकान न मिलने की शिकायत नहीं थी, तब जिनवल्लभ गणी के लिए ही मकान न मिलने की नौबत कैसे आई? खरी बात तो यह है कि जिनवल्लभ गणी के पाटण में संघ से बहिष्कृत होने की बात सर्वत्र प्रचलित हो चुकी थी,*** *इसी कारण से उन्हें मकान देने तथा उनका व्याख्यान सुनने में लोग हिचकिचाते थे। इसीलिए जिनवल्लभ गणी को चित्तौड़ में 'चामुण्डा' के मठ में रहना पड़ा था।*

यह सब कुछ होने पर भी जिनवल्लभ गणी ने अपनी हिम्मत नहीं हारी। चित्तौड़ से प्रारम्भ कर बागड़ तथा उत्तर मारवाड़ के खास-खास स्थानों में विहार कर अपना प्रचार जारी रखा। भिन्न-भिन्न विषयों पर निबन्धों के रूप में प्राकृत भाषा में 'कुलक' लिखकर अपने परिचित स्थानों में उनके द्वारा धार्मिक प्रचार करते ही रहे। कुलकों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि उस प्रदेश में जाने के बाद जिनवल्लभ गणी ने अपने उपदेशों की भाषा साधारण रूप से बदल दी थी, पाटण में चैत्यवासियों का खण्डन करने में जो उग्रता थी, वह बदल चुकी थी। इतना ही नहीं 'समय देखकर लिंगमात्र धारियों का भी सन्मान करने की सलाह देते थे'। विद्वत्ता तो थी ही, चारित्रमार्ग अच्छा पालते थे और उपदेश शक्ति भी अच्छी थी, परिणाम स्वरूप बागड़ आदि प्रदेशों में आपने अनेक गृहस्थों को धर्ममार्ग में जोड़ा।

उधर आचार्य देवभद्र और उनकी पार्टी के मन में जिनवल्लभ का आचार्य बनाने की धुन लगी हुई थी। पाटण के जैन संघ में भी पौर्णमिक तथा आंचलिक गच्छों

की उत्पत्ति तथा नई प्ररूपणाओं के कारण अव्यवस्था बढ़ गई थी, परिणाम स्वरूप आचार्य देवभद्र की जिनवल्लभ को चित्तौड़ जाकर आचार्य बनाने की इच्छा उग्र बनी। कतिपय साधुओं को, जो उनकी पार्टी में शामिल थे, साथ में लेकर मारवाड़ की तरफ विहार किया और जिनवल्लभ गणी, जो उस समय नागोर की तरफ विचर रहे थे, उन्हें चित्तौड़ आने की सूचना दी और स्वयं भी मारवाड़ में होते हुए चित्तौड़ पहुँचे और उन्हें आचार्य पद देकर आचार्य अभयदेवसूरि के पट्टधर होने की उद्घोषणा की। इस प्रकार आचार्य देवभद्र की मण्डली ने अपनी चिरसंचित अभिलाषा को पूर्ण किया।

श्री जिनवल्लभ गणी को आचार्य बनाकर अभयदेव सूरिजी के पट्ट पर स्थापित करने का वृत्तान्त ऊपर दिया है। यह वृत्त खरतर गच्छ की पट्टावलियों के आधार से लिखा है। **अब देखना यह है कि अभयदेव सूरिजी को स्वर्गवासी हुए अट्ठाईस वर्ष से भी अधिक समय हो चुका था, श्री अभयदेव सूरिजी के पट्ट पर श्री वर्धमान सूरि, श्री हरिभद्र सूरि, श्री प्रसन्नचंद्रसूरि और श्री देवभद्रसूरि नामक चार आचार्य बन चुके थे, फिर अट्ठाईस वर्ष बाद जिनवल्लभगणी को उनके पट्ट पर स्थापित करने का क्या अर्थ हो सकता है? इस पर पाठकगण स्वयं विचार कर सकते हैं।** शास्त्र के आधार से तो कोई भी आचार्य अपनी जीवित अवस्था में ही अपना उत्तराधिकारी आचार्य नियत कर देते थे। कदाचित् किसी आचार्य की अकस्मात मृत्यु हो जाती तो उसकी जाहिरात होने के पहले ही गच्छ के गीतार्थ अपनी परीक्षानुसार किसी योग्य व्यक्ति को आचार्य के नाम से उद्घोषित करने के बाद मूल आचार्य के मरण को प्रकट करते थे। कभी-कभी आचार्य द्वारा अपनी जीवित अवस्था में नियत किये हुए उत्तराधिकारी के योग्यता प्राप्त करने के पहले ही मूल आचार्य स्वर्गवासी हो जाते तो गच्छ किसी अधिकरी योग्य गीतार्थ व्यक्ति को सौंपा जाता था।

जिनवल्लभ गणी के पीछे न परिवार था न गच्छ की व्यवस्था, फिर इतने लम्बे समय के बाद उन्हें आचार्य बनाकर अभयदेवसूरिजी का पट्टधर क्यों उद्घोषित किया गया? इसका खरा रहस्य तो आचार्य श्री देवभद्र जानें, **परन्तु हमारा अनुमान तो यही है कि जिनवल्लभ गणी की पीठ थपथपाकर उनके द्वारा पाटण में उत्तेजना फैलाकर वहाँ के संघ द्वारा गणिजी को संघ से बहिष्कृत करने का देवभद्र निमित्त बने थे, उसी के प्रायश्चित्त स्वरूप देवभद्र की यह प्रवृत्ति थी।**

अब रही जिनवल्लभ गणी के खरतरगच्छीय होने की बात, सो यह बात भी निराधार है। जिनवल्लभ के जीवन पर्यन्त ''खरतर' यह नाम किसी भी व्यक्ति

अथवा समुदाय के लिए प्रचलित नहीं हुआ था। आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि, उनके गुरु-भाई बुद्धिसागर सूरि तथा उनके शिष्य जिनचन्द्रसूरि तथा अभयदेवसूरि आदि की यथोपलब्ध कृतियाँ हमने पढ़ी हैं। किसी ने भी अपनी कृतियों में खरतर शब्द का प्रयोग नहीं किया। श्री जिनदत्त सूरि ने, जो जिनवल्लभ सूरि के पट्टधर माने जाते हैं, अपनी 'गणधरसार्द्धशतक' नामक कृति में पूर्ववर्ती तथा अपने समीपवर्ती आचार्यों की खुलकर प्रशंसा की है, परन्तु किसी भी आचार्य को ***खरतर पद*** *प्राप्त होने की सूचना तक नहीं की।*

जिनदत्त सूरि के 'गणधर सार्द्धशतक' की बृहद्वृत्ति में, जो विक्रम सं. 1295 में श्री सुमति गणि द्वारा बनाई गई है, उसमें श्री वर्धमान सूरि से लेकर आचार्य श्री जिनदत्तसूरि तक के विस्तृत चरित्र दिए हैं, परन्तु किसी आचार्य को 'खरतर' बिरुद प्राप्त होने की बात नहीं लिखी। सुमति गणिजी ने आचार्य जिनदत्तसूरि के वृत्तान्त में ऐसा जरुर लिखा है कि जिनदत्तसूरि स्वभाव के बहुत कड़क थे, वे हर किसी को कड़ा जवाब दे दिया करते थे। इसलिए लोगों में उनके स्वभाव की टीका-टिप्पणियाँ हुआ करती थी। लोग बहुधा उन्हें 'खरतर' अर्थात् कठोर स्वभाव का होने की शिकायत किया करते थे। परन्तु जिनदत्त जन-समाज की इन बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। धीरे-धीरे जिनदत्तसूरिजी के लिए 'खरतर' यह शब्द प्रचलित हुआ था, ऐसा सुमतिगणि कृत 'गणधरसार्द्ध-शतक' की टीका पढ़ने वालों की मान्यता है।

यद्यपि 'खरतर' शब्द का खास सम्बन्ध जिनदत्तसूरिजी से था, फिर भी इन्होंने स्वयं अपने लिये किसी भी ग्रंथ में 'खरतर' यह विशेषण नहीं लिखा। जिनदत्त सूरिजी तो क्या इनके पट्टधर श्री जिनचंद्र, इनके शिष्य श्री जिनपतिसूरि, जिनपति के पट्टधर जिनेश्वरसूरि और जिनेश्वरसूरि के पट्टधर जिनप्रबोधसूरि तक के किसी भी आचार्य ने 'खरतर' शब्द का प्रयोग अपने नाम के साथ नहीं किया। वस्तुस्थिति यह है कि विक्रम की चउदहवीं शती के प्रारंभ से खरतर शब्द का प्रचार होने लगा था। शुरु-शुरु में वे अपने को 'चन्द्र गच्छीय' कहते थे, फिर इसके साथ 'खरतर' शब्द भी जोड़ने लगे।"

इतिहास वेत्ता पं. कल्याणविजयजी के इस लेख को पढ़ने के बाद किसी प्रश्न या जिज्ञासा का अवकाश प्रायः रहता नहीं है, फिर भी अलग अलग दृष्टिकोण से आगे विचार किया जाएगा।

(निबन्ध-निचय, पृ. 18 से 27 से साभार)

अभयदेवसूरिजी एवं खरतरगच्छ में मान्यता भेद!!!

खरतरगच्छ की परंपरा अभयदेवसूरिजी की संतानीय नहीं है, ऐसा इसलिए भी मानना उचित लगता है क्योंकि खरतरगच्छ की कई मान्यताएँ अभयदेवसूरिजी का अनुसरण नहीं करती हैं, जैसे कि–

1. हरिभद्रसूरिजी ने पंचाशक (यात्रा पंचाशक) ग्रंथ में भगवान महावीर के पांच कल्याणक बताये हैं और अभयदेवसूरिजी ने भी उसकी टीका में भगवान् महावीर के गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान एवं निर्वाण पाँच कल्याणक हुए ऐसा लिखा है। जबकि खरतरगच्छ की परंपरा में षट् कल्याणक की मान्यता है।

2. अभयदेवसूरिजी ने श्री ज्ञाताधर्मकथा की टीका में द्रौपदी द्वारा जिन प्रतिमा पूजन के अधिकार का विस्तृत विवेचन किया है, यानि कि स्त्रियाँ पूजा कर सकती हैं, ऐसा आगम के मूल सूत्र में है एवं अभयदेवसूरिजी भी इसको स्वीकारते थे। जबकि खरतरगच्छ की सामाचारी में स्त्री पूजा का निषेध है।

3. अभयदेवसूरिजी ने स्थानाङ्ग सूत्र प्रथम स्थान एवं प्रश्नव्याकरण 10वें अध्ययन सू. 29 की टीका में साधु के उपकरणों में पल्ले को गिनाया है जबकि खरतरगच्छ के सामाचारी ग्रंथों में पल्ले रखने की आचरणा नहीं है ऐसा लिखा है।

जिनवल्लभगणिजी के उल्लेखों से तथा खरतरगच्छ की परंपरा और अभयदेव-सूरिजी में मान्यता-भेद के आधार से निर्णय कर सकते हैं कि **खरतरगच्छ, अभयदेवसूरिजी की शिष्य-परंपरा के रूप में नहीं है।**

यहाँ पर एक बात विशेष ध्यान में लेने जैसी है कि समयसुंदर गणिजी की 'सामाचारीशतक' में जिनवल्लभगणिजी और जिनदत्तसूरिजी की सामाचारी दी है, परंतु जिनेश्वरसूरिजी की और अभयदेवसूरिजी की सामाचारी नहीं दी है। **जिनेश्वरसूरिजी ने 'चैत्यवंदन विवरण' में अपने गच्छ को चैत्यवंदन संबंधी भिन्न सामाचारी को सूचित किया है।*** **अगर खरतरगच्छ उनकी शिष्य परंपरा में होता तो सामाचारी शतक में जिनेश्वरसूरिजी की उस भिन्न सामाचारी का भी निर्देश होता।** परंतु 'सामाचारीशतक' में उसका कोई विवरण नहीं मिलता है।

दूसरी बात **जिनदत्तसूरिजी ने 'चर्चरी' आदि ग्रंथों में जिनवल्लभगणिजी की महती प्रशंसा की है और जिनवल्लभसूरिजी प्ररूपित सामाचारी और उपदेशों को ही**

---

* देखें पृ. 92

आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। इन बातों से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान में खरतरगच्छ परंपरा जिनवल्लभगणिजी एवं जिनदत्तसूरिजी द्वारा शुरु की गयी सामाचारीओं को वफादार है। **अतः यह अनुमान कर सकते हैं कि जिनवल्लभगणिजी से प्रारंभिक रूप एवं जिनदत्तसूरिजी से मुख्य रूप से खरतरगच्छ की शुरुआत हुई थी।**

"अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे"

–महो. विनयसागरजी

अतः **यह स्पष्ट है कि वर्धमान, जिनेश्वर, अभयदेव खरतरगच्छीय नहीं,** अपितु खरतरगच्छीय जिनवल्लभ, जिनदत्त, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि आदि के पूर्वज अवश्य थे और ऐसी स्थिति में उत्तरकालीन मुनिजनों द्वारा अपने पूर्वकालीन आचार्यों को अपने गच्छ का बतलाना स्वाभाविक ही है।*

(खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास – प्रथम खण्ड, पृ. 13)

*. उनका स्वाभाविक रूप से अभयदेवसूरिजी को अपने गच्छ का बतलाना भी विचारणीय है। (विशेष के लिए देखें पृ. 53 से 55, 79)

अभयदेवसूरिजी की शिष्य-परंपरा में कौन?

पुनः प्रश्न उठ सकता है कि अभयदेवसूरिजी की शिष्य-परंपरा में कौन हुए थे?

उसका समाधान हमें जिनवल्लभगणिजी की 'अष्टसप्ततिका', सुमतिगणिजी कृत गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति आदि से मिलता है।

अष्टसप्ततिका में प्रसन्नचंद्रसूरिजी, वर्धमानसूरिजी, हरिभद्रसूरिजी, देवभद्रसूरिजी आदि को अभयदेवसूरिजी की शिष्य परंपरा के रूप में बताये हैं। तथा **गाणधरसार्द्धशतक वृत्ति** में वर्धमानसूरिजी की अभयदेवसूरिजी के पट्टधर बताये हैं। **अतः ऐसा लगता है कि वर्धमानसूरिजी से अभयदेवसूरिजी की शिष्य परंपरा चली होगी।**

उस शिष्य परंपरा के ग्रन्थों की प्रशस्तियों में भी वर्धमानसूरिजी, जिनेश्वरसूरिजी, अभयदेवसूरिजी आदि के उल्लेख मिलते हैं तथा शिलालेखों में भी नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरि संतानीय श्री चंद्रसूरिभिः, अभयेदेवसूरिसंतानीय श्री धर्मघोषसूरिभिः इत्यादि रूप में 'अभयदेवसूरि संतानीय' शब्द का बहुत बार उल्लेख मिलता है। इस बात की महो. विनयसागरजी संपादित 'खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह' ग्रंथ एवं उनके 'पुरोवाक्' से भी पुष्टि होती है।

अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे, क्योंकि उनके संतानीय आचार्यों के शिलालेखों में 'खरतरगच्छ' ऐसा उल्लेख नहीं मिलता हैं। जैसे कि जिनदत्तसूरिजी की शिष्य परंपरा के 14वीं शताब्दी बाद के लेखों में उपलब्ध होता है।

विशेषता यह है कि जिनदत्तसूरिजी के समकालीन एवं जिनवल्लभगणिजी के गुरुभाई ऐसे जिनशेखरसूरिजी की शिष्य परंपरा के लेखों में भी चान्द्रकुल अथवा रुद्रपल्लीय गच्छ का ही उल्लेख मिलता है, खरतरगच्छ का नहीं। **इससे भी स्पष्ट होता है कि अभयेदवसूरिजी खरतरगच्छ के नहीं थे।**

महो. विनयसागरजी का अभिप्राय

पद्मप्रभसूरिजी रचित 'मुनिसुव्रतचरित्र' की प्रशस्ति आदि के आधार पर **महो. विनयसागरजी ने अभयदेवसूरिजी की शिष्य-परंपरा के विषय में इस प्रकार अपना अभिप्राय बताया है-**

नवांगवृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि–परम्परा

1) अभयदेवसूरि, 2) प्रसन्नचंद्रसूरि, 3) देवभद्रसूरि, 4) देवानन्दसूरि, 5) विबुधप्रभसूरि, 6) देवभद्रसूरि, 7) पद्मप्रभसूरि।

आचार्य अभयदेवसूरि की परम्परा के आचार्य श्री प्रसन्नचन्द्रसूरिजी और श्री देवभद्रसूरि इन दोनों आचार्यों के विद्यागुरु आचार्य अभयदेवसूरि थे। इन दोनों का यत्किञ्चित प्राप्त उल्लेख पूर्व में ही आचार्य अभयदेव, आचार्य जिनवल्लभ और आचार्य जिनदत्तसूरि चरित्रों में आ चुका है। अवशिष्ट आचार्यों के सम्बन्ध में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता और पद्मप्रभसूरि के पश्चात् यह परम्परा कहां तक चली, ज्ञात नहीं है। किन्तु आबू इत्यादि से प्राप्त मूर्ति लेखों के आधार पर यह निश्चित है कि साधु परम्परा 15वीं शती के पूर्वार्द्ध तक चलती रही है। (खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास, पृ. 19)

शिलालेखों के आधार से ऐसा कह सकते हैं कि अभयेदवसूरिजी की मूल शिष्य परंपरा (अर्थापत्ति से जिनेश्वरसूरिजी की शिष्य–परंपरा) जिनका 'अभयदेव–सूरि–संतानीय' के रूप में उल्लेख मिलता है, वह प्रायः 15वीं शताब्दी तक ही अस्तित्व में रही होगी।

एक बड़ा भ्रम !!!

''अन्य गच्छों की पट्टावलिओं में नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरिजी का नाम नहीं लिखा है, अतः वे खरतरगच्छीय थे।''

✻ निराकरण ✻

रूद्रपल्लीय गच्छ एवं अभयदेवसूरि संतानीय के उल्लेखों में भी अभयेदवसूरिजी को अपने पूर्वज आचार्य के रूप में बताया है। और ये दोनों गच्छ खरतरगच्छ की शाखा भी नहीं है। (देखें पृ. 119 और 140)

अतः उपरोक्त तर्क को आगे करके अभयदेवसूरिजी को खरतरगच्छीय मान लेना एक बड़ा भ्रम है।

मिली इतिहास की नयी कड़ी!!!

इस प्रकार हमने देखा कि अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के नहीं थे और न ही खरतरगच्छ अभयदेवसूरिजी की परम्परा में हुआ था। परंतु भक्ति आदि के कारण से खरतरगच्छ की पट्टावलियों में अभयदेवसूरिजी को अपने पूर्वाचार्य के रूप में बताया है और इसी प्रवाद से प्रभावित होकर अन्य गच्छों के परवर्ती ग्रंथों में अभयदेवसूरिजी के खरतरगच्छीय होने के उल्लेख किये गये हैं। ऐसा उन्हीं गच्छों के प्राचीन ग्रंथों के साथ पूर्वापर अनुसंधान करने से प्रतीत होता है। (देखें पृ. 19-20)

नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरिजी अपने काल के प्रभावक आचार्य थे उनसे चली परम्परा 'अभयदेवसूरि-संतानीय' के नाम से जानी जाती थी। उस परम्परा के विषय में इतिहास की एक नयी कड़ी प्राप्त हुई है।

1) सं. 1294 में पद्मप्रभसूरिजी ने 'मुनिसुव्रत चरित्र' की रचना की थी। इस ग्रंथ की प्रशस्ति में उन्होंने जिनचंद्रसूरिजी और अभयदेवसूरिजी को अपने पूर्वाचार्य के रूप में बताया है। (देखें पृ. 108)

उन्हीं के भक्त श्रावक ने सं .1304 में मुनिसुव्रत चरित्र की प्रतिलिपि करायी थी, जो जेलसमेर ताड़पत्रीय ग्रंथ भण्डार में क्रमांक 256 में है। उसकी प्रशस्ति में ''छत्रापल्लीय श्री पद्मप्रभसूरितः'' इस प्रकार का उल्लेख मिलता है। (देखें पृ.72) । इसी ताड़पत्रीय के साथ कुछ छुट्टे पन्ने भी हैं, जिसकी प्रशस्ति में भी ''श्री दण्डछत्रापल्लीयता.... देवभद्रसूरिणा....'' इस प्रकार का उल्लेख मिलता है। (देखें पृ. 73)

इससे स्पष्ट होता है कि अभयदेवसूरि - संतानीय परम्परा छत्रापल्लीय नाम से भी जानी जाती थी।

खरतरगच्छ की किसी भी पट्टावली में छत्रापल्लीय गच्छ को अपनी शाखा के रूप में नहीं बताया है। अतः स्पष्ट होता है कि छत्रापल्लीय गच्छ खरतरगच्छ की शाखा नहीं है।

2) इस बात की पुष्टि खरतरगच्छ के प्रभावक आचार्य **जिनप्रभसूरिजी** कृत '**विविध तीर्थकल्प**' ग्रंथ में दिये गये अयोध्यानगरी कल्प से होती है।

उसमें 'जओ अ सेरीसयपुरे **नवंगवित्तिकार-साहासमुब्भवेहिं सिरिदेविं-दसूरीहिं** चत्तारि महाबिंबाइं दिव्वसत्तीए गयणमग्गेण आणीआइं।' इस उल्लेख से देवेन्द्रसूरिजी को नवाङ्गीवृत्तिकार-संतानीय बताया है। फिर आगे '**छत्तावल्लीयसिरिदेविंदसूरिणो**' इस प्रकार का उल्लेख किया है। (देखें पृ. 74)

इससे भी स्पष्ट होता है कि अभयदेवसूरि-संतानीय, छत्रापल्लीय के नाम से भी जाने जाते थे।

3) यहाँ पर एक विशेष बात ध्यान में लेने जैसी है कि सं. 1125 में छत्रापल्ली पुरी में रहकर आ. जिनचंद्रसूरिजी ने 'संवेगरंगशाला' की निष्पत्ति की थी। ऐसा उसकी प्रशस्ति से पता चलता है। इससे यह अनुमान होता है कि आ. जिनचंद्रसूरिजी का छत्रापल्ली में विशेष विचरण रहा होगा और इसी कारण प्रायः उनका शिष्य परिवार छत्रापल्लीय के नाम से जाना जाने लगा होगा। (देखें पृ. 75)

अभयदेवसूरिजी की शिष्य परंपरा में हुए मुनिजन 'अभयदेवसूरि-संतानीय' कहे जाते थे। आ. अभयदेवसूरिजी और आ. जिनचंद्रसूरिजी अत्यंत निकट थे। अतः उनके शिष्यों में भी परस्पर भेद नहीं था और अभयदेवसूरिजी विशेष रूप से प्रभावक आचार्य रहे थे। अतः दोनों की परंपरा अभयदेवसूरिसंतानीय के रूप में विशेष रूप से प्रसिद्ध रही होगी और इसीलिए 'मुनिसुव्रत चारित्र' के पुस्तक की प्रशस्ति में आ. जिनचंद्रसूरिजी के शिष्य प्रसन्नचंद्रसूरिजी की परम्परा में हुए पद्मप्रभसूरिजी 'छत्रापल्लीय'[*1] और अन्यत्र नवाङ्गीटीकाकार अभयदेवसूरि- संतानीय' के रूप में भी बताये गये हैं।[*2] विविधतीर्थकल्प में भी देवेन्द्रसूरिजी 'छत्रापल्लीय' और 'अभयदेवसूरि-संतानीय' विशेषणों से बताये गये हैं।

विविध तीर्थकल्प की कुछ विशेष बातें

जिनप्रभसूरिजी खरतरगच्छ के थे और उनके समय तक खरतरगच्छ शब्द

---

*1. देखें पृ. 71-72

*2 'सं. 1298 वर्षे पत्तननगरे सर्वैराचार्यैः सम्भूय शासनमर्यादाकृते मतकं कृतं। तत्र नवाङ्गी-वृत्तिकार-श्रीअभयदेवसूरिसन्ताने छत्राउलाश्रीदेवप्रभसूरिशिष्यश्रीपद्मसूरिरिति लिखित-मस्ति।' ऐसा उल्लेख 'औष्ट्रिकमतोत्सूत्रप्रदीपिका' ग्रंथ में मिलता है।

का प्रचलन हो चुका था। अगर छत्रापल्लीय खरतरगच्छ की शाखा होती तो उसका उल्लेख करते तथा अगर अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के होते तो वे अवश्य 'खरतरगच्छ नभोमणिनवाङ्गी–वृत्तिकार अभयदेवसूरि' इस प्रकार का उल्लेख करते'। जबकि ऐसा नहीं है, देखिये :–

1) उन्होंने 'श्री पार्श्वनाथकल्प' और 'श्रीस्तम्भनककल्प' में केवल ''सिरिअभयदेवसूरी दूरीकयदुहिअरोगसंघाओ।'' तथा ''सिरिअभयदेवसूरी विजयंतु नवंगवित्तिकारा'' इस प्रकार का ही उल्लेख किया है। (देखें पृ.76)

2) दुसरी बात **'कन्यानयनीयमहावीरप्रतिमाकल्प'** में **'ढिल्लीसाहापुरे खरयर–गच्छालंकारसिरि**जिणसिंहसूरिपट्टपइट्ठिया सिरिजिणप्पहसूरिणो।' इस उल्लेख से खुद को खरतरगच्छीय बताया है एवं अपने गुरु को 'खरतरगच्छालंकार' ऐसे विशेषण से विशेषित किया है। (देखें पृ. 77)

3) **अगर नवाङ्गीटीकाकार जैसे महापुरुष अपने गच्छ में हुए होते अथवा अपने पूर्वज होते तो उसका वे अवश्य उल्लेख करते।** जैसे कि, जिनपतिसूरिजी को इसी कल्प में **'सिरिजिणवइसूरीहिं अम्हेच्चय पुव्वायरिएहिं'** इस प्रकार अपने पूर्वाचार्य के रूप में बताया है। (देखें पृ. 77)

4) इतना ही नहीं, स्तम्भनककल्पशिलोञ्छः में 'इओ अ **चंदकुले सिरिवद्धमाणसूरिसीसजिणेसरसूरीणं सीसो सिरिअभयदेवसूरी**' गुज्जरत्ताए संभायणठाणे विहरिओ।' इस प्रकार अभयदेवसूरिजी को स्पष्ट रूप से चांद्रकुल का बताया है। (देखें पृ. 78) जबकि जिनप्रभसूरिजी ने उपर बताये अनुसार खुद को तो खरतरगच्छीय ही बताया है एवं जिनपति सुरिजी को अपने पूर्वाचार्य के रूप में बताये हैं।

सार इतना है कि विविधतीर्थकल्प में प्राप्त होते जिनप्रभसूरिजी के उल्लेखों एवं मुनिसुव्रत चरित्र की प्रशस्ति से यह पता चलता है कि–

1. अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छीय नहीं थे परंतु चांद्रकुल के थे।
2. वे खरतरगच्छ के पूर्वाचार्य नहीं थे।
3. अभयदेवसूरिजी की शिष्य परंपरा 'अभयदेवसूरि संतानीय' अथवा 'छत्रापल्लीगच्छ' के नाम से जानी जाती थी। वह खरतरगच्छ की शाखा नहीं है।

क्रमाङ्क २५४

वासुपूज्यस्वामिचरित्र पद्य पत्र ३५९। **भा.** सं.। **क.** वर्धमानसूरि। **ग्रं.** ५४९४। **र. सं.** १२९९। **ले. सं.** १३२७। **संह.** श्रेष्ठ। **द.** श्रेष्ठ। **लं. प.** २१।×२

अन्त—

नृपविक्रम संवत् १३२७ वर्षे अश्विनवदि १० बुधे श्रीमदर्ज(र्जु)नदेवकल्याणविजयराज्ये श्रीवासुपूज्य-चरितं लिखितं ॥

क्रमाङ्क २५५

शांतिनाथचरित्र गाथाबद्ध पत्र ३९७। **भा.** प्रा.। **क.** देवचन्द्रसूरि। **ग्रं.** १२१००। **र. सं.** ११६०। **ले. सं.** अनु. १३ मी शताब्दी। **संह.** श्रेष्ठ। **द.** श्रेष्ठ। **लं. प.** ३०×२।.। पत्र ३७७, ३७९ ना टूकडा नथी।

क्रमाङ्क २५६

मुनिसुव्रतस्वामिचरित्र पद्य पर्वत्रयात्मक पत्र १५७। **भा.** सं.। **क.** पद्मप्रभसूरि। **ग्रं.** ५५६८। **र. सं.** १२९४। **ले. सं.** १३०४। **संह.** श्रेष्ठ। **द.** श्रेष्ठ। **लं. प.** ३१×२॥.। प्रति शुद्ध छे।

॥इत्याचार्यश्रीपद्मप्रभविरचिते श्रीमुनिसुव्रतस्वामिचरिते भवत्रयनिबद्धे पर्वत्रितयप्रमाणे स्वामिनिर्वाणकल्याणक-प्रपंचः पंचदशः प्रस्तावः ॥छ॥ समर्थितं चेदं तृतीयं पर्व ॥छ॥ शुभं भवतु ॥छ॥

पूर्वं चंद्रकुले बभूव विपुले श्रीवर्द्धमानप्रभुः सूरिर्मंगलभाजनं सुमनसां सेव्यः सुवृत्तास्पदम्।
शिष्यस्तस्य जिनेश्वरः समजनि स्याद्वादिनामग्रणीर्बंधुस्तस्य च बुद्धिसागर इति त्रैविद्यपारंगमः ॥१॥
सूरिश्रीजिनचंद्रोऽभयदेवगुरुर्नवांगवृत्तिकरः। श्रीजिनभद्रमुनीन्द्रो जिनेश्वरविभोस्त्रयः शिष्याः ॥२॥
चक्रे श्रीजिनचंद्रसूरिगुरुभिर्धुर्यः प्रसन्नाभिधस्तेन ग्रन्थचतुष्टयीस्फुटमतिः श्रीदेवभद्रप्रभुः।
देवानन्दमुनीश्वरोऽभवदतश्चारित्रिणामग्रणीः संसारांबुधिपारगाभिजनताकामेषु कामं सखा ॥३॥
यन्मुखावासवास्तव्या व्यवस्यति सरस्वती। गंतुं नान्यत्र स न्याय्यः श्रीमान् देवप्रभप्रभुः ॥४॥
मुकुरतुलामंकुरयति वस्तुप्रतिबिंबविशदमतिवृत्तम्। श्रीविबुधप्रभचित्तं न विधत्ते वैपरीत्यं तु ॥५॥
तत्पदपद्मभ्रमरश्चक्रे पद्मप्रभश्चरितमेतत्। विक्रमतोऽतिक्रांते वेदग्रहरविमिते समये १२९४ ॥६॥

इतश्च—

क्षितिभृत्कृतप्रतिष्ठे गूर्जरवंशेऽजनिष्ट पाजाकः। लेभे स यशःपालं नयपालनलालसं तनयम् ॥७॥
गुणधवलितदिग्वलयं तदनु यशोधवलमंगजमलब्ध। येन किल राजनगरे प्रथितं श्रीपार्श्वचैत्यं च ॥८॥
अजनि यशःपालसुतो विश्वाबालस्फुरद्यशःशाखी। श्रीपार्श्वजिनपदांबुजयुगहंसः पार्श्वदेवोऽथ ॥९॥
अजनिषत तस्य पुत्रास्त्रयश्चरित्रैः सतां पवित्रहृदः। प्रथमोऽत्र रत्नसिंहस्ततो जगत्सिंहसामन्तौ ॥१०॥
लघुनाऽप्यलघुसहोदरभक्तिभृता येन राजनगरेऽत्र। अप्रतिबिंबमकार्यत मुनिसुव्रततीर्थकृद्बिंबम् ॥११॥
नन्दीश्वरस्य नयनानन्दी जगताममंदविनयेन। सुजनप्रियेण विजितेन्द्रियेण पार्श्वप्रभोश्चैत्ये ॥१२॥
स्फटिकवैडूर्यबिंबयुत्या नित्यं विनिर्ममे येन। गंगायमुनावेणीसंगम इव दलितकलुषभरः ॥१३॥
जीर्णोद्धारधुरीणः सप्तक्षेत्रोपयुज्यमानधनः। अभवदिह हेतु कर्त्ता सामन्त[ः] स्वपरशुभवृद्ध्यै ॥१४॥
यावत् तपति दिनपतिर्विश्वं धवलयति वा सुधारश्मिः। अपनुदतु तमस्तावच्चरितमिदं शुभदशामनिशम् ॥१५॥
प्रथमादर्शलिखनसाहाय्ये धर्मकीर्त्तिगणिनाऽत्र। विहितेऽपूर्यत पंचकचतुष्टयांकं चरित्रमदः ॥१६॥

॥छ॥ ग्रंथाग्रं ५५६८ ॥छ॥

✻ इससे इतना पता चलता है कि 'मुनिसुव्रत चरित्र' के कर्ता पद्मप्रभसूरिजी चान्द्रकुल में हुए अभयदेवसूरिजी तथा जिनचंद्रसूरिजी के वंशज थे। – संपादक

॥ प्रख्याते विमलेऽत्र धर्कटकुले यस्योन्नतिः शर्मदा वांछातीतवितीर्णदाननिकरप्रीतार्थिकल्पद्रुमः ।
आधिव्याधिनिरस्तमानसगतिः सर्वज्ञधर्मे रतिः स श्रीमान् सुमतिर्बभूव सुमतिस्तस्याम्रवीरात्मजः ॥१॥

अम्बेश्वरस्तस्य सुतः प्रतीतो गांभीर्यमाधुर्यगुणैरगाधः ।
दानादिधर्मेषु विवृद्धचेता धुर्यो हि यो धर्ममहारथस्य ॥२॥

अम्बेश्वरस्य चत्वारः पुत्राः सन्ततिशालिनः । उपया इव भूभर्तुर्बभूवुरुदयोन्मुखाः ॥३॥

आद्यस्तेषां शालिगः साधुवृत्तः स्फीतः पुण्यैः पार्श्वदेवो द्वितीयः ।
सूमाकः श्रीसौम्यमूर्त्तिस्तृतीयो वर्यस्तुर्यो स्याद् यशोवीरनामा ॥४॥

शालिगस्य च चत्वारः पुत्राः प्राज्यगुणान्विताः । वरदेवो(वः) कालकोऽथ वीरडश्च तथाऽम्बडः ॥५॥

लीनं यशोवीरमनो जिनेन्द्रे श्लाघ्ये च संघे विशदातिभक्तिः ।
सुधानिधानं वचनं यदीयं परोपकारैकरसं वपुश्च ॥६॥

यशोवीरस्य षट् पुत्राः षड्गुणा इव विश्रुताः । शोल्हिकायां महासत्यां नीतौ जन्माऽऽपुरद्भुतम् ॥७॥
तदाद्यो बोहडिः श्रेष्ठी द्वितीयो राउतस्ततः । तृतीयो गांगदेवस्तु चतुर्थो देल्हकः सुधीः ॥८॥
पंचमो धांधुकस्तेषु षष्ठः षोषन इत्यमी । सर्वेऽप्यत्रजिना धर्मकर्मण्युद्यतमानसाः ॥९॥
बोहडिप्रेयसी देविण्यभूद् युवतिमंडनम् । आम्रसीहः सुतस्तस्याः पौत्रो धीणिग इत्यथ ॥१०॥
राजपुत्रस्य षट् पुत्रा राल्हू-मोहिणिसंभवाः । आमणो बोडसिंहोऽभयडो नउलकस्तथा ॥११॥
सेवाको मोहणश्चाथ शान्ती वइजू सुते शुभे । सेवाप्रिया भोपला तु कूरला कालकस्य च ॥१२॥
शतपत्राभिधग्रामे बोहडिप्रमुखैः सुतैः । नेमिश्रीपार्श्वयोर्बिंबे पित्रोः पुण्याय कारिते ॥१३॥
अभयडस्य लक्ष्मश्रीः प्रिया पुत्रश्च गोल्हणः । मूलदेवोऽपरः सील्ू पुत्री राउतसन्ततौ ॥१४॥

प्राचीनसीतादिसतीगणस्य मध्ये यथाऽऽत्मा विहितः स्वशुद्धया ।
सा सूमिणिर्देल्हुकगेहलक्ष्मीरभूत् पुनश्चापलतां न भेजे ॥१५॥
तस्याश्चतस्रस्तनया बभूवुरुन्निद्रशीलाभरणप्रकाशाः ।
यासां ध्वनिः श्रोत्रपुटैर्निपीय सौहित्यमापुः पशवोऽनभिज्ञाः ॥१६॥

आद्ये चंपलचाहिण्यौ गीतविज्ञानकोविदे । अन्ये सोहिणिमोहिण्यावेताः कस्य मुदाय न ॥१७॥
धांधूकस्य प्रिया पातू संतानी नैव सोऽभवत् । षोषनस्य प्रिया लाडी पंच पुत्राः सुताद्वयम् ॥१८॥
साह्णः प्रथमः पुत्रस्तथा धरणिगोऽपरः । यशोधवलस्तृतीयस्तु खीमसिंहश्चतुर्थकः ॥१९॥
पंचमो भीमसिंहोऽथ लाछूरूपलपुत्रिके । षोषनस्य बभूवेयं संततिः शुभशालिनी ॥२०॥
इतश्च देल्हुकसुता प्रागुक्ता प्रथमोद्भवा । पित्रोः श्रेयोऽर्थमत्यर्थं धर्मकर्मणि सा वरा ॥२१॥
आबाल्यात् कुमुदेन्दुकांतिविशदं यच्छीलमापालितं यद्भक्तिस्त्रिजगत्प्रतीतमहसि श्रीवीतरागेऽधिका ।
यत्पूजा च चतुर्विधे भगवति श्रीसंघभट्टारके तेनेयं विशदान्वयेति सुदती संलक्ष्यते चांपला ॥२२॥
तया तु छत्रापल्लीयश्रीपद्मप्रभसूरितः । देशनामृतमाकर्ण्य वैराग्योत्सुकयाऽधिकम् ॥२३॥
स्वभुजार्जितवित्तेन श्रीपार्श्वप्रतिमा गृहे । कारिता सुव्रतस्येदं चरित्रं लेखितं तथा ॥२४॥
पूर्वोक्तबिंबयोः पार्श्वे श्रीयुगादिजिनालये । श्रीमहावीरबिंबं च कारितं सपरिच्छदम् ॥२५॥
उदधिखखहिक्षितिजे १३०४ नृपविक्रमवत्सराद् गते वर्षे । परिपूर्णमिदं जातं सद्गुरूणां प्रसादतः ॥२६॥कुलकम्॥
चंद्रार्कावुदयं यावत् कुरुतः प्रतिवासरम् । मेदिनी विद्यते यावत् तावन्नंदतु पुस्तकः ॥२७॥

प्रशस्तिः समाप्तेति ।

---

* इसमें 'छत्रापल्लीय पद्मप्रभसूरितः' ऐसा उल्लेख है, जो छत्रा पल्लीय गच्छ को सूचित करता है। – संपादक

७॥ संवत् १३४३ आषाढ शुदि १ साधुवरदेवसुत दिग्वलयविख्यातकीर्त्तिकौमुदीविनिर्जित आमचंद्र साधुहेमचंद्रभ्रात्रा विशदगुणरत्नरोहणेन सा०महणश्रावकेण श्रीमुनिसुव्रतनाथचरित्रादिपुस्तकसप्तकं माल्येन गृहीत्वा श्रीजिनचंद्रसूरिसुगुरुभ्यो व्याख्यानाय प्रदत्तं ॥छ॥

विप्रकीर्णपत्रगता प्रशस्तिः—

.... ।

पूर्वं चन्द्रकुले विशालविलसद्व्यालिपद्माकरोल्लासे भानुनिभो बभूव यतिपः श्रीवर्द्धमानाभिधः ॥

श्रीजिनेश्वरसूरिश्रीबुद्धिसागरसूरिसुविहितवेधाः । प्रभो..॥

पंचाशकामिश्रीपार्श्व..श्रीदंडछत्रापल्लीयता ॥

भारत्याः कति नाम नामलधियः पुत्राः पवित्राः परं श्रीदेवप्रभसूरिणैव हृदयं तस्याः समावर्जितम् ।

वक्तृत्वं कविता विवेचनमिति स्वं सारमस्मै स्वयं देव्या येन वितीर्यते स्म जननादारभ्य सं......॥

रूपं क्वापि मनोहरं क्वचिदपि.................सकला क्वचित् क्वचिदपि प्रौढार्थकाव्यक्रिया ।

चातुर्यं वचसां क्वचित् परमहो येष्वेव सर्वे गुणा अन्योन्यं विरहासहा इह स र्वात्मनाऽपि स्थिताः ॥

संसारार्णवपातभीतभविनां रक्षाव्रतं बिभ्रतं सिद्धान्तांबुधिपारगां यतिजने कल्पद्रुकल्पां कलौ ।

....॥

महं० मुंजालदेवाख्यः श्रद्धासंबंधबन्धुरः । मातुः श्रेयोविधानाय व्याख्यापयति पुस्तकम् ॥ [अपूर्णा]

क्रमाङ्क २५७

मुनिसुव्रतस्वामिचरित्र पद्य पर्वत्रयात्मक पत्र. १९१। **भा.** सं.। **क.** पद्मप्रभसूरि। **ग्रं.** ५५६८। **र. सं.** १२९४। **ले. सं.** अनु. १४ मी शताब्दी पूर्वार्द्ध। **संह.** श्रेष्ठ। **द.** श्रेष्ठ। **लं. प.** ३१।×२॥.। पत्र १९०मां द्विभुजा सरस्वतीदेवीनुं उभी मुद्रामां चित्र छे। पत्र १९१ मां मुनिसुव्रतस्वामिनी अधिष्ठात्री वैरोट्यादेवीनुं चित्र छे।

क्रमाङ्क २५८

मुनिसुव्रतस्वामिचरित्र पद्य पर्वत्रयात्मक पत्र २२१। **भा.** सं.। **क.** पद्मप्रभसूरि। **ग्रं.** ५५६८। **र. सं.** १२९४। **ले. सं.** १४ मी शताब्दी। **संह.** जीर्णप्राय। **द.** श्रेष्ठ। **लं. प.** ३१।×२॥

पत्र १–६, ९०–२२१ प्राचीन पत्र खोवाइ जवाथी लगभग ते ज समयमां कागळ उपर लखावीने मूकेलां छे। प्रति शुद्ध छे।

क्रमाङ्क २५९

नेमिनाहचरिउ पत्र ३०४। **भा.** अप.। **क.** बृहद्गच्छीय हरिभद्रसूरि। **ग्रं.** ८०३२। **र. सं.** १२१६। **ले. सं.** अनु. १३ मी शताब्दी उत्तरार्द्ध। **संह.** श्रेष्ठ। **द.** श्रेष्ठ। **लं. प.** २९॥×२।.।

पत्र ३०४ मां शोभन छे।

पहु अणंतरु हुयउ पासु पासाउ वि वीरजिणु, इंद्रभूइ अह तह सुहम्मु वि।
ता जंबूसामि अह पहवु तयणु गुरुगणु असंखु वि ।
अह कोडियगणि चंदकुलि, विउल वइरसाहाए । अइगच्छंतिहि अणुकमिण, बहुगणहरमालाए ॥
हुयउ ससहरहारनीहारकुंदुज्जलजसपसरभरियभुवण वडगच्छमंडणु ।

* इसमें 'श्रीदण्डछत्रपल्लीयता... श्रीदेवप्रभसूरि णैन' इस प्रकार का उल्लेख है जो छत्रपल्लीय गच्छ को ही सूचित करता है। ऐसा लगता है। – संपादक

१३. अयोध्यानगरीकल्पः ।

अउज्झाए एगट्ठिआइं जहा–**अउज्झा अवज्झा कोसला विणीया साकेयं इक्खागुभूमी रामपुरी कोसल** त्ति । एसा सिरि**उसभ-अजिअ-अभिनंदण-सुमइ-अणंत**जिणाणं[1] तहा नवमस्स सिरि**वीर**गणहरस्स **अयलभाउ**णो जम्मभूमी । रहुवंसुब्भवाणं **दसरह-राम-भरहाई**णं च रज्जट्ठाणं । **विमल-वाहणा**इसत्तकुलगरा इत्थ उप्पन्ना ।

उसभसामिणो रज्जाभिसेए मिहुणगेहिं भिसिणीपत्तेहिं उदयं घित्तुं पाएसु छूढं । तओ साहुविणीया पुरिस त्ति भणिअं सक्केण । तओ **विणीय** त्ति सा नयरी रूढा ।

जत्थ य महासईए **सीयाए** अप्पाणं सोहंतीए निअसीलबलेण अग्गी जलपूरीकओ । सो अ जलपूरो नयरिं बोलिंतो निअमाहप्पेण तीए चेव रक्खिओ ।

जा य **अड्ढभरह**वसुहागोलस्स मज्झभूआ सया, नवजोअणविच्छिण्णा बारसजोअणदीहा य ।

जत्थ **चक्केसरी** रयणमयायणट्ठिअपडिमा संघविग्घं हरेइ, **गोमुहजक्खो** अ ।

जत्थ **घग्घरदहो सरऊनईए** समं मिलित्ता **सग्गदुवारं** ति पसिद्धिमावन्नो ।

जीए उत्तरदिसाए बारसहिं जोअणेहिं **अट्ठावय**नगवरो जत्थ भगवं **आइगरो** सिद्धो । जत्थ य **भरहे-सरेण सीहनिसिज्जायणं** तिकोसुच्चं कारिअं । निय-नियवण्णपमाणसंठाणजुत्ताणि अ चउवीसजिणाण बिंबाइं ठावियाइं । तत्थ पुव्वदारे **उसभ-अजिआणं**; दाहिणद्दारे **संभवाईणं** चउण्हं; पच्छिमदुवारे **सुपासाईणं** अट्ठण्हं; उत्तरदुवारे **धम्माईणं** दसण्हं; थूभसयं च भाउआणं तेणेव कारिअं ।

जीए नयरीए वत्थव्वा जणा **अट्ठावय**उवच्चयासु कीलिंसु ।

जओ अ **सेरीसय**पुरे नवंगवित्तिकारसाहासमुब्भवेहिं सिरि**देविंदसूरी**हिं चत्तारि महाबिंबाइं दिव्वसत्तीए गयणमग्गेण आणीआइं ।

जत्थ अज्ज वि **नाभिरायस्स** मंदिरं । जत्थ य **पासनाह**वाडिया **सीयाकुंडं सहस्सधारं** च । पायारट्ठिओ अ **मत्तगयंद**[2]जक्खो । अज्ज वि जस्स अग्गे करिणो न संचरंति, संचरंति वा ता मरंति ।

गोपयराईणि अ अणेगाणि य लोइअतित्थाणि वट्टंति ।

एसा पुरी **अउज्झा सरऊ**जलसिच्च[3]माणगढभित्ती । जिणसमयसत्ततित्थीजत्तपवित्तिअजणा जयइ ॥ १ ॥

कहं पुण **देविंदसूरी**हिं चत्तारि बिंबाणि **अउज्झा**पुराओ आणीयाणि त्ति भण्णइ–**सेरीसय**नयरे विह-रंता आराहिअ**पउमावइ-धरणिंदा छत्तावल्ली**यसिरि**देविंदसूरिणो** उक्कुरुडिअपाए[4] ठाणे काउस्सग्गं करिंसु । एवं बहुवारं करिंते ते दट्ठूण सावएहिं पुच्छिअं–भयवं ! को विसेसो इत्थ काउस्सग्गकरणे ? । सूरीहिं भणियं–इत्थ पहाणफलही चिट्ठइ, जीसे **पासनाह**पडिमा कीरइ; सा य सन्निहियपाडिहेरा हवइ । तओ सावयवयणेणं **पउमावई-**आराहणत्थं उववासतिगं कयं गुरुणा । आगया भगवई । तीए आइट्ठं । जहा–**सोपारए** अन्धो सुत्तहारो चिट्ठइ । सो जइ इत्थ आगच्छइ अट्ठमभत्तं च करेइ, सूरिए अत्थमिए फलहिअं घडेउमाढवइ, अणुदिए पडिपुण्णं संपाडेइ, तओ निप्पज्जइ । तओ सावएहिं तदाहवणत्थं **सोपारए** पुरिसा पट्ठविआ । सो आगओ । तहेव घडिउमाढत्ता । **धरिणिन्द**धारिआ निप्पन्ना पडिमा । घडिन्तस्स सुत्तहारस्स पडिमाए हिअए मसो पाउब्भूओ । तमुविक्खिऊण उत्तरकाओ घडिओ । पुणो समारिंतेण मसो दिट्ठो । टङ्किआ वाहिआ । रुहिरं निस्सरिउमारद्धं । तओ सूरिहिं भणिअं–किमेयं तुमए कयं ? । एयंमि मसे अच्छन्ते एसा पडिमा अईवअब्भुअहेऊ सप्पभावा हुन्ता । तओ अङ्कु-

---

1 'जिणाणं' नास्ति C । 2 C D मइंद० । 3 C D जलाभिसिच्च० । 4 C ०प्पए ।

---

* इसमें देवेंद्रसूरिजी के लिए ''नवंगवित्तिकारसाहा समुब्भवेहिं'' तथा ''छत्रावल्लीय'' ऐसे दो विशेषण दिये हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि अभयदेवसूरि संतानीय और छत्रापल्लीयगच्छ एक है।

– संपादक

सव्वंग सारे च्चिय न अप्पवोच्छेयदच्छतुच्छफले। पत्तग्गसाउरहिए समंतओ निच्चसच्छाए ॥
न य अन्नेसिं गम्मे अकंटए निरवसाणवुड्ढिगुणे। तुंगमहीधरमुद्धाणुगे वि भुवि पावियपइट्ठो ॥
अच्चंतं सरले च्चिय अपुव्ववंसम्मि परिवहंतम्मि। जातो य वइरसामी महापभू परमपयगामी ॥
तस्साहाए निम्मलजसधवलो सिद्धिकामलोयाणं। सविसेसवंदणिज्जो य रोयणा थोरथवगो व्व ॥
कालेणं संभूओ भयवं सिरिवद्धमाणमुणिवसभो। निप्पडिमपसमलच्छीविच्छड्डाखंडभंडारो ॥
ववहारनिच्छयनय व्व दव्वभावत्थय व्व धम्मस्स। परमुन्नइजणगा तस्स दोण्णि सिस्सा समुप्पण्णा ॥
पढमो सिरिसूरिजिणेसरो त्ति सूरे व्व जम्मि उइयम्मि। होत्था पहावहारो दूरं तेयस्सिचक्कस्स ॥
अज्ज वि य जस्स हरहासहंसगोरं गुणाण पब्भारं। सुमरंता भव्वा उव्वहंति रोमंचमंगेसु ॥
बीओ उण विरइयनिउणपवरवागरणपमुहबहुसत्थो। नामेण बुद्धिसागरसूरि त्ति अहेसि जयपयडो ॥
तेसिं पयपंकउच्छंगसंगसंपत्तपरममाहप्पो। सिस्सो पढमो जिणचंदसूरिनामो समुप्पन्नो ॥४०॥
अन्नो य पुन्निमाससहरो व्व निव्ववियभव्वकुमुयवणो। सिरिअभयदेवसूरि त्ति पत्तकित्ती परं भुवणे ॥
जेण कुबोहमहारिउविहम्ममाणस्स नरवइस्सेव। सुयधम्मस्स दढत्तं निव्वत्तियमंगवित्तीहिं ॥
तस्सऽब्भत्थणवसओ सिरिजिणचंदेण मुणिवरेण इमा। मालागारेण व उच्चिणित्तु वरवयणकुसुमाइं ॥
मूलसुयकाणणाओ गुंथित्ता नियमइगुणेण दढं। विविहत्थसोरभभरा निम्मविया ऽऽराहणामाला ॥
एयं च समणमहुयरहिययरं अत्तणो सुहनिमित्तं। सव्वायरेण भव्वा विलासिणो इव निसेवंतु ॥
एसा य सुगुणमुणिजणपयप्पणामप्पवित्तभालस्स। सुपसिद्धसेट्ठिगोद्धणसुयविस्सुयजज्जणागस्स ॥
अंगुब्भवाण सुपसत्थतित्थजत्ताविहाणपयडाणं। निप्पडिमगुणज्जियकुमुयसच्छहातुच्छकित्तीणं ॥
जिणबिंबपइट्ठावणसुयलेहणपमुहधम्मकिच्चेहिं। अतुक्कासगदुक्कुहचित्तचमक्कारकारीणं ॥
जिणमयभावियबुद्धीण सिद्धवीराभिहाणसेट्ठीणं। साहेज्जेणं परमेण आयरेणं च निम्मविया ॥
एईए विरयणेण य जमज्जियं किं पि कुसलमम्हेहिं। पाविंतु तेण भव्वा जिणवयणाराहगं परमं ॥५०॥
छत्तावल्लिपुरीए जज्जयसुयपासणागभवणम्मि। विक्कमनिवकालाओ समइक्कंतेसु वरिसाण ॥
एक्कारससु सएसुं पणुवीसासमहिएसु निप्फत्ति। संपत्ता एसाऽऽराहण त्ति फुडपायडपयत्था ॥
लिहिया य इमा पढमम्मि पोत्थए विणयनयपहाणेण। सिस्सेणमसेसगुणालएण जिणदत्तगणिण त्ति ॥छ॥
तेवण्णब्भहियाइं गाहाणं इत्थ दस सहस्साइं। सव्वग्गं ठवियं निच्छिऊण सम्मोहमहणत्थं ॥छ॥ॐ॥छ॥

अंकतोपि ॥ छ ॥ सूर्वाग्रं गाथा १००५३ ॥ छ ॥॥ इति श्रीजिनचंद्रसूरिकृता तद्विनेयश्रीप्रसन्नचंद्राचार्यसमभ्यर्थितगुणचंद्रगणिप्रतिसंस्कृता जिनवल्लभगणिना च संशोधिता संवेगरंगशालाभिधानाराधना समाप्ता ॥ छ ॥ ॐ ॥ छ॥ मंगलं महाश्रीः ॥५०॥ संवत् १२०७ वर्षे ज्येष्ठ शुदि १४ गुरौ अद्येह श्रीवटपद्रके दंड० श्रीवोसरिप्रतिपत्तौ संवेगरंगशालापुस्तकं लिखितमिति ॥छ॥

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः । दोषाः प्रयांतु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥छ॥

५० ॥ जन्मदिनचरणभाराक्रान्तशिरःसुरगिरेरिवात्तेन। रुक्मरुचिसंचयेन स्फुरत्तनुर्जयति जिनवीरः ॥१॥
सद्राजहंसचक्कोडाक्रमवति विलासिदलकमले। श्रीमत्यणहिल्पाटकनगरे सरसीव कृतवासः ॥२॥

श्रीभिल्लमालगुरुगोत्रसमुद्भूति यश्चकेऽभिरामगुणसम्पदुपेतमूर्त्तिः ।
ताराधिनाथकमनीययशाः स धीरः श्रीजांबवानिति मतो भुवि ठक्कुरोऽभूत् ॥३॥

भद्रः प्रकृत्यैव यथाऽन्यनागः सदाऽभवत् सत्कृतवीतरागः ।
कटप्रविस्तारितभूरिदानस्तन्नन्दनः ठक्कुरवर्धमानः ॥४॥

तस्य प्राजनि सत्पत्नी नदीनाथप्रियागमा । यशोदेवीति गंगेव सुमनोहरचेष्टिता ॥५॥

✻ इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से 10053 श्लोक प्रमाण का यह संवेगरंगशाला ग्रंथ है। ऐसा बताया है, अतः उसके 18000 श्लोक प्रमाण होने की मान्यता स्पष्ट रूप से बाधित होती है।

✻ इसमें आ. जिनचंद्रसूरिजी द्वारा संवेगरंगशाला ग्रंथ की पूर्णाहूति छत्रापल्ली पूरी में की गई थी ऐसा उल्लेख है जो बताता है कि जिनचंद्रसूरिजी का छत्रापल्ली पुरी से कुछ विशेष संबंध रहा होगा। इसीलिए उनके अनुयायी 'छत्रापल्लीय' कहलाये होंगे। – संपादक

मुक्खत्तं कुकलत्तं कुजाइजम्मो कुरूव-दीणत्तं । अन्नभवे पुरिसाणं न हुंति पहुपडिमपणयाणं ॥ ६३ ॥
अडसट्ठितित्थजत्ताकए भमइ कह वि मोहिओ लोओ । तेहिं तोऽणंतगुणं फलमप्पिते जिणे पासे ॥ ६४ ॥
एगेण वि कुसुमेणं जो पडिमं महइ तिव्वभावो सो । भूवालिमउलिमउलिअचरणो चक्काहिवो होइ* ॥ ६५ ॥
जे अट्ठविहं पूअं कुणंति पडिमाइ परमभत्तीए । तेसिं देविंदाईपयाइं[1] करपंकयत्थाइं* ॥ ६६ ॥
जो वरकिरीडकुंडलकेयूराईणि[2] कुणइ देवस्स । तिहुअणमउडो होऊण सो लहुं लहइ सिवसुक्खं* ॥ ६७ ॥
तिहुअणचूडारयणं जणनयणामयसलागिगा[3] एसा । जेहिं न दिट्ठा पडिमा निरत्थयं ताण मणुअत्तं* ॥ ६८ ॥
सिरिसंघदास[4]मुणिणा लहुकप्पो निम्मिओ अ पडिमाए । गुरुकप्पाओ अ मया संबंधलवेसमुद्धरिओ ॥ ६९ ॥
जो पढइ सुणइ चिंतइ एयं कप्पं स कप्पवासीसु । नाहो होऊण भवे सत्तमए पावए सिद्धिं ॥ ७० ॥
गिहचेइअंमि जो पुण पुत्थयलिहिअं पि कप्पमच्चेइ । सो नारयतिरिएसुं निअमा नो जाइ चिरबोही[5] ॥ ७१ ॥
हरिजलहिजलणगयगयचोरोरगगहनिवारियारिपेयाणं । वेयालसाइणीणं भयाइं नासंति दिणि[6] भणणे ॥ ७२ ॥
भव्वाण पुन्नसोहा पाणीआइन्नहिअयठाणं पि । कप्पो कप्पतरू इव विलसंतो वंछिअं देउ* ॥ ७३ ॥
जावय मेरुपईवो महिमल्लिओ समुद्दजलतिल्लो । उज्जोअंतो चिट्ठइ नरखित्तं ता जयउ[7] कप्पो ॥ ७४ ॥

॥ इति श्रीपार्श्वनाथस्य कल्पसंक्षेपः[†] ॥ ७ ॥

[8]दढवाहिविहुरिअंगा अणसणगहणत्थमाहविअसंघा । नवसुत्तकुक्कुडि[9]विमोहणाय भणिआ निसि सुरीए ॥ १ ॥
दीविअहत्थअसत्ती नवंगविवरणकहाचमुक्करिआ । थंभणयपासवंदणउवइट्ठारोग्गविहिणो अ ॥ २ ॥
संभाणयाउ चलिआ[9] धवलक्कपुरा परं[10] चरणचारी । थंभणपुरंमि पत्ता सेढीतडजरपलासवणे ॥ ३ ॥
गोपयझरणुवलक्खिअ भुवि 'जयतिहुअण' थवद्धपच्चक्खे । पासे पूरिअथवणा गोविअसकलंतवित्तदुगा ॥ ४ ॥
संघकराविअभवणे गयरोगा ठविअ पासपहुपडिमा । सिरिअभयदेवसूरी विजयंतु नवंगवित्तिकरा ॥ ५ ॥

जन्माग्रेऽपि[11] चतुःसहस्रशरदो देवालये योऽर्चितः
स्वामी वासववासुदेववरुणैः स्वर्वार्द्धिमध्ये ततः ।
कान्त्यामिभ्यधनेश्वरेण महता नागार्जुनेनार्चितः
पायात् स्तम्भनके पुरे स भवतः श्रीपार्श्वनाथो जिनः ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीस्तम्भनककल्पः ॥ ग्रं० १०० (प्रत्यन्तरे १११)

---

* इसमें अभयदेवसूरिजी को केवल नवांगीटीकाकार के रूप में बताया है 'खरतरगच्छीय' के रूप में नहीं। – संपादक

२२. कन्यानयनीयमहावीरप्रतिमाकल्पः ।

पणमिय अमियगुणगणं[1] सुरगिरिधीरं जिणं **महावीरं** । **कण्णाणयपुर**ठिअतप्पडिमाकप्पं किमवि वुच्छं ॥ १ ॥

चोलदेसावयंसे **कण्णाणयनयरे** **विक्कमपुर**वत्थव्वपहु**जिणवइसूरि**चुल्लपिउसाहु**माणदेव**[2]काराविया[3] **बारहसयतित्तीसे विक्कमवरिसे** (१२३३) आसाढसुद्धदसमीगुरुदिवसे सिरि**जिणवइसूरी**हिं अम्हेच्चय पुव्वायरिएहिं पइट्ठिया मम्माणसेलसमुग्गयजोईसरो[4]वलघडिया तेवीसपव्वपरिमाणा नहसुत्तिलग्गणे वि घंट व्व सद्दं कुणंती सिरि**महावीर**पडिमा [5]सुमिणयाएसेण अनकवालाभिहाणपुढविधाउ[6]विसेससंफासेणं सन्निहियपाडिहेरा सावयसंघेण चिरं पूइया । जाव **बारहसयअडयाले** (१२४८) **विक्कमाइच्चसंवच्छरे चाहुयाण**कुलपईवे सिरि**पुहविराय**नरिंदे सुरत्ताण **साहवदीणे**ण निहणं नीए रज्जपहाणेण परमसावएण सिट्ठि**रामदेवे**ण सावयसंघस्स लेहो पेसिओ, जहा–**तुरुक्क**रज्जं संजायं । सिरि**महावीर**पडिमा पच्छन्नं[7] धारियव्वा[8] । तओ सावएहिं **दाहिम**[9]-कुलमंडण**कयंवास**मंडलियनामंकिए **कयंवासत्थले**[10] विउलवालुआपूरे ठाविया । [[†]ताव तत्थ ठिया] जाव **तेरहसयइक्कारसे** (१३११) **विक्कमवरिसे** संजाए अइदारुणे दुब्भिक्खे अणिव्वहंतो **जोजओ** नाम[11] सुत्तहारो जीवियानिमित्तं सुभिक्खदेसं पइ सकुडुंबो[12] चलिओ **कण्णाणया**ओ । पढमपयाणयं थोवं कायव्वं ति कलिऊण [13]**कयंवासत्थले** चेव तं रयणिं वुत्थो । अड्ढरत्ते देवयाए तस्स सुमिणं दिण्णं, जहा–इत्थ तुमं जत्थ सुत्तोसि तस्स हिट्ठे भगवओ **महावीरस्स** पडिमा एत्तिएसु हत्थेसु चिट्ठइ । तुमए वि देसंतरे न गंतव्वं । भविस्सइ इत्थेव ते निव्वाहु त्ति । तेण ससंभमं पडिबुद्धेण तं ठाणं पुत्ताईहिं खणाविअं । जाव दिट्ठा सा पडिमा । तओ हिट्ठ[14]तुट्ठेण नयरं गंतूण सावयसंघस्स निवेइयं । सावएहिं महूसवपुरस्सरं परमेसरो पवेसिऊण ठाविओ चेईहरे । पूइज्जए तिकालं । अणेगवारं तुरुक्कउवद्दवाओ मुक्को । तस्स य सुत्तहारस्स सावएहिं वित्तिनिव्वाहो कारिओ । पडिमाए परिगरो य गवेसिओ तेहिं न लद्धो । कत्थवि थलपरिसरे चिट्ठइ । तत्थ य पसत्थिसंवच्छराइ लिहिअं संभाविज्जइ । अन्नया [15]ण्हवणे संवुत्ते भयवओ सरीरे पसेओ पसरंतो दिट्ठो । लूहिज्जमाणो वि जाव न विरमइ ताव नायं सड्ढेहिं वियड्ढेहिं[16] जहा को वि उवद्दवो अवस्सं इत्थ होही । जाव पभाए **जद्दुअरायउत्ताणं** धाडी समागया । नयरं सव्वओ विद्धत्थं । एवं पायडपभावो सामी तावपूईओ जाव [0]**तेरहसयपंचासीओ** (१३८५) संवच्छरो । तम्मि वरिसे आगएणं **आसीनयर**सिकदारेणं[17] [18]**अल्लविअ**वंससं[0]जाएणं घोरपरिणामेणं सावया साहुणो अ बंदीए काउं विडंबिया । सिरि**पासनाह**बिंबं सेलमयं भग्गं । सा पुण सिरि**महावीर**पडिमा अखंडिआ चेव सगडमारोवित्ता **ढिल्लीपुर**माणेऊण [19]**तुगुलकाबाद**ट्ठिअसुरत्ताण-भंडारे ठाविया । सिरिसुरत्ताणो किरि आगओ संतो जं आइसिहिइ तं करिस्सामु त्ति ठिया पन्नरसमासे तुरुक्कबंदीए । जाव समागओ कालक्कमेण **देवगिरि**नयराओ **जोगिणिपुरं** सिरि**महम्मद**सुरत्ताणो ।

अन्नया बहिया जणवयविहारं[20] विहरित्ता संपत्ता[21] **ढिल्ली**साहापुरे खरयरगच्छालंकारसिरि**जिणसिंहसूरि**-पट्टपइट्ठिया सिरि**जिणप्पह**सूरिणो । कमेण महारासयभाए पंडिअगुट्ठीए पत्थुआए, को नाम विसिट्ठयरो पंडिओ त्ति रायराएण पुट्ठे[22] जोइसिअ**धाराधरे**ण तेसिं गुणत्थुई पारद्धा । तओ महाराएणं तं चेव पेसिअ सबहुमाणं आणाविआ पोससुद्धबीयाए संझाए सूरिणो[23] । भिट्टिओ तेहिं महारायाहिराओ । अच्चासन्ने उववेसिअ कुसलाइवत्तं पुच्छिअ आयण्णिओ अहिणवकव्वआसीवाओ । चिरं अद्धरत्तं जाव एगंते गुट्ठी कया । तत्थेव रत्तिं[24] च साविता पभाए पुणो

---

* इसमें 'अम्हेच्चय पुव्वायहिएहिं' में जिनपतिसूरिजी को अपने पूर्वाचार्य के रूप में बताये हैं। जबकि अभयदेवसूरिजी के लिए ऐसा उल्लेख नहीं किया है तथा 'खरतरगच्छालंकार... सिरिजिणप्पहसूरिणो' इस उल्लेख से स्वयं को स्पष्ट खरतरगच्छीय बताया है जबकि अभयदेवसूरिजी को खरतरगच्छीय नहीं बताया है। – संपादक

५९. स्तम्भनककल्पशिलोञ्छः ।

थंभणयकप्पमज्झे जं संगहिअं न वित्थरभएण । तं सिरि**जिणपह**सूरी सिलुंछमिव कं पि[1] जंपेइ ॥ १ ॥

ढंकपव्वए रणसीहरायउत्तस्स **भोपल**नामिअं धूअं रूवलावण्णसंपन्नं दट्ठूण जायाणुरायस्स तं सेवमाणस्स **वासुगिणो** पुत्तो **नागज्जुणो** नाम जाओ। सो अ जणएण पुत्तसिणेहमोहिअमणेण सव्वासिं महोसहीणं फलाइं मूलाइं दलाइं च भुंजाविओ। तप्पभावेण सो महासिद्धीहिं अलंकिओ **'सिद्धपुरिसु'**त्ति विक्खाओ पुहविं विअरंतो **सालाहणरन्नो** कलागुरू जाओ। सो अ गयणगामिणिविज्जाअज्झयणत्थं **पालित्तय**पुरे सिरि**पालित्तायरिए** सेवेइ। अन्नया भोयणावसरे पायप्पलेवबलेण गयणे उप्पइए पासइ। **अट्ठावया**इतित्थाणि नमंसिअ सट्ठाणमुवागयाण तेसिं पाए पक्खालिऊण सत्तुत्तरसयमहोसहीणं आसायण-वण्ण-गंधाईहिं नामाइं निच्छइऊण गुरूवएसं विणावि पायलेवं काउं कुक्कुडप्पोउ व उप्पयंतो अवडतडे निवडिओ । वणजज्जरिअंगो गुरूहिं पुट्ठो—किमेअं ति? । तेण जहट्ठिए वुत्ते तस्स कोसल्लचमक्किअचित्ता आयरिआ तस्स सिरे पउमहत्थं दाउं भणंति—सट्ठिअतंदुलोदगेण ताणि ओसहाणि वट्टित्ता[2] पायलेवं काउं गयणे वच्चिज्जासि त्ति । तओ तं सिद्धिं पाविअ परितुट्ठो ।

पुणो कयावि गुरुमुहाउ सुणेइ, जहा—सिरि**पासनाह**पुराओ साहिज्जंतो सव्वइत्थीलक्खणोवलक्खिअमहासईविलयाए अ मद्दिज्जंतो रसो कोडिवेही हवइ। तं सोऊण सो **पासनाह**पडिमं अन्नेसिउमारद्धो । इओ अ **बारवईए समुद्दविजय**दसारेण सिरि**नेमिनाह**मुहाओ महाइसयं नाऊण रयणमई सिरि**पासनाह**पडिमा पासायंमि ठविता पूईआ[1] । **बारवई**दाहाणंतरं समुद्देण पाविआ सा पडिमा तहेव समुद्दमज्झे ठिआ। कालेण **कंती**वासिणो **धणवइ**नामस्स संजत्तिअस्स जाणवत्तं देवयाइसयाओ खलिअं । इत्थ जिणबिंबं चिट्ठइ त्ति दिव्ववायाए निच्छिअं। नाविए तत्थ पक्खिविअ सत्तहिं आमतंतूहिं संदाणिअ उद्धरिआ पडिमा। निअनयरीए नेऊण पासायंमि ठाविआ। चिंताइरित्तलाभपहिट्ठेण पूइज्जइ पइदिणं। तओ सव्वाइसाइ तं बिंबं नाऊण **नागज्जुणो** सिद्धरससिद्धिनिमित्तं अवहरिऊण **सेडीनईए** तडे ठाविंसु। तस्स पुरओ रससाहणत्थं सिरि**सालवाहणरन्नो चंदलेहा**भिहाणिं महासइं देविं सिद्धवंतरसन्निज्झेण तत्थ आणाविअ पइनिसं रसमद्दणं कारेइ। एवं तत्थ भुज्जो भुज्जो गयागएणं तीए बंधु त्ति पडिवन्नो। सा तेसिं ओसहाणं मद्दणकारणं पुच्छेइ। सो अ कोडिरसवेहवुत्तंतं जहट्ठिअं कहेइ। अन्नया दुण्हं निअपुत्ताणं तीए निवेइअं—जहा एअस्स रससिद्धी होहिइ त्ति। ते रसलुद्धा निअरज्जं मुत्तुं **नागज्जुण**पासमागया । कइअवेणं तं रसं घित्तुमणा पच्छन्नवेसा, जत्थ **नागज्जुणो** भुंजइ तत्थ रससिद्धिवुत्तं पुच्छंति। सा य तज्जाणणत्थं तद्दट्ठं सलूणं रसवइं साहेइ। छम्मासे अइक्कंते खार त्ति दूसिआ तेण रसवई । तओ इंगिएहिं रसं सिद्धं नाऊण पुत्ताण निवेइअं तीए। तेहिं च परंपराए नायं जहा—**वासुगिणा** एअस्स दब्भंकुराओ मच्चू कहिओ त्ति। तेणेव सत्थेण **नागज्जुणो** निहओ। जत्थ य रसो थंभिओ तत्थ **थंभणयं** नाम नयरं संजायं। तओ कालंतरेण तं बिंबं वयणमित्तवज्जं भूमिअंतरिअंगं संवुत्तं।

इओ अ **चंदकुले** सिरि**वद्धमाणसूरि**-सीस**जिणेसरसूरीणं** सीसो सिरि**अभयदेवसूरी गुज्जरत्ताए** [3]**संभायण**ठाणे विहरिओ। तत्थ महावाहिवसेण अईसाराइरोगे जाए पच्चासन्ननगर-गामेहिंतो पक्खिअपडिक्कमणत्थमागंतुकामो विसेसेण आहूओ मिच्छदुक्कडदाणत्थं सव्वोवि सावयसंघो। तेरसीअड्ढरत्ते अ भणिआ पहुणो सासणदेवयाए—भयवं! जग्गह सुअह वा?। तओ मंदसरेणं वुत्तं पहुणा—कओ मे निद्दा। देवीए भणिअं—एआओ नवसुत्तकुक्कुडीओ उम्मोहेसु। पहुणा भणिअं—न सक्केमि। तीए भणिअं—कहं न सक्केसि?। अज्जवि वीरतित्थं चिरं पभावेसि, नवंगवित्तीओ अ काहिसि। भयवया भणिअं—कहमेवंविहसरीरो काहामि?। देवयाए वुत्तं—**थंभणयपुरे सेढीनई**उवकंठे

* जिनप्रभसूरिजी में पीछे स्वयं को खरतरगच्छीय बताया जबकि यहाँ पर अभयदेवसूरिजी को 'चंदकुले' इस उल्लेख से चान्द्रकुलीन ही बताया है। खरतरगच्छीय नहीं। – संपादक

अंतिम निष्कर्ष एवं हार्दिक निवेदन...

इस प्रकार ऐतिहासिक प्रमाणों से जब जिनेश्वरसूरिजी की खरतर बिरुद मिलने की बात ही सिद्ध नहीं होती है, तब अभयदेवसूरिजी को खरतरगच्छीय मानना भी गलत सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न उठता है कि उनका गच्छ कौन सा था?

उसका सीधा उत्तर यह है कि अभयदेवसूरिजी स्वयं अपने ग्रंथों में खुद को चान्द्रकुल का बताते हैं, अतः **'अभयदेवसूरिजी चान्द्रकुल के थे' यह ही अटल ऐतिहासिक सत्य है एवं उनकी शिष्य परंपरा अभयदेवसूरि संतानीय अथवा छत्रापल्लीय के नाम से पहचानी जाती थी जो प्रायः 15वीं शताब्दी तक ही चली थी।**

इसी तरह अभयदेवसूरिजी के वडील गुरुबंधु, **संवेगरंगशाला के कर्ता आ. जिनचंद्रसूरिजी भी खरतरगच्छीय नहीं परंतु चान्द्रकुलीन सिद्ध होते हैं।**

खरतरगच्छ में युगप्रधान **जिनदत्तसूरि,** मणिधारी **जिनचंद्रसूरि,** आ. **जिनकुशलसूरि,** महम्मद तुघलक प्रतिबोधक आ. **जिनप्रभसूरिजी,** युगप्रधान आ. **जिनचंद्रसूरिजी,** विद्वद्वर्य **समयसुन्दर गणि**, अध्यात्मयोगी महोपाध्याय **देवचंद्रजी** आदि अनेक महापुरुष हुए हैं। उन्होंने जो महती शासन-सेवा की थी उसकी अनुमोदना सभी को करनी ही चाहिए एवं उसका श्रेय 'खरतरगच्छ लेवें, उसमें कोई हर्ज नही है। परन्तु **संवेगरंगशाला के कर्ता आ. जिनचंद्रसूरिजी एवं नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरिजी चान्द्रकुल में हुए थे, अतः उसका श्रेय समस्त चान्द्रकुलीन गच्छों को मिलना चाहिए, नहीं कि केवल खरतरगच्छ को ही।** जैसे उमास्वातिजी, वज्रस्वामीजी, देवर्द्धिगणिजी, हरिभद्रसूरिजी आदि महापुरुष सभी के लिए समान है, उसी तरह अभयदेवसूरिजी चान्द्रकुलीन महापुरुष थे। अतः समस्त चान्द्रकुलीन गच्छों के कहलाने चाहिए।

गच्छ का स्वाभिमान होना अनुचित नहीं है, परंतु उसके साथ में सत्य का पक्षपात होना भी जरुरी है, अन्यथा वह गच्छ राग में परिवर्तित हो सकता है। मध्यस्थभाव से सत्यान्वेषण करके स्व-पर गच्छ के प्रति बहुमान, प्रेम रखने से ही तात्त्विक सौहार्द का वातावरण निर्मित किया जा सकता है। इस दिशा में हम सभी आगे बढ़ें, ऐसी प्रभु से प्रार्थना....

परिशिष्ट विभाग

परिशिष्ट–1

दुर्लभराजा का समय निर्णय

पाटण नगर वनराज चावड़ा ने वि. सं. 802 में बसाया था, बाद में वहाँ पर कौन–कौन राजा ने कितने–कितने वर्ष राज किया था। उसकी रूपपेखा इस प्रकार हैः–

चावड़ा वंश के राजा

1.	वनराज चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 802 से 862 तक	कुल 60
2.	योगराज चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 862 से 897 तक	कुल 35
3.	खेमराज चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 897 से 922 तक	कुल 25
4.	भूवड़ चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 922 से 951 तक	कुल 29
5.	वैरीसिंह चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 951 से 976 तक	कुल 25
6.	रत्नादित्य चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 976 से 991 तक	कुल 15
7.	सामन्तसिंह चावड़ा,	राज्य काल वि. सं. 991 से 998 तक	कुल 7

इस तरह चावड़ा वंश के राजाओं ने 196 वर्ष राज्य किया, अनन्तर सोलंकी वंश का राज हुआ वह क्रम इस प्रकार हैः–

सोलंकी वंश के राजा

8.	मूलराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 998 से 1053 तक	कुल 55 वर्ष
9.	चामुंडराय सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1053 से 1066 तक	कुल 13 वर्ष
10.	वल्लभराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1066 से 1066 ।। तक	कुल 6 मास
11.	दुर्लभराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1066।। से 1078 तक	कुल 11½ वर्ष
12.	भीमराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1078 से 1120 तक	कुल 12 वर्ष
13.	करणराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1120 से 1150 तक	कुल 30 वर्ष
14.	जयसिंह सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1150 से 1199 तक	कुल 49 वर्ष
15.	कुमारपाल सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1199 से 1230 तक	कुल 31 वर्ष
16.	अजयपाल सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1230 से 1266 तक	कुल 36 वर्ष
17.	मूलराज सोलंकी	राज्यकाल वि. सं. 1266 से 1274 तक	कुल 8 वर्ष

सोलंकी वंश के राजाओं ने 276 वर्ष तक राज्य किया, बाद में पाटण का राज बाघल-वंश के हस्तगत हुआ। उन्होंने विक्रम सं. 1358 तक कुल 84 वर्ष राज्य किया, फिर पाटण की प्रभुता आर्यों के हाथों से मुसलमानों के अधिकार में चली गई।

1. इसी प्रकार **पं. गौरीशंकरजी ओझा** ने स्वरचित 'सिरोही राज के इतिहास' में लिखा है कि पाटण में राजा **'दुर्लभ का राज वि. सं. 1066 से 1078 तक रहा'** बाद में राजा भीम देव पाटण का राजा हुआ।
2. पं. विश्वश्वरनाथ रेउ ने 'भारतवर्ष का प्राचीन राजवंश' नामक किताब में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज 1066 से 1078 तक रहा।
3. गुर्जरवंश भूपावली में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. 1078 तक रहा।
4. आचार्य मेरुतुंग रचित 'प्रबन्ध चिन्तामणि' नामक ग्रंथ में भी लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. 1066 से 1078 तक रहा।

इत्यादि इस विषय में अनेक प्रमाण विद्यमान हैं पर ग्रंथ बढ़ जाने के भय से नमूने के तौर पर उपरोक्त प्रमाण लिख दिए हैं, **इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि पाटण में दुर्लभ का राज वि.सं. 1066 से 1078 तक ही रहा था। तब राजा दुर्लभ की राजसभा में वि. सं. 1080 में जिनेश्वरसूरिजी का शास्त्रार्थ कैसे हुआ होगा?**

परिशिष्ट–2
प्रभावक चरित्र का उल्लेख

प्रभाचंद्रसूरिजी द्वारा रचित **'प्रभावक चरित्र' (सं. 1334)** एक ऐतिहासिक ग्रंथ है, जिसे सभी गच्छ प्रामाणिक मानते हैं।उसमें दिये गये 'अभयदेवसूरि प्रबन्ध' में जिनेश्वरसूरिजी का भी वर्णन दिया है। उसमें उनका पाटण जाना तथा कुशलता पूर्वक वसतिवास वाले साधुओं के विहार की अनुमति प्राप्त करने का विस्तृत वर्णन भी दिया है, परंतु **उसमें न तो 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का उल्लेख है और न ही राजसभा में किसी वाद के होने का निर्देश है।** उसमें केवल सुविहित साधुओं के विहार की अनुमति प्राप्ति का ही उल्लेख है।

पूरा संदर्भ ग्रंथ इस प्रकार है :–

ज्ञात्वौचित्यं च सूरित्वे, स्थापितौ गुरुभिश्च तौ।
शुद्धवासो हि सौरभ्य, वासंसमनुगच्छति।।42।।

जिनेश्वरस्ततःसूरिरपरोबुद्धिसागरः।
नामभ्यां विश्रुतौ पूज्यै र्विहारेऽनुमतौ तदा।।43।।

ददे शिक्षेति तैः, श्रीमत्पत्तने **चैत्यसूरिभिः**।
विघ्नं सुविहितानां, स्यात्तत्रावस्थानवारणात्।।44।।

युवाभ्यामपनेतव्यं, शक्त्या बुद्ध्या च तत्किल।
यदिदानींतने काले, नास्ति प्राज्ञो भवत्समः।।45।।

अनुशास्तिं प्रतीच्छाव, इत्युक्त्वा गूर्जरावनौ।
विहरन्तौ शनैः, **श्रीमत्पत्तनं** प्रापतुर्मुदा।।46।।

सद्गीतार्थपरीवारौ, **तत्र भ्रान्तौ गृहे गृहे**।
विशुद्धोपाश्रयालाभाद्वाचं, सस्मरतुर्गुरोः।।47।।

श्रीमान् दुर्लभराजाख्यस्तत्र चासीद्विशांपतिः।
गीष्पतेरप्युपाध्यायो, नीतिविक्रमशिक्षणे(णात्)।।48।।

श्री सोमेश्वरदेवाख्यस्तत्र, चासीत्पुरोहितः।
तद्गेहे जग्मतुर्युग्मरुपौ, सूर्यसुताविव।।49।।

तद्द्वारे चक्रतुर्वेदोच्चारं, संकेतसंयुतौ।

तीर्थं सत्यापयन्तौ च, ब्राह्मं पैत्र्यंच दैवतम्।।50।।

चतुर्वेदीरहस्यानि, सारिणीशुद्धिपूर्वकम्।
व्याकुर्वन्तौ सशुश्राव, देवतावसरे ततः।।51।।

तदूध्वानध्याननिर्मग्नचेताःस्तम्भितवत्तदा।
समग्रेन्द्रियचैतन्यं, श्रुत्योरिव स नीतवान्।।52।।

ततो भक्त्या निजं, बन्धुमाप्यायवचनामृतैः।
आह्वानाय तयोः, प्रैषीत्प्रेक्षाप्रेक्षी द्विजेश्वरः।।53।।

तौ च दृष्ट्वाऽन्तरायातौ, दध्यावम्भोजभूः किमु?।
द्विधाभूयाद (?) आदत्त, दर्शनंशस्यदर्शनम्।।54।।

हित्वाभद्रासनादीनि, तद्दत्तान्यासनानि तौ।
समुपाविशतां शुद्धस्वकम्बलनिषद्ययोः।।55।।

वेदोपनिषदां जैनश्रुत, तत्त्वगिराँतथा।
वाग्भिः साम्यं प्रकाश्यैतावभ्यधत्तां तदाशिषम्।।56।।

तथाहि-''अपाणिपादोह्यमनोग्रहीता।
पश्यत्यचक्षुःसशृणोत्यकर्णः।।
स वेत्ति विश्वं, न हि तस्यवेत्ता।
शिवो ह्यरूपी स जिनोऽवताद्वः।।57।।

ऊचतुश्चानयोःसम्यगवगम्यार्थसंग्रहम्।
दययाऽभ्यधिकंजैनं, तत्रावामाद्रियावहे।।58।।

युवामवस्थितौकुत्रेत्युक्ते, तेनोचतुश्च तौ।
न कुत्रापि स्थितिश्चैत्यवासिभ्यो लभ्यते यतः।।59।।

चन्द्रशालां निजां चन्द्रज्योत्सनानिर्मलमानसः।
स तयोरार्प्पयत्तत्र, तस्थतुस्सपरिच्छदौ।।60।।

द्वाचत्वारिंशताभिक्षा, दोषैर्मुक्तमलोलुपैः।
नवकोटिविशुद्धंचायातं, भैक्ष्यमभुञ्जताम्।।61।।

मध्याह्नियाज्ञिकस्मार्त्त, दीक्षितानग्रिहोत्रिणः।
आहूय दर्शितौ तत्र, निर्व्यूढौ तत्परीक्षया।।62।।

यावद्विद्याविनोदोऽयं, विरञ्चेरिव पर्षदि।
वर्त्तते तावदाजग्मुर्नियुक्ताश्चैत्यमानुषाः।।63।।

ऊचुश्च ते झटित्येव, गम्यतांनगराद्बहिः।
अस्मिन्न लभ्यते स्थातुं, चैत्यबाह्यसिताम्बरैः।।64।।

पुरोधाःप्राह निर्णेयमिदं भूपसभान्तरे।
इति गत्वा निजेशानमिदमाख्यातभाषितम्।।65।।

इत्याख्याते च तैः सर्वैःसमुदायेन भूपतिः।
वीक्षितःप्रातरायासीत्तत्र, सौवस्तिकोऽपि सः।।66।।

व्याजहाराथ देवास्मद्गृहेजैनमुनी उभौ।
स्वपक्षेस्थानमप्राप्नुवन्तौ, संप्रापतुस्ततः।।67।।

मया च गुणगृह्यत्वात्, स्थापितावाश्रये निजे।
भट्टपुत्राअमीभिर्मे, ग्रहिताश्चैत्यपक्षिभिः।।68।।

अत्रादिशत मे क्षूणं, दण्डं वाऽत्र यथार्हतम्।
श्रुत्वेत्याह स्मितं कृत्वा, भूपालः समदर्शनः।।69।।

मत्पुरे गुणिनोऽकस्माद्देशान्तरत आगताः।
वसन्तः केन वार्यन्ते?, को दोषस्तत्र दृश्यते?।।70।।

अनुयुक्ताश्च ते चैवं, प्राहुः शृणु महीपते!।
पुरा श्रीवनराजाऽभूत्, चापोत्कटवरान्वयः।।71।।

स बाल्ये वर्द्धितः श्रीमद्देवचन्द्रेण सूरिणा।
नागेन्द्रगच्छभूद्धारप्राग्वराहोपमास्पृशा।।72।।

पंचासराभिधस्थानस्थितचैत्यनिवासिना।
पुरं स च निवेश्येदमत्र, राज्यं दधौ नवम्।।73।।

वनराजविहारंच, तत्रास्थापयत प्रभुं।
कृतज्ञत्वादसौ तेषां, गुरुणामर्हणं व्यधात्।।74।।

व्यवस्था तत्र चाकारि, सङ्घेन नृपसाक्षिकम्।
संप्रदायविभेदेन, लाघवं न यथा भवेत्।।75।।

चैत्यगच्छयतिव्रातसम्मतो वसतान्मुनिः।

नगरे मुनिभिर्नात्र, वस्तव्यं तदसम्मतैः।।76।।

राज्ञां व्यवस्था पूर्वेषां, पाल्या पाश्चात्यभूमिपैः।
यदादिशसि तत्कार्य्यं, राजन्नेवं स्थिते सति।।77।।

राजा प्राह समाचारं, प्राग्भूपानां वयं दृढ़म्।
पालयामो गुणवतां, पूजांतूल्लङ्घयेम न।।78।।

भवादृशां सदाचारनिष्ठानामाशिषा नृपाः।
एधंते युष्मदीयं तद्राज्यं नात्रास्तिसंशयः।।79।।

''उपरोधेन''नो यूयममीषां वसनं पुरे।
अनुमन्यध्वमेवं च, श्रुत्वा तेऽत्र तदादधुः।।80।।

सौवस्तिकस्ततःप्राह, स्वामिन्नेषामवस्थितौ।
भूमिः काप्याश्रयस्यार्थं, श्रीमुखेन प्रदीयताम्।।81।।

तदा समाययौ तत्र, शैवदर्शनिवासवः।
ज्ञानदेवाभिधःक्रूरसमुद्रविरुदार्हतः।।82।।

अभ्युत्थाय समभ्यर्च्य, निविष्टं निज आसने।
राजा व्यजिज्ञपत्किंचिदथ (द्य प्र.) विज्ञप्यते प्रभो!।।83।।

प्राप्ता जैनर्षयस्तेषामर्प्पयध्वमुपाश्रयम्।
इत्याकर्ण्य तपस्वीन्द्रः, प्राह प्रहसिताननः।।84।।

गुणिनामर्चनां यूयं, कुरुध्वं विधुतैनसम्।
सोऽस्माकमुपदेशानां, फलपाकः श्रियां निधिः।।85।।

शिव एव जिनो, बाह्यत्यागात्परपदंस्थितः।
दर्शनेषु विभेदोहि, चिह्नं मिथ्यामतेरिदम्।।86।।

निस्तुषव्रीहिहट्टानां, मध्येऽत्र (त्रि प्र.) पुरुषाश्रिता।
भूमिः पुरोधसा ग्राह्योपाश्रयाय यथारुचि।।87।।

विघ्नः स्वपरपक्षेभ्यो, निषेध्यःसकलो मया।
द्विजस्तच्च प्रतिश्रुत्य, तदाश्रयमकारयत्।।88।।

ततःप्रभृति संजज्ञे, वसतीनां परम्परा।
महद्भिः स्थापितं वृद्धिमश्नुते नात्र संशयः।।89।।

श्रीबुद्धिसागरसूरिश्चक्रे व्याकरणं नवम्।
सहस्राष्टकमानं तच्छ्रीबुद्धिसागराभिधम्।।90।।

अन्यदा विहरन्तश्च, श्रीजिनेश्वरसूरयः।
पुनर्द्धारापुरीं प्रापुः, सपुण्यप्राप्यदर्शनाम्।।91।।

भावार्थ – आचार्य वर्धमानसूरि ने जिनेश्वर व बुद्धिसागर को योग्य समझकर सूरि पद दिया और उनको आज्ञा दी कि पाटण में चैत्यवासी आचार्य सुविहितों को आने नहीं देते हैं,अतः तुम जाकर सुविहितों के ठहरने का द्वार खोल दो। गुरु–आज्ञा शिरोधार्य कर जिनेश्वरसूरि एवं बुद्धिसागरसूरि विहार कर क्रमशः पाटण पहुँचे घर घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिये उपाश्रय नहीं मिला। उस समय पाटण में राजा दुर्लभ राज करता था और सोमेश्वर नाम का राजपुरोहित भी वहाँ रहता था। दोनों मुनि चलकर उस पुरोहित के यहाँ आये और आपस में वार्तालाप होने से पुरोहित ने उनका सत्कार कर ठहरने के लिये अपना मकान दिया क्योंकि जिनेश्वरसूरि एवं बुद्धिसागरसूरि जाति के ब्राह्मण थे। अतः ब्राह्मण का सत्कार करे यह स्वाभाविक बात है।

इस बात का पता जब चैत्यवासियों को लगा तो उन्होंने अपने आदमियों को पुरोहित के मकान पर भेजकर साधुओं को कहलाया कि इस नगर में चैत्यवासियों की आज्ञा के बिना कोई भी श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं अतः तुम जल्दी से नगर से चले जाओ इत्यादि। आदमियों ने जाकर सब हाल जिनेश्वरादि को सुना दिया। इस पर पुरोहित सोमेश्वर ने कहा कि मैं राजा के पास जाकर निर्णय कर लूँगा आप अपने मालिकों को कह देना। उन आदमियों ने जाकर पुरोहित का संदेश चैत्यवासियों को सुना दिया। इस पर वे सब लोग शामिल होकर राजसभा में गये। **इधर पुरोहित ने भी राजसभा में जाकर कहा कि मेरे मकान पर दो श्वेताम्बर साधु आये हैं मैने उनको गुणी समझकर ठहरने के लिये स्थान दिया है। यदि इसमें मेरा कुछ भी अपराध हुआ हो तो आप अपनी इच्छा के अनुसार दंड दें।**

चैत्यवासियों ने राजा वनराज चावड़ा और आचार्य देवचंद्रसूरि का इतिहास सुनाकर कहा कि 'आपके पूर्वजों से यह मर्यादा चली आई है कि पाटण में चैत्यवासियों के अलावा श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकेगा। अतः उस मर्यादा का आपको भी पालन करना चाहिये' इत्यादि।

इस पर राजा ने कहा कि मैं अपने पूर्वजों की मर्यादा का दृढ़ता पूर्वक पालन

करने को कटिबद्ध हूँ पर आपसे इतनी प्रार्थना करता हूँ कि मेरे नगर में कोई भी गुणीजन आ निकले तो उनको ठहरने के लिये स्थान तो मिलना चाहिये। अतः आप इस मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें? चैत्यवासियों ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

जब चैत्यवासियों ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली तब उस अवसर को पाकर पुरोहित ने राजा से प्रार्थना की कि हे राजन् ! इन साधुओं के मकान के लिये कुछ भूमि प्रदान करावें कि इनके लिये एक उपाश्रय बना दिया जाय? उस समय एक शैवाचार्य्य राजसभा में आया हुआ था। उसने भी पुरोहित की प्रार्थना को मदद दी। अतः राजा ने भूमिदान दिया और पुरोहित ने उपाश्रय बनाया जिसमें जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया। बाद चातुर्मास के जिनेश्वरसूरि विहार कर धारानगरी की ओर पधार गये।

इस उल्लेख से पाठक स्वयं जान सकते हैं कि जिनेश्वरसूरि पाटण जरुर पधारे थे पर न तो वे राजसभा में गये न चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और न राजा ने खरतर बिरुद ही दिया। इस लेख से स्पष्ट पाया जाता है कि राजसभा में केवल सोमेश्वर पुरोहित ही गया था और उसने राजा से भूमि प्राप्त कर जिनेश्वरसूरि के लिये उपाश्रय बनाया। जिसमें जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया और चातुर्मास के बाद विहार कर धारा नगरी की ओर पधार गये।

सम्यक्त्व सप्ततिका की टीका का उल्लेख

सूरिपुरंदर हरिभद्रसूरिजी रचित 'सम्यक्त्व सप्ततिका' ग्रंथ की टीका **रुद्रपल्लीय गच्छ के संघतिलकसूरिजी ने सं. 1442 में रची थी।** उस ग्रंथ की 26वीं गाथा की टीका में प्रसंगोपात जिनेश्वरसूरिजी की कथा भी दी है। उसमें भी जिनेश्वरसूरिजी का पाटण जाना एवं सुविहित मुनियों के विहार की अनुमति की बात लिखी है, परंतु **राजसभा में चैत्यवासिओं से वाद और 'खरतर' बिरुद की प्राप्ति का कोई निर्देश नहीं किया है।**

संदर्भ ग्रंथ इस प्रकार है–

''जिणिसरसूरी तह बुद्धिसायरो गणहरो दुवे कइया।
सिरिवद्धमाणसूरिहिं एवमेए समाइट्ठा।।43।।

वच्छा! गच्छह अणहिल्लपट्टणे संपयं जओ तत्थ।
सुविहियजइप्पवेसं, चेइयमुणिणो निवारंति।।44।।

सत्तीए बुद्धीए, सुविहियसाहूण तत्थ य पवेसो।
कायव्वो तुम्ह समो, अन्नो नहु अत्थि कोऽवि विऊ।।45।।

सीसे धरिऊण गुरूणमेयमाणं कमेण ते पत्ता।
गुज्जरधरावयंसं, अणहिल्लभिहाणयं नयरं।।46।।

गीयत्थमुणिसमेया, भमिया पइमंदिरं वसहिहेउं।
सा तत्थ नेव पत्ता, गुरुण तो सुमरियं वयणं।।47।।

तत्थ य दुल्लहराओ, राया रायव्व सव्वकलकलिओ।
तस्स पुरोहियसारो, सोमेसरनामओ आसि।।48।।

तस्स घरे ते पत्ता, सोऽविहु तणयाण वेयअज्झयणं।
कारेमाणो दिट्ठो, सिट्ठो सूरिप्पहाणेहिं।।49।।

सुणु वक्खाणं वेयस्स, एरिसं सारणीइ परिसुद्धं।
सोऽवि सुणंतो उप्फुल्ललोयणो विम्हिओ जाओ।।50।।

किं बम्हा रूवजुयं, काऊणं अत्तणो इह उइन्नो।
इय चिंतंतो विप्पो, पयपउमं वंदइ तेसिं।।51।।

सिवसासणस्स जिण–सासणस्स सारक्खरं गहेऊणं।

इय आसीसा दिन्ना, सूरीहिं सकज्जसिद्धिकए।।52।।

अपाणिपादो ह्यमनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न हि तस्य वेत्ता, शिवो ह्यरूपी स जिनोऽवताद्वः।।53।।

तो विप्पो ते जंपइ, चिट्ठह गुट्ठी तुमेहि सह होइ।
तुम्ह पसाया वेयत्थपारगा हुंति दुसुया मे ।।54।।

ठाणाभावा अम्हे चिट्ठामो कत्थ इत्थ तुह नयरे?
चेइयवासियमुणिणो, न दिंति सुविहियजणे वसिउं।।55।।

तेणवि सचंदसालाउवरिं ठावित्तु सुद्धअसणेणं।
पडिलाहिय मज्झण्हे, परिक्खिया सव्वसत्थेसु।।56।।

तत्तो चेइयवासिसुहडा तत्थागया भणन्ति इमं।
नीसरह नयरमज्झा, चेइयबज्झो न इह ठाइ।।57।।

इय वुत्तंतं सोउं, रण्णो पुरओ पुरोहिओ भणइ।
रायावि सयलचेइयवासीणं साहए पुरओ।।58।।

जइ कोऽवि गुणट्ठाणं, इमाण पुरओ विरूवयं भणिही।
तं नियरज्जाओ फुडं, नासेमी संकिमिभसणुव्व।।59।।

रण्णो आएसेणं, वसहिं लहिउं ठिया चउम्मासिं।
तत्तो सुविहियमुणिणो, विहरंति जहिच्छियं तत्थ।।60।।"

भावार्थ – वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि को हुक्म दिया कि तुम पाटण जाओ कारण पाटण में चैत्यवासियों का जोर है कि वे सुविहितों को पाटण में आने नहीं देते हैं, अतः तुम जा कर सुविहितों के लिए पाटण का द्वार खोल दो। बस गुरुआज्ञा स्वीकार कर जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि क्रमशः विहार कर पाटण पधारे। वहाँ प्रत्येक घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिए स्थान नहीं मिला उस समय उन्होने गुरु के वचन को याद किया कि वे ठीक ही कहते थे कि पाटण में चैत्वासियों का जोर है । खैर उस समय पाटण में राजा दुर्लभ का राज था और उनका राजपुरोहित सोमेश्वर ब्राह्मण था। दोनों सूरि पुरोहित के वहाँ गये। परिचय होने पर पुरोहित ने कहा कि आप इस नगर में विराजें। इस पर सूरिजी ने कहा कि तुम्हारे नगर में ठहरने को स्थान ही नहीं मिलता फिर हम कहाँ ठहरें? इस हालत में पुरोहित ने अपनी चन्द्रशाला खोल दी कि वहाँ जिनेश्वरसूरि ठहर गये। यह

बितीकार चैत्यवासियों को मालूम हुआ तो वे (प्र. च. उनके आदमी) वहाँ जा कर कहा कि तुम नगर से चले जाओ कारण यहाँ चैत्यवासियों की सम्मति बिना कोई श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं। इस पर पुरोहित ने कहा कि मैं राजा के पास जाकर इस बात का निर्णयकर लूँगा। बाद पुरोहित ने राजा के पास जाकर सब हाल कह दिया। उधर से सब चैत्यवासी राजा के पास गये और अपनी सत्ता का इतिहास सुनाया। **आखिर राजा के आदेश से वसति प्राप्त कर जिनेश्वरसूरि पाटण में चतुर्मास किया उस समय से सुविहित मुनि पाटण में यथा इच्छा विहार करने लगे।**

यह उल्लेख जिनेश्वरसूरिजी के अनुयायी ऐसे रुद्पल्लीय गच्छ के आचार्य सङ्घतिलकसूरिजी का ही है। इसके अवलोकन से पाठक वर्ग स्वयं निर्णय कर सकता है कि **रुद्रपल्लीय गच्छ में भी जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला, ऐसी मान्यता नहीं थी।**

जिनविजयजी के अभिप्राय की समीक्षा

इस विषय में 'ओसवाल वंश' पृ. 33-34 पर जिनविजयजी ने बृहद्वृत्ति, गुर्वावली आदि के आधार से जिनेश्वरसूरिजी के सूराचार्यजी से वाद होने एवं प्रभावक चरित्र में सूराचार्यजी के चारित्र वर्णन में उनके मानभंग के भय से वाद का वर्णन नहीं किये जाने की जो बात लिखी है और जिसका उद्धरण 'खरतरगच्छ का उद्भव' पृ. 33-34 पर दिया है, वह उचित प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि उपर बताये अनुसार 'प्रभावक चरित्र' के अभयदेवसूरि प्रबंध एवं 'सम्यक्त्व सप्ततिका' की टीका में न तो वाद का निर्देश है और न ही खरतर विरुद की बात है एवं पृ. 37 पर बताये अनुसार ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सूराचार्यजी और जिनेश्वरसूरिजी के वाद की संभावना भी नहीं की जा सकती है।

परिशिष्ट-3
जिनेश्वरसूरिजी एवं उनके शिष्य आदि के उल्लेख
जिनेश्वरसूरिजी के उल्लेख

1. सूरिपुरंदर श्रीहरिभद्रसूरिजी विनिर्मित श्री **अष्टप्रकरण** पर जिनेश्वरसूरिजी विरचित **वृत्ति की प्रशस्ति-**

सूरेः श्रीवर्धमानस्य निःसम्बन्धविहारिणः।
हारिचारित्रपात्रस्य श्रीचन्द्रकुलभूषिणः ।।2।।

पादाम्भोजद्विरेफेण श्रीजिनेश्वरसूरिणा।
अष्टकानां कृता वृत्तिः सत्त्वानुग्रहहेतवे।।3।।

समानामधिकेऽशीत्या सहस्त्रे विक्रमाद्गते।
श्रीजावालिपुरे रम्ये वृत्तिरेषा समापिता।।4।।

वि. सं. 1080 में ही रचित इस टीका की प्रशस्ति में भी खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है। परंतु चन्द्रकुल का ही उल्लेख किया है।

इसी तरह अन्य ग्रंथों में भी जिनेश्वरसूरिजी ने चान्द्रकूल का ही उल्लेख किया है। देखियेः-

2. **कथाकोषप्रकरण** की प्रशस्ति (वि. सं. 1108)

''विक्कमनिवकालाओ वसु-नह-रुद्द (1108) प्पमाणवरिसंमि।
मग्गसिरकसिणपंचमिरविणो दिवसे परिसमत्तं।।

उज्जोइयभुवणयले **चंदकुले** तह य **कोडियगणम्मि।**
वइरमहामुणिणिग्गय**साहाए** जणियजयसोहो।।

सिरिउज्जोयणसूरी तस्स महापुण्णभायणं सीसो।
सिरिवद्धमाणसूरी तस्सीसजिणेसरायरिओ।।''

3. **चैत्यवंदन विवरण** की प्रशस्ति (सं. 1096) में भी खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है।

नो विद्यामदविह्वलेन मनसा नान्येषु चेर्ष्यावशात्।
टीकेयं रचिता न जातु विपुलां पूजां जनाद् वाञ्छता।
नो मौढ्यान्न च चापलाद् **यदि परं प्राप्तं प्रसादाद् गुरोः।**

सूरेर्जैनमतानुरक्तमनसः श्रीवर्द्धमानस्य यः।।1।।

सत्संप्रदायोऽयमशेषभव्यलोकोपकाराय भवत्वविघ्नः।
बुध्येति टीकां विरहय्य नायं (?)भव्यानशेपानुपकर्तुमीशः।।2।।

श्रीमज्जिनेश्वराचार्यैः श्रीजावालिपुरे स्थितैः।
षाण्णवते कृता टीका वैशाखे कृष्णभौतिके।।3।।

बुद्धिसागरसूरिजी का उल्लेख

4. जिनेश्वरसूरिजी के गुरुभ्राता **बुद्धिसागरसूरिजी** ने सं. 1080 में जालोर में **'पञ्चग्रंथी'** ग्रंथ की रचना की। उसमें अपने गुरुभआई की भरपूर प्रशंसा की है, परंतु 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का निर्देश नहीं किया है। देखिये–

आसीन्महावीरजिनोऽस्य शिष्यः, सुधर्मनामाऽस्य च जम्बुनामा।
तस्यापि शिष्यः प्रभवोऽस्य शिष्यः, शय्यम्भवोऽस्यानुपरम्परायाम्।।1।।

वज्रोऽस्य शाखाम्बरमण्डलेऽस्मिन्, साधूडुवृन्दावृतशान्तकान्तिः।
भव्यासुमत्सत्कुमुदप्रबोधो निर्ना (र्णा) शिताज्ञानघनान्धकारः।।2।।

बालेन्दुवत् सर्वजनाभिवन्द्यः शुक्लीकृताङ्गीकृतसाधुपक्षः।
कलाकलापोपचयोत्व (?) मूर्तिः श्रीवर्धमानो नतवर्धमानः।।3।।

जिनप्रणीतागमतत्त्ववेत्ता द्विषां प्रणेतेव मनु(जे?) तराणां (?)
साहित्यविद्याप्रभवो बभूव श्वेताम्बरः श्वेतयशा यतीशः।।4।।

गुरुपदमनुकर्तुं तद्वदेवास्य शिष्योऽशिषदशिवदकल्पः कल्पशाखोपमेयो।
अनतिकृदतिकृदध्विं(?)व्याप्यचित्तोऽप्यचित्तोऽभवदिह वदिहाशः **श्रीजिनेशो यतीशः**।5।

जलनिधिवदगाधो मोक्षरत्नार्थिसेव्यो यमनियमतपस्याज्ञानरत्नावलिश्च।
सुरगिरिरिव तैर्वा(वातौ?)वावदूकैरकम्प्यो वचनजलसुगेतां (?)तर्पयन्नुप्तशस्याम्।।6।।

सुरपतिरतिवासे जैनमार्गोदयाद्रौ हतकुमततमिश्रः(स्रः)प्रोदगात् सूरिसूर्यः।
भवसरसिरुहाणां भव्यपद्माकराणां विदधदिव सुलक्ष्मीं बोधकोऽहर्निशं तु।।7।।

श्रीबुद्धिसागराचार्योऽनुग्राह्योऽभवदेतयोः।
पञ्चग्रन्थीं स चाकार्षीज्जगद्धितविधित्सया।।8।।

यदि मदिकृतिकल्पोऽनर्थधीर्मत्सरी वा कथमपि सदुपायैः शक्यते नोपकर्तुम्।
तदपि भवति पुण्यं स्वाशयस्यानुकूल्ये पिबति सति यथेष्टं श्रोत्रियादौ प्रपायाम्।9।

अम्भोनिधिं समवगाह्य समाप लक्ष्मीं चेद्वामनोऽपि पृथिवीं च पदत्रयेण।

श्रीबुद्धिसागरममुं त्ववगाह्य कोद्यो(?)व्याप्नोति तेन जगतोऽपि पदद्वेयन।।10।।
श्रीविक्रमादित्यनरेन्द्रकालात् **साशीतिके याति समासहस्रे।**
सश्रीकजावालिपुरे तदाद्यं दृब्धं मया सप्तसहस्रकल्पम्।।11।।

धनेश्वरसूरिजी का उल्लेख

5. जिनेश्वरसूरिजी के प्रधान शिष्य **धनेश्वरसूरिजी** अपरनाम जिनभद्राचार्यजी ने सं. 1095 में **'सुरसुंदरी चरित्र'** की रचना की। उसमें खरतर बिरुद की बात नहीं है। देखिये:-

सीसो य तस्स सूरो व्व सयावि जणिय-दोसंतो।
आसि सिरि-वद्धमाणो पवड्ढमाणो गुण-सिरीए।।240।।

रागो य जस्स धम्मे आसि पओसो य जस्स पावम्मि।
तुल्लो य मित्त-सत्तुसु तस्स य जाया दुवे सीसा।।241।।

दुव्वार-वाइ-वारण-मरट्ट-निट्ठवण-निट्ठुर-मइंदो।
जिण-भणिय-सुद्ध-सिद्धंत-देसणा-करण--तल्लिच्छो।।242।।

जस्स य अईव-सुललिय-पय-संचारा पसन्न-वाणीया।
अइकोमला सिलेसे विविहालंकार-सोहिल्ला ।।243।।

लीलावइ त्ति नामा सुवन्न-रयणोह-हारि-सयलंगा।
वेस व्व कहा वियरइ जयम्मि कय-जण-मणाणंदा।।244।।

एगो ताण **जिणेसर-सूरि** सूरो व्व उक्कड-पयावो।
तस्स सिरि-**बुद्धिसागर सूरी** य सहोयरो बीओ।।245।।

पुन्न-सरदिंदु-सुंदर-निय-जस-पब्भार-भरिय-भुवण-यलो।
जिण-भणिय-सत्थ-परमत्थ-वित्थरासत्त-सुह-चित्तो।।246।।

जस्स य मुह-कुहराओ विणिग्गया अत्थ-वारि-सोहिल्ला।
बुह-चक्कवाय-कलिया रंगंत-सुफक्किय-तरंगा।।247।।

तडरुह-अवसइ-महीरूहोह-उम्मूलणम्मि सुसमत्था।
अज्झायपवर-तित्था पंचगंथी नई पवरा।।248।।

जिनचंद्रसूरिजी का उल्लेख

6. **आ. जिनचंद्रसूरिजी कृत संवेगरंगशाला की प्रशस्ति में भी 'खरतर' बिरुद**

प्राप्ति की बात नहीं लिखी हैः-

''अच्चंतं सरले च्चिय अपुव्ववंसम्मि परिवहंतम्मि।
जाओ य **वइरसामी,** महापभू परमपयगामी।।10033।।

तस्साहाए निम्मलजसधवलो सिद्धिकामलोयाणं।
सविसेसवंदणिज्जो य, रायणा थो (थे) रप्पवग्गो व्व।।10034।।

कालेणं संभूओ भयवं सिरिवद्धमाणमुणिवसभो।
निप्पडिमपसमलच्छी-विच्छड्डाऽखंडभंडारो।।10035।।

ववहारनिच्छयनय व्व दव्वभावत्थय व्व धम्मस्स।
परमुन्नइजणगा तस्स दोण्णि सीसा समुप्पण्णा।।10036।।

पढमो सिरिसूरिजिणेसरो त्ति, सूरो व्व जम्मि उइयम्मि।
होत्था पहाऽवहारो दूरंततेयस्सिचक्कस्स।।10037।।

बीओ पुण विरइयनिउण-पवरवागरणपमुहबहुसत्थो।
नामेण बुद्धिसागरसूरि त्ति अहेसि जयपयडो ।।10039।।

तेसिं पयपंकउच्छंग-संगसंपत्तपरममाहप्पो।
सिस्सो पढमो जिणचंद-सूरिनामो समुप्पन्नो।।10040।।

अन्नो य पुन्निमाससहरो व्व निव्ववियभव्वकुमुयवणो।
सिरिअभयदेवसूरि त्ति, पत्तकित्ती परं भुवणे।।10041।।''

अभयदेवसूरिजी के उल्लेख

7. **नवाङ्गीटीकाकार अभयदेवसूरिजी ने भी अपने ग्रंथों में चान्द्रकुल का ही उल्लेख किया है।** देखिये **'स्थानाङ्ग सूत्र'** की प्रशस्तिः-

तच्चन्द्रकुलीनप्रवचनप्रणीताप्रतिबद्धविहारहारिचरितश्रीवर्धमानाभिधान-मुनिपतिपादोपसेविनः प्रमाणादिव्युत्पादनप्रवणप्रकरणप्रबन्धप्रणयिनः प्रबुद्धप्रति-बन्धप्रवक्तृप्रवीणाप्रतिहतप्रवचनार्थप्रधानवाक्प्रसरस्य **सुविहितमुनिजनमुख्यस्य श्रीजिनेश्वराचार्यस्य** तदनुजस्य च व्याकरणादिशास्त्रकर्तुः श्रीबुद्धिसागराचार्यस्य चरणकमलचञ्चरीककल्पेन **श्रीमदभयदेवसूरिनाम्ना** मया महावीरजिनराजसन्ता-नवर्तिना महाराजवंशजन्मनेव **संविग्नमुनिवर्गश्रीमदजितसिंहाचार्यान्तेवासियशो-देवगणिनामधे**यसाधोरुत्तरसाधकस्येव विद्याक्रियाप्रधानस्य साहाय्येन समर्थितम्।

श्रीविक्रमादित्यनरेन्द्रकालाच्छतेन विंशत्यधिकेन युक्ते।
समासहस्रेऽतिगते विदृब्धा स्थानाङ्गटीकाऽल्पधियोऽपि गम्या।।8।।

8. प्रथम उपाङ्ग '**औपपातिकसूत्र**' की टीका की प्रशस्ति के श्लोकः-

चन्द्रकुलविपुलभूतलयुगप्रवरवर्धमानकल्पतरोः।
कुसुमोपमस्य सूरेः गुणसौरभभरितभवनस्य।।1।।

निस्सम्बन्धविहारस्य सर्वदा **श्रीजिनेश्वराह्वस्य।**
शिष्येणा**भयदेवाख्य**सूरिणेयं कृता वृत्तिः।।2।।

9. '**विपाकसूत्र**' की टीका के अंत में उन्होंने इस प्रकार लिखा हैः-

'कृतिरियं **संविग्नमुनिजनप्रधान**श्रीजिनेश्वराचार्यचरणकमल-चञ्चरीककल्पस्य **श्रीमदभयदेवाचार्यस्येति**।।'

इन सभी उल्लेखों में **अभयदेवसूरिजी ने जिनेश्वरसूरिजी को 'सुविहित', 'संविग्न', उद्यत विहारी**' आदि अर्थपरक विशेषणों से स्तवना की है। **परंतु कहीं पर 'खरतर' विशेषण नहीं लिखा है। इतना ही नहीं जिनेश्वरसूरिजी की शिष्य परंपरा के सिवाय भी संविग्न समुदाय भी मौजुद था,** ऐसा अजितसिंहाचार्यजी के लिये प्रयुक्त विशेषण से भी पता चलता है।

10. इसी तरह उन्होंने भगवतीसूत्र आदि की टीका की प्रशस्तिओं में भी चान्द्रकुल एवं उद्यत विहार का ही उल्लेख किया है। देखिये पञ्चमाङ्ग '**श्री भगवतीसूत्र की** प्रशस्ति-

यदुक्तमादाविह साधुयोधैः, श्रीपञ्चमाङ्गोन्नतकुञ्जरोऽयम्।
सुखाधिगम्योऽस्त्विति पूर्वगुर्वी, प्रारभ्यते वृत्तिवरत्रिकेयम्।।1।।

समर्थितं तत्पटुबुद्धिसाधुसाहायकात्केवलमत्र सन्तः।
सद्बुद्धिदात्र्याऽपगुणांल्लुनन्तु, सुखग्रहा येन भवत्यथैषा।।2।।

चान्द्रे कुले सद्वनकक्षकल्पे, महाद्रुमो धर्म्मफलप्रदानात्।
छायान्वितः शस्तविशालशाखः, श्रीवर्द्धमानो मुनिनायकोऽभूत्।।3।।

तत्पुष्पकल्पौ विलसद्विहारसद्गन्धसम्पूर्णदिशौ समन्तात्।
बभूवतुः शिष्यवरावनीचवृत्ती श्रुतज्ञानपरागवन्तौ।।4।।

एकस्तयोः **सूरिवरो जिनेश्वरः, ख्यातस्तथाऽन्यो** भुवि बुद्धिसागरः।
तयोर्विनेयेन विबुद्धिनाऽप्यलं, वृत्तिः कृतैषाऽभयदेवसूरिणा।।5।।

तयोरेव विनेयानां, तत्पदं चानुकुर्वताम्।
श्रीमतां जिनचन्द्राख्यसत्प्रभूणां नियोगतः।।6।।

श्रीमज्जिनेश्वराचार्यशिष्याणां गुणशालिनाम्।
जिनभद्रमुनीन्द्राणामस्माकं चाह्रिसेविनः।।7।।

यशश्चन्द्रगणेर्गाढसाहाय्यात्सिद्धिमागता।
परित्यक्तान्यकृत्यस्य, युक्तायुक्तविवेकिनः।।8।। युग्मम्।

शास्त्रार्थनिर्णयसुसौरभलम्पटस्य, विद्वन्मधुव्रतगणस्य सदैव सेव्यः।
श्रीनिर्वृताख्यकुलसन्नदपद्मकल्पः, श्रीद्रोणसूरिरनवद्ययशःपरागः।।9।।

शोधितवान् वृत्तिमिमां युक्तो विदुषां महासमूहेन।।
शास्त्रार्थनिष्कनिकषणकषपट्टककल्पबुद्धीनाम्।।10।।

विशोधिता तावदियं सुधीभिस्तथाऽपि दोषाः किल संभवन्ति।
मन्मोहतस्तांश्च विहाय सद्भिस्तद्ग्राह्यमाप्ताभिमतं यदस्याम्।।11।।

यदवाप्तं मया पुण्यं, वृत्ताविह शुभाशयात्।
मोहाद्वृत्तिजमन्यच्च, तेनागो मे विशुद्ध्यतात्।।।12।।

प्रथमादर्शे लिखिता विमलगणिप्रभृतिभिर्निजविनेयैः।
कुर्वद्भिः श्रुतभक्तिं दक्षैरधिकं विनीतैश्च।।13।।

अस्याः करणव्याख्याश्रुतिलेखनपूजनादिषु यथार्हम्।
दायिकसुतमाणिक्यः प्रेरितवानस्मदादिजनान्।।14।।

अष्टाविंशतियुक्ते वर्षसहस्रे शतेन चाभ्यधिके।
अणहिलपाटकनगरे कृतेयमच्छुप्तधनिवसतौ।।15।।

अष्टादश सहस्राणि, षट् शतान्यथ षोडश।
इत्येवमानमेतस्याः, श्लोकमानेन निश्चितम्।।16।। अङ्कतोऽपि

11. **पंचाशक प्रकरण की टीका** की प्रशस्ति में भी **जिनेश्वरसूरिजी के विषय में चान्द्रकुल एवं उद्यत विहार की ही बात लिखी है।** देखियेः-

यस्मिन्नतीते श्रुतसंयमश्रियावप्राप्नुवत्यावपरं तथाविधम्।
स्वस्याश्रयं संवसतोऽतिदुःस्थिते श्रीवर्धमानः स यतीश्वरोऽभवत्।।1।।

शिष्योऽभवत्तस्य **जिनेश्वराख्यः सूरिः** कृतानिन्द्यविचित्रशास्त्रः।
सदा **निरालंबविहारवर्ती चन्द्रोपमश्चन्द्रकुलांबरस्य**।।2।।

अन्योऽपि वित्तो भुवि बुद्धिसागरः पाण्डित्यचारित्रगुणैर्गतोपमैः।
शब्दादिलक्ष्मप्रतिपादकानघग्रन्थप्रणेता प्रवरः क्षमावताम्।।3।।

तयोरिमां शिष्यवरस्य वाक्याद् वृत्तिं व्यधाच्छ्रीजिनचंद्रसूरेः।
शिष्यस्तयोरेव विमुग्धबुद्धिर्ग्रन्थार्थबोधे**ऽभयदेवसूरिः**।।4।।

जिनवल्लभगणिजी का उल्लेख

12. अभयदेवसूरिजी के उल्लेखों के बाद **जिनवल्लभगणिजी की 'अष्टसप्ततिका'** (चैत्य प्रशस्ति) का उल्लेख यहाँ पर दिया जाता है। इसमें जिनेश्वरसूरिजी द्वारा राजसभा में सुविहित मार्ग को प्रगट करके संविग्न वर्ग के विहार चालु कराने की बात लिखी है, परंतु **'खरतर' बिरुद प्राप्ति की बात नहीं लिखी है।**

नृचकोरदयितमपमलमदोषमतमोऽनिरस्तसद्वृत्तम्।
नानीककृतविकासोदयमपरं **चान्द्रमस्ति कुलम्**।।39।।

तस्मिन्बुधो**ऽभवदसङ्गविहारवर्ती, सूरिर्जिनेश्वर इति** प्रथितोदयश्रीः।
श्रीवर्द्धमानगुरुदेवमतानुसारी, हारोऽभवन् हृदि सदा गिरिदेवतायाः।।40।।

सामाचार्यं च सत्यं दशविधमनिशं साधुधर्मञ्च बिभ्र-
त्तत्त्वानि ब्रह्मगुप्तीनवविधविदुरः प्राणभाजश्च रक्षन्।
हित्वाष्टौ दुष्टशत्रूनिव सपदि मदान् कामभेदान् च पञ्च,
भव्येभ्यो वस्तुभङ्गान्विनयमथ नयान् सप्तधाऽदीदिपद्यः।।41।।

क्रूराकस्मिकभस्मकग्रहवशेऽस्मिन् दुःखमादोषतो,
बाढं मौढ्यदृढाढ्यदूढ्यकुगुरुग्रस्ते विहस्ते जने।
मध्येराजसभं जिनागमपथं प्रोद्भाव्य भव्ये हितं,
सर्वत्रास्खलितं विहारमकरोत् **संविग्नवर्गस्य** यः।।42।।

जिनदत्तसूरिजी का उल्लेख

13. जिनवल्लभगणिजी के बाद **जिनदत्तसूरिजी के 'गणधरसार्द्धशतक'** में जिनेश्वरसूरिजी संबंधित उल्लेख यहाँ पर दिया जाता हैः-

अणहिल्लवाडए नाडए व्व दंसिअसुपत्तसंदोहे।
पउरपए बहुकविदूसए य सन्नायगाणुगए।।65।।

सड्ढिअदुल्लहराए, सरसइअंकोवसोहिए सुहए।
मज्झे रायसहं पविसिऊण लोयागमाणुमयं।।66।।

नामायरिएहिं समं, करिअ वियारं वियाररहिएहिं।
वसइहिं निवासो साहूण ठाविओ ठाविओ अप्पा।।67।।

परिहरिअगुरुकमागए,-वरवत्ताए वि गुज्जरत्ताए।
-वसहि विहारो (निवासो) जेहिं, फुडीकओ गुज्जरत्ताए।।68।।

तिजयगयजीवबंधू, जब्बंधू बुद्धिसागरो सूरी।
कयवायरणो वि न जो, विवायरणकारओ जाओ।।69।।
-सुगुणजनजणियभद्दो, जिणभद्दो जव्विणेयगणपढमो।....

उपर्युक्त गाथाओं में **'गणधर सार्द्धशतककार' जिनदत्तसूरिजी** ने चैत्यवासियों के साथ जिनेश्वरसूरिजी का शास्त्रार्थ होने और वसतिवास का प्रमाणित होना बड़ी खूबी के साथ बताया है, परन्तु राजा की तरफ से जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद मिलने का सूचन तक नहीं है। **इससे स्पष्ट हो जाता है कि जिनदत्तसूरिजी के 'गणधरसार्द्धशतक' का निर्माण हुआ तब तक 'खरतर'नाम व्यवहार में आया नहीं था, अन्यथा जिनदत्तसूरिजी इसकी सूचना किये बिना नहीं रहते।**

हरिभद्रसूरिजी चैत्यवासी थे 'ऐसी दन्तकथा के खण्डन में जिनदत्तसूरिजी ने इस प्रकार लिखा हैः-

उइयंमि मिहिरि भद्दं, सुदिट्ठिणो होइ मग्गदंसणओ।
तह हरिभद्दायरिए, भद्दायरिअम्मिं उदयमिए।।56।।

जं पइ केइ समनामभोलिया भोऽलियाइं जंपंति।
चेइवासि दिक्खिओ सिक्खिओ य गीयाण तं न मयं।।57।।

हरिभद्रसूरिजी के सम्बन्ध में उनके चैत्यवासी होने की दन्तकथा का खण्डन करने के लिए आप तैयार हो गए हैं तो **जिनेश्वरसूरिजी को राजसभा में 'खरतर'बिरुद मिलने की वे चर्चा न करें, यह बात मानने काबिल नहीं है।**

इतना ही नहीं, 'गणधर सार्द्धशतक' के उपर जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य कनकचंद्रगणिजी ने सं. 1295 में टीका लिखी थी। उसी के आधार से सं. 1676 में पद्ममंदिर गणिजी ने भी संक्षेप में टीका रची, उसमें भी 'खरतर' बिरुद की बात नहीं है। गणधर-सार्द्धशतक के, ऊपर दिये गये श्लोक 66, 67 का इस टीका में इस तरह का वर्णन मिलता हैः-

न्यायेन 'अणहिल्लवाडए' इत्यस्यामपि गाथायां संबध्यते-यैः **श्रीजिनेश्वरा-चार्यैः अणहिल्लपाटके**=अणहिल्लपाटकाभिधाने पत्तने **मध्येराजसभं=राजसभाया**

मध्ये 'परे मध्येऽग्रेऽन्तः षष्ठ्या वा' इत्यव्ययीभावसमासः (हेम. 3-1-30), प्रविश्य=स्थित्वा लोकश्चागमश्च तयोरनुमतं=सम्मतं यत्र, एवं यथा भवति कृत्वा नामाचार्यैःसह **विचारं=धर्म्मवादम्** यैः कीदृशैः? इत्याह-'वियाररहिएहिं' विचाररहितैरिति विरोधः , **अथ च विकाररहितः=निर्विकारैरित्यर्थः।** वसतौ निवासः=अवस्थानं साधूनां स्थापितः=प्रतिष्ठितः, स्थापितः = स्थिरीकृतः आत्मा। **वसतिव्यवस्थापनं चाणहिल्लपाटकेऽकारि।** कीदृशे तस्मिन्?....

68वीं गाथा की टीका इस प्रकार है-

अमुमेवार्थं पुनः सविशेषमाह-'वसहिविहारो' इत्यादि। वसत्या=चैत्यगृहवा-सनिराकरणेन परगृहस्थित्या सह विहारः= समयभाषया भव्यलोकोपकारादिधिया ग्रामनगरादौ विचरणं वसतिविहारः, स यैर्भगवद्भिः स्फुटीकृतः=सिद्धान्तशास्त्रान्तः परिस्फुरन्नपि लघुकर्म्मणां प्राणिनां पुरः प्रकटीकृतः। कस्याम् ? गूर्जरात्रायां= सप्ततिसहस्रप्रमाणमण्डलमध्ये। किं विशिष्टायाम्? परिहृतगुरुक्रमागतवरवार्त्ता-यामपि, परिहृता-श्रवणमात्रेणापि अवगणिता गुरुक्रमागता=गुरुपारम्पर्यसमायाता वरवार्त्ता=विशिष्टशुद्धधर्म्मवार्त्ता यया सा तथा तस्याम्, अपिः=सम्भावने-नास्ति किमप्यत्रासम्भाव्यं घटत एवेत्यर्थः।

इसमें **'खरतर' बिरुद का बिलकुल उल्लेख नहीं है।**

पं. कल्याणविजयजी का सचोट कथन

14. **इतिहासवेत्ता पं. कल्याणविजयजी ने 'पट्टावली पराग' हस्तलिखित प्रत के आधार से बताया है कि सर्वराजगणिजी की गणधरसार्द्धशतक की लघुवृत्ति तथा सुमतिगणिजी की बृहद्वृत्ति में भी 'खरतर' बिरुद की बात नहीं है।**

देखिये उन्हीं के शब्द :-

पट्टावली नम्बर 2327

यह पट्टावली वास्तव में 'गणधर-सार्द्धशतक' की लघु टीका है, यह लघुवृत्ति 43 पत्रात्मक है, इसके निर्माता वाचक सर्वराजगणि हैं कि जिनका सत्तासमय विक्रम की 15वीं शताब्दी है, वृत्तिकार ने वृत्ति के उपोद्घात में आचार्य जिनदत्तसूरिजी को अनेक प्रकार के ऐसे विशेषण दिए हैं, जो पिछले लेखकों ने इनके जीवन के साथ जोड़ दिये हैं, जैसे- 'भूतप्रेत-निरसन, योगिनी-चक्रप्रतिबोधक, कुमार्गनिरसन, प्रतिवादिसिंहनादविधान श्रीत्रिभुवनगिरिदेव

नियमित, पंचसप्तयतिवारण, श्री पार्श्वनाथ (नव) फण धारण, वामावती–रात्रिकस्थापन, निरन्तरागच्छद्गच्छयान, सुरासुरविरचितांघ्रिसेवन, इत्यादि विशेषणों में अधिकांश विशेषण ऐसे हैं, जो बृहदवृत्ति में नहीं है, इससे यह प्रमाणित होता है कि या तो यह लघुवृत्ति बृहद्वृत्ति का अनुसरण करने वाली नहीं है, यदि यह शब्दशः– बृहद्वृत्ति का अनुसरण करती है तो इसके उपोद्घात को किसी अर्वाचीन विद्वान् ने बिगाड़कर वर्तमानरूप दे दिया है, इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ खरतरगच्छ की पट्टावलियों में होना अस्वाभाविक नहीं, **कुछ वर्षों पहले इसी लघुवृत्ति को हमने मुद्रित अवस्था में पढ़ा था, जिसमें यह छपा हुआ था कि 'अणहिल पाटण के राजा दुर्लभराज ने श्री जिनेश्वरसूरिजी को चैत्यवासियों को जीतने के उपलक्ष्य में 'खरतर' बिरुद प्रदान किया था, वही लघुवृत्ति हमारे पास हस्तलिखित है और इसके कर्त्ता भी वाचक सर्वराज गणि हैं, परन्तु इस लघुवृत्ति की हस्तलिखित वृत्ति में 'खरतर बिरुद' देने की बात कहीं नहीं मिलती और न उपोद्घात छोड़कर जिनदत्तसूरि के जीवन में किसी चमत्कार की बात का ही उल्लेख मिलता है।** (पट्टावली पराग–पृ. 354)

इस संबंध में आचार्य श्री जिनदत्तसूरि निर्मित 'गणधर सार्द्धशतक' को हमने ध्यान पूर्वक पढ़ा है। जिनदत्तसूरिजी ने अपने इस ग्रंथ में 'खरतर विरुद' मिलने का कोई सूचन नहीं किया, विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में निर्मित **सुमतिगणि की 'गणधर सार्द्धशतक की बृहद्वृत्ति' को भी हमने अच्छी तरह पढ़ा है।** उसमें आचार्य जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, बुद्धिसागर, जिनचंद्रसूरि और जिनवल्लभसूरि तथा ग्रन्थकर्त्ता श्री जिनदत्तसूरि के सविस्तार चरित्र दिए गए हैं, चैत्यवासियों के साथ वसतिवास के सम्बन्ध में चर्चा होने की बात सूचित की है, **परन्तु किसी भी राजा द्वारा जिनेश्वरसूरि को कोई बिरूद मिलने की बात नहीं, ऐसी कोई घटना बनी होती तो जिनदत्तसूरिजी 'सार्द्धशतक' के मूल में ही उसका सूचन कर देते पर ऐसा कुछ नहीं किया, न प्राचीन वृत्तिकार श्रीसुमतिगणिजी ने ही 'खरतर बिरुद' की चर्चा की है, इससे निश्चित होता है कि राजा द्वारा 'खरतर बिरुद' प्राप्त होने की बात पिछले पट्टावली लेखकों की गढ़ी हुई बुनियाद है।**

(पट्टावली पराग – पृ. 349)

15. जिनविजयजी के दिये हुए लघुवृत्ति और बृहद्वृत्ति के पाठ

इतना ही नहीं, जिनविजयजी संपादित 'कथाकोषप्रकरण' में लघुवृत्ति के एवं

सुमतिगणिजी की बृहद्वृत्ति के संदर्भ ग्रंथ दिये हैं, उसमें भी 'खरतर बिरुद' की बात नहीं है। देखिये :-

I. सर्वराजगणिजी लघुवृत्ति- (कथाकोष प्रकरण क. परिशिष्ट पृ. 2)

तथा, यैरित्यग्रेतनगाथायां वर्त्तमानं डमरुकमणिन्यायेन, 'अणहिल्लवाडए'-इत्यस्यामपि गाथायां संबध्यते. यैः श्रीजिनेश्वराचार्यैः, अणहिल्लपाटके अणहिल्ल-पाटकाभिधाने पत्तने मध्य(ध्ये) राजसभं राजसभाया मध्ये-'पारे मध्येऽग्रेऽन्तः षष्ठ्या वा' (हैम. 3/1/30) इत्यव्ययीभावसमासः. प्रविश्य स्थित्वा। लोकश्चागमश्च तयोरनुमतं सम्मतं यत्र एवं यथा भवति, कृत्वा नामाचार्यैः सह **विचारं धर्मवादम्.** यैः कीदृशैरित्याह-**वियाररहिएहिं**-विचाररहितैरिति विरोधः। अथ च **विकाररहितैः निर्विकारैरित्यर्थः।** वसतौ निवासोऽवस्थानं साधूनां स्थापितः=प्रतिष्ठितः; स्थापितः=स्थिरीकृत आत्मा । वसतिव्यवस्थापनं चाणहिलपाटकेऽकारि।....(पृ. 2)

अमुमेवार्थं पुनः सविशेषमाह-'वसहिविहारो जेहिं फुडीकओ गुज्जरत्ताए।' वसत्या चैत्यगृह-वासनिकारणेन परगृहस्थित्या सह, विहारः समयभाषया भव्यलोकोपकारादिधिया ग्रामनगरादौ विचरणम्, वसतिविहारः। स यैर्भगवद्भिः स्फुटीकृतः।।सिद्धान्तशास्त्रान्तः परिस्फुरन्नपि लघुकर्मणां प्राणिनां पुरेः प्रकटीकृतः। कस्याम् ! गूर्जरत्रायाम्-सप्ततिसहस्रप्रमाणमण्डलमध्ये। (पृ.-5)

इसमें **निर्विकारी ऐसे आचार्यों के साथ धर्म-वाद अर्थात् विचार-विमर्श करके** गुजरात में वसति मार्ग की स्थापना की जाने की ही बात है, **खरतर बिरुद की बात नहीं है।** इसमें न तो सूराचार्य का उल्लेख है और न ही चैत्यवासिओं की ओर से माया प्रपंच करने की बात है।

II. सुमतिगणिजी बृहद्वृत्ति का संदर्भ ग्रंथ (कथाकोष प्रकरण क.परिशिष्ट-पृ.20)

ततो महाराजेनोक्तम्-'सर्वेषां गुरुणां सप्त सप्त गब्दिका रत्नपटीनिर्मिताः, किमित्यस्मद्गुरुणां नीचैरासने उपवेशनम् ! किमस्माकं गब्दिका न सन्ति?' ततो जिनेश्वरसूरिणोक्तम्-'महाराज! साधूनां गब्दिकोपवेशनं न कल्पते।' राजा - 'किमिति!' श्री जिनेश्वरसूरिः-'महाराज! श्रुणु-

भवति नियतमत्रासंयमः स्याद्विभूषा नृपतिककुद ! एतल्लोकहासश्च भिक्षोः।
स्फुटतर इह सङ्गः सातशीलत्वमुच्चैरिति न खलु मुमुक्षोः सङ्गतं गब्दिकादि।।

इति वृत्तार्थो व्याख्यातः। राज्ञोक्तम्–'कुत्र यूयं निवसत?' सूरिणोक्तम्–'महाराज! विरोधिरुद्धत्वात् कथं स्थानम् ?' राज्ञोक्तम्–'अहो अमात्य! अस्ति करडिहट्टिकामध्ये बृहत्तरमपुत्रगृहम्, तद्दापयितव्यमेषाम्।' तत्क्षणादेव लब्धम्। भूयोऽपि पृच्छति महाराजः :–'भोजनं केन विधिना भवताम् ?' अत्रान्तरे पुरोहितः–'देव किमेषां महात्मनां वयं ब्रूमहे।

'लभ्यते लभ्यते साधु साधु वै यन्न लभ्यते।
अलब्धे तपसो वृद्धिर्लब्धे देहस्य धारणम्।।'

अतः कदाचिदर्द्धोदरपरिपूर्तिः कदाचिदुपवसनमेतेषाम्। राजा सानंदं सविषादं च – 'यूयं कति साधवः स्थ?' पुरोहितः–देव! सर्वेऽप्यमी अष्टादश।' राजा–'एकहस्तिपिण्डेन सर्वेऽपि तृप्ता भविष्यन्ति।' ततो भणितं जिनेश्वरसूरिणा–'महाराज! राजपिण्डो न कल्पते मुनीनामिति पूर्वमेव सिद्धान्तपठनपूर्वकं प्रतिपादितं युष्माकं पुरतः।' ततोऽहो! निःस्पृहत्वममीषां मुनीनामित्युत्पन्ना प्रीतिः। ततो तेन राज्ञा प्रत्यपादि–'तर्हि मदीयमानुषेऽग्रतः स्थिते सुलभा भिक्षा भविष्यति।'

किं बहुना?–इत्थं वादं कृत्वा विपक्षान् निर्जित्य, राजामात्यश्रेष्ठिसार्थवाहप्रभृतिपुरप्रधानपुरुषैः सह भट्टघट्टेषु वसतिमार्गप्रकाशनयशःपताकायमानकाव्यबन्धान् दुर्जनजनकर्णशूलान् साटोपं पठत्सु सत्सु, **प्रविष्टा वसतौ भगवन्तः श्रीजिनेश्वरसूरयः।** एवं गूर्ज्जरत्रादेशे श्रीजिनेश्वरसूरिणा प्रथमं चक्रे चक्रमूर्द्धसु पादमारोप्य वसतिस्थापनेति।

कथाकोष प्रकरण की प्रस्तावना में दिये गये जिनेश्वरसूरिजी संबंधित सुमति गणिजी की बृहत्वृत्ति के इस पाठ में **'प्रविष्टा वसतौ भगवन्तः श्री जिनेश्वरसूरयः'** ऐसा ही पाठ है, **'प्राप्त खरतरबिरुदभगवन्तः श्री जिनेश्वरसूरयः'ऐसा पाठ नहीं है।**

पाटण से प्राप्त गणधरसार्द्धशतक की बृहद्वृत्ति की **हस्तप्रत** में भी 'प्राप्त खरतर बिरुद भगवन्तः जिनेश्वरसूरयः' ऐसा पाठ नहीं है। देखियेः–

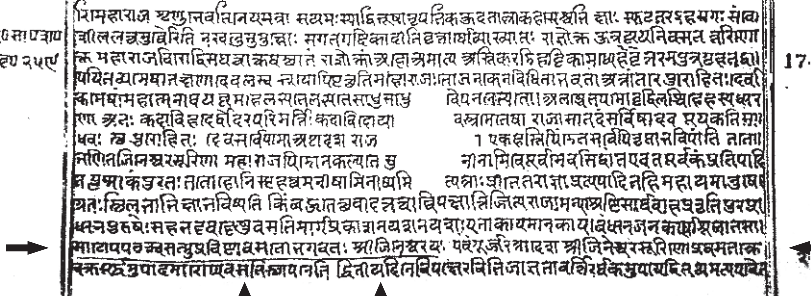

अतः **'खरतरगच्छ का उद्भव'** पुस्तिका के पृ. 17 पर दिया गया **'प्राप्त खरतर बिरुद भगवन्तः श्री जिनेश्वरसूरयः** ऐसा बृहद्वृत्ति का पाठ पृ. 100 से 103 पर दिये गये प्रमाणों से बाधित सिद्ध होता है।

16. आ. श्री **जिनपतिसूरिजी** ने भी **सङ्घपट्टक की बृहद्वृत्ति में खरतर बिरुद की बात नहीं लिखी है।** बल्कि टीका के अन्त में **'सूरिःश्रीजिनवल्लभोऽजनि बुधश्चान्द्रे कुले।'** इस प्रकार 'चांद्रकुल' का ही उल्लेख किया है। उसी तरह **'पंचलिंगी प्रकरण'** की टीका की प्रशस्ति में भी **चान्द्रकुल ही लिखा है।** देखिये–

न रजनिकृतसाफल्यं सदा न नक्षत्र बुधपरिगृहीतम्।
अस्ति कुलं चान्द्रमहो न तमोहत्या येन प्रथितम्।।1।।
तत्र न वियति प्रसितो बुधो नवीनो न सूर्यसहचरितः।
अनिशापतितनयः श्रीजिनेश्वरः सूरिरजनिष्ट।।2।।

टीका की शुरुआत में उन्होंने बाद के निर्देशपूर्वक जिनेश्वरसूरिजी को अनेक विशेषणों से प्रशंसा की है, **परंतु 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का सूचन तक नहीं किया है।** अतः स्पष्ट होता है कि जिनपतिसूरिजी के समय तक 'जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला था' ऐसी मान्यता नहीं थी।

देखिये 'पंञ्चलिङ्गी प्रकरण' की टीका की शुरुआत का पाठः–

'इह हि गुर्जरवसुंधराधिपश्रीदुर्लभराजसदसि महावादिचैत्यवासि–कल्पित–जिनभवनवासपरासनासादिताऽसाधारणविसृत्वरकीर्तिकौमुदीधौतविश्वम्भरा–ऽऽभोगेन, सकलस्वपरसमयपारावारपारदृश्वना, प्रामाणिकपरिषच्छिखामणिना श्रीजिनेश्वरसूरिणा...।

सङ्घपट्टक की टीका की शुरुआत में भी इसी प्रकार से जिनपतिसूरिजी ने जिनेश्वरसूरिजी की अनेक विशेषणों से प्रशंसा की है, **परंतु खरतर बिरुद की प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है।**

17. वि. सं. 1139 में **गुणचंद्रगणिजी** (देवभद्रसूरिजी) रचित **'महावीर चरियं'** की प्रशस्ति–

''साहाइ तस्स चंदे कुलम्मि निप्पडिमपसमकुलभवणं।

आसि सिरिवद्धमाणो मुणिनाहो संजमनिहि व्व।।48।।

मुणिवइणो तस्स हरट्टहाससियजसपसाहियासस्स।
आसि दुवे वरसीसा जयपयडा सूरससिणो व्व।।50।।

भवजलहिवीइसंभंतभवियसंताणतारणसमत्थो।
बोहित्थो व्व महत्थो सिरिसूरिजिणेसरो पढमो।।51।।

गरुसाराओ धवलाउ निम्मला (सुविहिया) साहुसंतई जम्हा,
हिमवंताओ गंगुव्व निग्गया सयलजणपुज्जा।।52।।

अन्नो य पुन्निमायंदसुंदरो बुद्धिसागरो सूरी।
निम्मवियपवरवागरण-छंदसत्थो पसत्थमई।।53।।

एगंतवायविलसिरपरवाइकुरंगभंगसीहाणं।
तेसिं सीसो जिणचंदसूरिनामो समुप्पन्नो।।54।।

इसमें भी **चान्द्रकुल का ही उल्लेख किया है।** परंतु 'खरतर' बिरुद की प्राप्ति के प्राचीन प्रमाण के रूप में इस प्रशस्ति को पेश किया जाता है, जिसके श्लोक नं. 52 में **'खरयरी साहुसंतई'** अथवा **'सुविहिया खरय साहुसंतई'** ऐसा पाठ दिया जाता है। वह प्रक्षिप्त पाठ है, ऐसा नारदपुरी (नारलाई) से प्राप्त हस्तप्रति से पूर्वकाल में सिद्ध किया जा चुका है। (विशेष के लिये देखें-पृ. 22-23)

18. **देवभद्रसूरिजी** द्वारा सं. 1158 में रचित **'कथारत्नकोश'** की प्रशस्ति के श्लोकः-

''**चंदकुले** गुणगणवद्धमाणसिहिवद्धमाणसूरिस्स।
सीसा **जिणेसरो** बुद्धिसागरो सूरिणो जाया।।1।।

ताण जिणचंदसूरि सीसो सिरिअभयदेवसूरी वि।
रवि-ससहर व्व पयडा अहेसि सियगुणमऊहेहिं।।2।।''

19. उन्हीं के द्वारा सं. 1168 में रचित **'पासनाहचरियं'** की प्रशस्ति के श्लोकः-

''तिक्खम्मि वहंते तस्स भयवओ तियसवंदणिज्जम्मि।
चंदकुलम्मि पसिद्धो विउलाए **वइरसाहाए।।**

सिरिवद्धमाणसूरी अहेसि तव-नाण-चरणरयणनिही।

जस्सऽज्ज वि सुमरंतो लोगो रोमंचमुव्वहइ।।

तस्साऽऽसि दोन्नि सीसा जयविक्खाया दिवायर–ससिव्व।
आयरियजिणेसर–बुद्धिसागरायरियनामाणो।।

तेसिं च पुणो जाया सीसा दो महियलम्मि सुपसिद्धा।
जिणचंदसूरिनामो बीओऽभयदेवसूरि त्ति।।''

इन दोनों में भी **चान्द्रकुल का ही उल्लेख किया है। जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद मिलने का बिलकुल निर्देश नहीं किया है।**

20. अभयदेवसूरिजी के शिष्य **वर्धमानसूरिजी ने सं.** 1140 में **'मनोरमाकहा'** की रचना की थी। उसकी प्रशस्ति में इस प्रकार के श्लोक हैं–

'एवं सूरीण परंपराए ता जाव अज्जवइरो त्ति।
साहाए तस्स विमले **चंदकुले** चंदसमलेसो।।1215।।

अप्पडिबद्धविहारो सूरी सोमोव्व जणमणाणंदो।
आसि सिरिवद्धमाणो पवड्ढमाणो गुणगणेहिं।।1216।।

सूरिजिणेसर–सिरिबुद्धिसागरा सागर व्व गंभीरा।
सुरगुरुसुक्कसरिच्छा सहोयरा तस्स दो सीसा।।1217।।

ताण विणेओ सिरिअभयदेवसूरि त्ति नाम संजाओ।
विजियक्खो पच्चक्खो कयविग्गहसंगहो धम्मो।।1219।।

21. उन्होंने ही सं. 1160 में **'ऋषभदेवचरित्र'** की रचना की थी। उसकी प्रशस्ति इस प्रकार हैः–

चंदकुले चंदजसो दुक्करतवचरणसोसिअसरीरो।
अप्पडिबद्धविहारो सूरुव्व विणिग्गयपयावो।।1।।

एणपरिग्गहरहिओ विविहसारंगसंगहो निच्चं।
सयलक्खविजयपयडोऽवि एक्कसंसारभयभीओ।।2।।

इंदिअतुरिअतुरंगमवसिअरणसुसारही महासत्तो।
धम्मारामुल्लूरणमणमक्कडरूद्धवावाचारो।।3।।

खमदमसंजमगुणरोहणो विजिअदुज्जयाणंगो।

आसि सिरिवद्धमाणो सूरि सव्वत्थ सुपसिद्धो।।4।।

सूरिजिणेसरसिरिबुद्धिसायरा सायरुव्व गंभीरा।

सुरगुरुसुक्कसरित्था सहोअरा तस्स दो सीसा।।5।।

वायरणछंदनिग्घंटुकव्वणाडयपमाणसमएसु।

अणिवारिअप्पयारा जाण मई सयलसत्थेसु।।6।।

ताण विणेओ **सिरिअभयदेवसूरित्तिनाम** विक्खाओ।

विजयक्खो पच्चक्खो कयविक्कयसंगहो धम्मो।।7।।

जिणमयभवणब्भंतरगूढपयत्थाण पयडणे जस्स।

दीवयसिहिव्व विमला सूई बुद्धी पवित्थरिआ।।8।।

ठाणाइनवंगाणं पंचासयपमुहपगरणाणं च।

विवरणकरणेण कओ उवयारो जेण संघस्स।।9।।

इक्को व दो व तिण्णि व कहवि तु लग्गेण जइगुणा हुंति।

कलिकाले जस्स पुणो वुच्छं सव्वेहिवि गुणेहिं।।10।।

सीसेहिं तस्स रइअं चरिअमिणं **वद्धमाणसूरीहिं।**

होउ पढंतसुणंताण कारणं मोक्खसुकखस्स।।11।।

इन दोनों प्रशस्तिओं में भी **वर्धमानसूरिजी** ने **अभयदेवसूरिजी को चान्द्रकुल के ही बताये हैं।**

22. वि. सं. 1292 में **जिनपाल उपाध्याय** ने '**षट्स्थानक प्रकरण**' की टीका लिखी थी। उसकी प्रशस्ति में भी जिनेश्वरसूरिजी को चान्द्रकुल के अवतंस (आभूषण), वादिविजेता तथा तर्कशास्त्र प्रणेता के रूप में बताया है, **परंतु 'खरतर' बिरुद प्राप्ति की बात नहीं लिखी है।** देखिये-

जिनेश्वरश्चान्द्रकुलावतंसो दुर्वारवादिद्विपकेसरीन्द्रः।

सन्नीतिरत्नाकरमुख्यतर्क-ग्रन्थप्रणेता समभून्मुनीशः।।1।।

23. तथा जिनपालोपाध्यायजी ने ही सं. 1293 में '**द्वादशकुलक**' की टीका लिखी थी। उसकी प्रशस्ति में जिनेश्वरसूरिजी को वसतिवास के स्थापक के रूप में बताया है, '**परंतु 'खरतर' बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है।** उसकी

प्रशस्ति का श्लोक इस प्रकार हैः-

श्रीमच्चांद्रकुलांबरैकतरणेः श्रीवर्द्धमानप्रभोः,
शिष्यः **सूरिजिनेश्वरो** मतिवचः प्रागल्भ्यवाचस्पतिः।
आसीद्दुर्लभराजसदसि **प्रख्यापितागारवद्-**
वेश्मावस्थिति रागमज्ञ सुमुनिव्रातस्य शुद्धात्मनः।।1।।

24. सं. 1294 में पद्मप्रभसूरिजी ने **'मुनिसुव्रत चरित्र'** की रचना की। उसकी प्रशस्ति में भी 'खरतर' बिरुद प्राप्ति की बात नहीं है। देखियेः-

पूर्वं **चन्द्रकुले** बभूव विपुले श्रीवर्द्धमान प्रभुः,
सूरिर्मङ्गलभाजनं सुमनसां सेव्यः सुवृत्तास्पदम्।
शिष्यस्तस्य जिनेश्वरःसमजनि स्याद्वादिनामग्रणीः,
बन्धुस्तस्य च बुद्धिसागर इति त्रैविद्यपारङ्गमः।।1।।

सूरिः श्री जिनचन्द्रोऽभयदेवगुरुर्नवाङ्गवृत्तिकरः।
श्री जिनभद्रमुनीन्द्रो जिनेश्वरविभोस्त्रयः शिष्याः।।2।।

चक्रे श्रीजिनचन्द्रसूरिगुरुभिर्धुर्यैः प्रसन्नाभिधस्तेन
ग्रंथचतुष्टयीस्फुटमतिः श्रीदेवभद्रप्रभुः।
देवानन्दमुनीश्वरोऽभवदतश्चारित्रिणामग्रणीः,
संसाराम्बुधिपारगामिजनताकामेषु कामं सखा।।3।।

यन्मुखावासवास्तव्या, व्यवस्यति सरस्वती।
गन्तुं नान्यत्र स न्याय्यः, श्रीमान्देवप्रभप्रभुः।।4।।

मुकुरतुलामङ्कुरयति वस्तुप्रतिबिम्बविशदमतिवृत्तम्।
श्रीविबुधप्रभचित्तं न विधत्ते वैपरीत्यं तु।।5।।

तत्पदपद्मभ्रमरश्चक्रे पद्मप्रभश्चरितमेतद्।
विक्रमतोऽतिक्रान्ते वेदग्रहरवि 1294 मिते समये।।6।।

25. सं. 1328 में लक्ष्मीतिलक उपाध्यायजी ने प्रबोधमूर्ति गणिजी विरचित 'दुर्गपदप्रबोध' ग्रंथ पर वृत्ति लिखी। उसकी प्रशस्ति में 'चान्द्रकुलेऽजनि गुरुजिनवल्लभाख्यो' लिखा है। तथा जिनदत्तसूरिजी से 'विधिपथ' सुखपूर्वक विस्तृत हुआ ऐसा लिखा है। उसमें 'खरतरगच्छ' की तो कोई बात ही नहीं

लिखी है। देखें–

चान्द्रे कुलेऽजनि गुरुजिनवल्लभाख्योऽर्हच्छासनं प्रथयिताऽद्भूतकृच्चरितः। तच्छिष्यमौलिजिनदत्तगुरुप्रवीरश्चक्रेऽखिलं विधिपथं सुवहं समन्तात्।।2।।

तच्छिष्यो जिनचन्द्रसूरिरुदगाच्चिरनन्तैर्गुणैः,
सौन्दर्यादिभिरुच्यते स्म कृतिभिर्यः पञ्चविंशो जिनः।
तत्पट्टाब्जसितच्छदो जिनपतिः सूरिः प्रतापाद्भुतो,
माद्यद्वादिगजेन्द्रसिंह उदयत्सौभाग्यभाग्यावधिः।।3।।

ज्ञानस्वर्द्रुभवैर्वरस्तवसुमैः सत्सौरभैरद्भुतैस्तत्काल–
ग्रथितैर्जिनौकसि जिनान् येऽभ्यर्चयन्त्यन्वहम्।
यत्कीर्त्तिप्रसवस्रजा तु जनता भूषत्यशेषा दिशस्ते
श्रीसूरिजिनेश्वरा युगवरास्तत्पट्टमध्यासते।।4।।

वृत्तेर्दुर्गपदप्रबोधरसवत्येषा जगत्यै भृशं निःस्वेनापि
धिया व्यधायि सुगुरोरस्य प्रसादान्मया।
तन्निःशेषविशेषबोधनिपुणैरेषाऽधिकं सस्पृहैः
सद्बुद्ध्यङ्गविवृद्धये रविविभा यावन्मुदा स्वाद्यताम्।।5।।

षट्तर्कागमशब्दलक्ष्ममुखसद्विद्याब्धिकुम्भोद्भवैर्यैः
काव्यं मुखशुक्तिजं कृतधियां निर्दूषणं सद्गुणम्।
दीप्रं चाऽपि कृतं सतामधिहृदं हारायते तैरसौ,
श्रीलक्ष्मीतिलकाभिषेकतिलकैर्ग्रन्थो ह्युदज्वल्यत।।6।।

विक्रमनृपवर्षेऽष्टाविंशत्यधिके त्रयोदशशतेऽसौ 1328।
पूर्ण्णः शुच्यां प्रतिपदि राधेऽश्विन्यां गुरौ वारे।।7।।

चतुःसप्ततिशत्यस्यैकनवत्यधिका मितिः ।
चतुः सप्ततिमाधत्तां....... मतां मताम् (?) ।।8।।

प्रशस्तिग्रंथाग्रं 7491 ।।छ।।

26. सं. 1305 में जिनपालोपाध्यायजी ने **'खरतरगच्छालङ्कार गुर्वावली'** लिखी थी। **उसमें भी खरतर बिरुद प्राप्ति का उल्लेख नहीं किया है। वह सिंघी प्रकरण माला से प्रकाशित हो चुकी है।** देखियेः–

"गो म ध्व ज:" । स जटाधरस्तुष्टः । भक्तिर्बह्वी कृता । ततस्तेनैव संघातेन चलिताः॥ क्रमेणा[१] हि ल प त ने प्राप्ताः । उत्तरिता मण्डपिकायाम् । तस्मिन् प्रस्तावे तत्र प्राकारो नास्ति, सुसाधुभक्तः श्रावकोऽपि[२] नाऽस्ति यः स्थानादि याच्यते । तत्रोपविष्टानां घर्मो निकटीभूतः । ततः पण्डितजिनेश्वरेणोक्तम्[३]-'भगवन्नुपविष्टानां किमपि कार्यं न भविष्यति' । 'तर्हि सुशिष्य, किं क्रियते ?' । 'यदि यूयं वदथ तदोच्चैर्गृहं दृश्यते तत्र व्रजामि' । व्रज । ततो वन्दित्वा सुगुरुपादपद्मान् गतस्तत्र । तच्च गृहं श्रीदुर्लभराज्ञः पुरोहितस्य[४]। तस्मिन् प्रस्तावे स उपरोहितः शरीराभ्यङ्गं कारयन्न्स्तिष्ठति, तस्याऽग्रे स्थित्वा

श्रिये कृतनतानन्दा विशेषवृषसङ्गताः । भवन्तु तव विप्रेन्द्र ! ब्रह्म-श्रीधर-शङ्कराः ॥ [२]

इत्याशिर्वादं पठितवान् । ततस्तेन तुष्टो वर्क्ति । विचक्षणो व्रती कश्चित् । तस्यैव गृहमध्यप्रदेशे छात्रान वेदपाठपरिचिन्तनं कुर्वतः श्रुत्वा 'इत्थं मा भणत वेदपाठान्' । 'किं तर्हि ?' 'इत्थम्' । ततः पुरोहितेनोक्तम्-'अहो ! शूद्राणां वेदेऽधिकारो नास्ति' । ततः पण्डितेनोक्तम्-'वयं चतुर्वेदिनो ब्राह्मणाः, सूत्रतोऽर्थतश्च' । ततस्तुष्टः पुरोहितः । 'कस्माद् देशादागताः ?' 'ढि ल्ली दे शा त्' । 'कुत्र स्थिताः स्थ ?' [÷शुङ्कशालायाम् । अन्यत्र स्थानं न लभ्यते, विरोधिरुद्धत्वात् । मदीया गुरवः सन्ति सर्वे] अष्टादश यतिनः' । 'चतुःशालमद्गृहे परिच्छदां बद्ध्वा, एकस्मिन् द्वारे प्रविश्यैकस्यां शालायां तिष्ठतः(थ) सर्वे सुखेन । भिक्षावेलायां मदीये मानुषेऽग्रे कृते ब्राह्मणगृहेषु सुखेन भिक्षा भविष्यति' । ततः प त्त ने[१४] लोके उच्छलिता वार्ता 'वसतिपाला यतयः समायाताः' । ततो देवगृहनिवासिव्रतिभिः श्रुतम् । तैर्विदितं नैषामागमनं श्रेयस्करम्[१५] । कोमलो व्याधिर्यदि च्छिद्यते तदा कुशलम् । ते चाधिकारिपुत्रान् पाठयन्ति । तैश्च वर्षोपलादि[१६]दानेन ते चट्टाः सुखिनः कृत्वा भणिताः-'युष्माभिर्लोकमध्ये भणनीयम्-"एते केचन परदेशान्मुनिरूपेण श्रीदुर्लभराजराज्यहेरिका आगताः सन्ति"' । सा च वार्ता सर्वजने प्रवृत्ता । सा च प्रसरन्ती राजसभायामपि[१७] प्रवृत्ता । राज्ञाऽभाणि-'यद्यत्रैवंविधाः क्षुद्रा आयाताः, तर्हि तेषामाश्रयः केन दत्तः ?' केनाऽप्युक्तम्-'देव ! तवैव गुरुणा स्वगृहे धारिताः' । ततो राज्ञोक्तमाकारय तम् । आकारित उपरोहितः, भणितश्च-'यद्येवंविधा एते किमिति स्थानं दत्तम् ?' । तेन भणितम्-'केनेदं दूषणमुद्भावितम् ?, यद्येषां दूषणमस्ति, तदा लक्षपारुत्थैः कर्पटिकाः प्रक्षिप्ताः । यद्येषां मध्ये दूषणमस्ति तदा छुपन्तु तां भणितारः' । परं न सन्ति केचन । ततो भणितं राज्ञः पुर उपरोहितेन-'देव ! ये मद्गृहे सन्ति ते दृष्टा मूर्तिमन्त एव धर्मपुञ्जा लक्ष्यन्ते न तेषां दूषणमस्ति' । तत इमां वार्तामाकर्ण्य सर्वैरपि सूराचार्यप्रभृतिभिः परिभावितम्-'वादे निर्जित्य निस्सारयिष्यामः परदेशागतान् मुनीन्'[१९] । ततस्तैरुपरोहितं उक्तः-'स्वगृहधृतयतिभिः सह विचारं कर्तुकामा आस्महे । तेषां पुरस्तेनोक्तम्-'तान् पृष्ट्वा यत्स्वरूपं तद्भणिष्यामि' । तेनापि स्वसदने गत्वा भणितास्ते-'भगवन्तो ! विपक्षाः श्रीपूज्यैः सह विचारं कर्तुं समीहन्ते' । तैरुक्तम्-'युक्तमेव, परं त्वया न भेतव्यम्' । इदं भणितव्यास्ते-'यदि यूयं तैः सह विवदितुकामास्तदा ते श्रीदुर्लभराजप्रत्यक्षं यत्र भणिष्यथ तत्र विचारं करिष्यन्ति' । तैश्चिन्तितं सर्वेऽधिकारिणोऽस्माकं वशंगता न तेभ्यो भयम्, भवतु राजसमक्षं विचारः । ततोऽस्मिन् दिने पञ्चाशरीयबृहद्देवगृहे विचारो भविष्यतीति निवेदितं सर्वेषां पुरः । उपरोहितेनाप्येकान्ते नृपो भणितः-'देव !

१'अनघिल' इति आदर्शे । २ श्राद्धोऽपि । ३ 'पण्डित' शब्दो नास्ति प्र० । ४ नास्ति पदमेतत् प्र० । ५ प्र० °राजपुरोहितस्य । ६ मूलादर्शे 'उपरोहित' इति सर्वत्र । ७वो भवन्तु च । ८ तुष्टश्चित्ते । ९ °पादपरावर्तनं । १० पदान् । ११ किं नहीत्थम् । १२ पदमिदं नास्ति प्र० । १३ प्र० 'स तुष्टः' इत्येव पदम् । ÷ कोष्ठकान्तर्गता पङ्क्तिः पतिता मूलादर्शे, प्रत्यन्तरादत्रानुसन्धिता । १४ 'पत्तने' नास्ति प्र० । १५ सुखकरम् । १६ मूलादर्शे 'वर्षोलकादि' । १७ 'राजकुले प्रसृता' इत्येव प्र० । १८ तत उक्तं राज्ञोऽग्रे । १९ 'मुनीन्' नास्ति प्र० ।

आगन्तुकमुनिभिः सह स्थानस्थिता मुनयो विचारं विधातुकामास्तिष्ठन्ति। स च विचारो न्यायवादिराजप्रत्यक्षं क्रियमाणः शोभते। ततः पूज्यैः प्रत्यक्षैर्भवितव्यं विचारप्रस्तावे प्रसादं कृत्वा'। ततो राज्ञाऽभाणि–'युक्तमेव कर्तव्यमस्माभिः'।

ततश्चिन्तिते दिने तस्मिन्नेव देवगृहे श्री सूराचार्य प्रभृतिचतुरशीतिराचार्याः स्वविभूत्यनुसारेणोपविष्टाः। राजाऽपि प्रधानपुरुषैराकारितः। सोऽप्युपविष्टः। राज्ञोक्तम्–'उपरोहित! आत्मसम्मतानाकारय'। ततः स तत्र गत्वा 'विज्ञपयति श्रीवर्धमानसूरीन्–'सर्वे मुनीन्द्रा उपविष्टाः सपरिवाराः। श्रीदुर्लभराजश्च पञ्चासरीयदेवगृहे युष्माकमागमनमालोकयते। तेऽप्याचार्याः पूजितास्ताम्बूलदानेन राज्ञा'। तच्छ्रुत्वोपरोहितमुखात् पश्चाच्छ्रीवर्द्धमानसूरयः श्रीसुधर्मस्वामिजम्बूस्वामिप्रभृतिचतु......न् युगप्रधानान् सूरीन्+ हृदये धृत्वा पण्डितश्रीजिनेश्वरप्रभृतिकतिचिद्गीतार्थसुसाधुभिः सह चलिताः सुशकुनेन। तत्र प्राप्ताः, नृपतिना दर्शिते स्थान उपविष्टाः, पण्डितजिनेश्वरदत्तनिषद्यायाम्। आत्मना च गुरुभणितोचितासने गुरुपादान्त उपविष्टः। राजा च ताम्बूलदानं दातुं प्रवृत्तः। ततः सर्वलोकसमक्षं भणितवन्तो गुरवः–'साधूनां ताम्बूलग्रहणं न युज्यते राजन्!'। यत उक्तम्–

ब्रह्मचारियतीनां च विधवानां च योषिताम्। ताम्बूलभक्षणं विप्रा! गोमांसान्न विशिष्यते॥[३]

ततो विवेकिलोकस्य समाधिर्जाता गुरुषु विषये। गुरुभिर्भणितम्–'एष पण्डितजिनेश्वर उत्तरप्रत्युत्तरं यद्भणिष्यति तदस्माकं सम्मतमेव।' सर्वैरपि भणितं 'भवतु'। ततो मुख्यसूराचार्येणोक्तम्–'ये वसतौ वसन्ति मुनयस्ते षड्दर्शनबाह्याः प्रायेण। षड्दर्शनानीह क्षपणकजटिप्रभृतीनि–इत्यर्थनिर्णयाय नूतनवादस्थलपुस्तिका वाचनार्थं गृहीता करे। तस्मिन् प्रस्तावे "भाविनि भूतवदुपचारः" इति न्यायाच्छ्रीजिनेश्वरसूरिणा भणितम्–'श्रीदुर्लभमहाराज! युष्माकं लोके किं पूर्वपुरुषविहिता नीतिः प्रवर्तते, अथवा आधुनिकपुरुषदर्शिता नूतना नीतिः?'। ततो राज्ञा भणितम्–'अस्माकं देशे पूर्वजभणिता राजनीतिः प्रवर्तते नाऽन्या'। ततो जिनेश्वरसूरिभिरुक्तम्–'महाराज! अस्माकं मतेऽपि यद् गणधरैश्चतुर्दशपूर्वधरैश्च यो दर्शितो मार्गः स एव प्रमाणीकर्तुं युज्यते, नाऽन्यः'। ततो राज्ञोक्तं युक्तमेव। ततो जिनेश्वरसूरिभिरुक्तम्–'महाराज! वयं दूरदेशादागताः, पूर्वपुरुषविरचितस्वसिद्धान्तपुस्तकवृन्दं नानीतम्। एतेषां मठेभ्यो महाराज! यूयमानयत पूर्वपुरुषविरचितसिद्धान्तपुस्तकगण्डलकं येन मार्गामार्गनिश्चयं कुर्मः'। ततो राज्ञोक्तास्ते–'युक्तं वदन्त्येते, स्वपुरुषान् प्रेषयामि, यूयं पुस्तकसमर्पणे निरोपं दद्ध्वम्'। ते च जानन्त्येषामेव पक्षो भविष्यतीति, तूष्णीं विधाय स्थितास्ते। ततो राज्ञा स्वपुरुषाः प्रेषिताः–शीघ्रं सिद्धान्तपुस्तकगण्डलकमानयत। शीघ्रमानीतम्। आनीतमात्रमेव छोटितम्। तत्र देवगुरुप्रसादाद् दशवैकालिकं चतुर्दशपूर्वधरविरचितं निर्गतम्। तस्मिन् प्रथममेवेयं गाथा निर्गता–

अन्नट्ठं पगडं लेणं, भइज्ज सयणासणं। उच्चारभूमिसंपन्नं, इत्थीपसुविवज्जियं॥ [४]

एवंविधायां वसतौ वसन्ति साधवो न देवगृहे। राज्ञा भावितं युक्तमुक्तम्। +सर्वेऽधिकारिणो विदन्ति निरुत्तरी-

१ 'विचारं करिष्यन्ति' इत्येव प्र०। २ 'पूज्याः प्रत्यक्षा भवितव्यं' इति मूला०। + दण्डान्तर्गतपाठस्थाने प्र० 'विज्ञप्ता वर्द्धमानाचार्याः सर्वे उपविष्टाः सन्ति' इत्येव वाक्यविन्यासः। ३ 'पश्चात्' नास्ति प्र०। + प्र० 'सुधर्मस्वाम्यादियुगप्रधानान्' इत्येव। ४ जिनेश्वरगणि प्रभृति°। ५ जिनेश्वरगणिदत्त°। ६ 'पुस्तिका करे धृता' इत्येव प्र०। ७ 'प्रस्तावे जिनेश्वरसूरिणा भणितं भो राजन्' इत्येव प्र०। ८ 'पूर्वराजनीतिः' प्र०। ९ 'जिनेश्वरेणोक्तं राजन्'। १० °विरचितानि पुस्तकादीनि नानीतानि। ११ °सिद्धान्तपुस्तकं येन मार्गनिश्चयं कुर्मः। १२ 'ततो' नास्ति। १३ तूष्णीं स्थिताः। १४ 'राज्ञा स्वपुरुषाः प्रेषिताः। शीघ्रं पुस्तकान्यानीतानि। छोटितानि' इत्येष पाठः प्रत्यन्तरे। १५ तत्रेयं गाथा। + एतच्चिह्नाङ्कितपाठस्थाने प्र०–'सर्वैरधिकारिपुरुषैर्विदितं निरुत्तरीभूता अस्मद्गुरवः। ततः सर्वे राजप्रत्यक्षं गुरुत्वेन वर्द्धमानसूरयोऽङ्गीकृताः। येनास्मान् बहुमन्यते राजा'। इत्येषा पंक्तिः।

भृता अस्माकं गुरवः। ततः सर्वेऽधिकारिणः श्रीकरणप्रभृतयः पटवपर्यन्ता वदन्ति प्रत्येकमस्माकमेते गुरव इति गुरुनिवेदनं राजप्रत्यक्षं कुर्वन्ति। येन राजाऽस्मान् बहु मन्यते, अस्माकं कारणेन गुरूनपि। राजा च न्यायवादी। तस्मिन् प्रस्तावे श्रीजिनेश्वरसूरिभिरुक्तम्–'महाराज! कश्चिद्गुरुः श्रीकरणाधिकारिणः, कश्चिन्मन्त्रिणः, *किं बहुना कश्चित्पटवानाम्। या नाटिः (?) सा कस्य सम्बन्धिनी भवति?' राज्ञोक्तं सर्दाया। 'तर्हि महाराज! कः कस्याऽपि सम्बन्धी जातो* वयं न कस्याऽपि[1]'। ततो राज्ञाऽऽत्मसम्बन्धिनो गुरवः कृताः। ततो राजा भणति–'सर्वेषां गुरूणां सप्त सप्त गद्दिका रत्नपटीनिर्मिताः, किमित्यस्मद्गुरूणां नीचैरासने उपवेशनं, किमस्माकं गद्दिका न सन्ति?'। ततो जिनेश्वरसूरिणा भणितम्–'महाराज! साधूनां गद्दिकोपवेशनं न युज्यते। यत उक्तम्–

भवति नियतमेवासंयमः स्याद्विभूषा, नृपतिककुद! एतल्लोकहासश्च भिक्षोः।
स्फुटतर इह सङ्गः सातशीलत्वमुच्चैरिति न खलु मुमुक्षोः सङ्गतं गद्दिकादि॥ [५]

इति वृत्तार्थः कथितः। राज्ञोक्तम्–'कुत्र यूयं निवसत?' तैरुक्तम्–'महाराज! कथं स्थानं विपक्षेषु सत्सु। अहो ऽपुत्रगृहं करडिहट्टी मध्ये बृहत्तरमस्ति, तत्र वसितव्यम्।' तत्क्षणादेव लब्धम्। 'युष्माकं भोजनं कथम्?' तदपि पूर्ववद्दुर्लभम्। 'यूयं कति साधवः सन्ति?'–'महाराज! अष्टादश'। 'एकहस्तिपिण्डेन सर्वे तृप्ता भविष्यन्ति'। ततो भणितं जिनेश्वरसूरिणा–'महाराज! राजपिण्डो न कल्पते, साधूनां निषेधः कृतो राजपिण्डस्य'[4]। 'तर्हि मम मानुषेऽग्रे भूते भिक्षाऽपि सुलभा भविष्यति'। ततो वादं कृत्वा विपक्षान् निर्जित्य राज्ञा राजलोकैश्च सह वसतौ प्रविष्टाः। वसतिस्थापना कृता प्रथमं गूर्जरत्रादेशे।

३. द्वितीयदिनेऽचिन्ति[5] विपक्षैरुपायद्वयं निरर्थकं जातम्, अन्योऽपि निस्सारणोपायो मन्त्र्यते। पट्टराज्ञीभक्तो राजा विद्यते, सा च यद्भणति तत् करोति। सर्वेऽप्यधिकारिणः स्वगुरु-स्वगुरुवचनेनाम्रकदलीफलद्राक्षादिफलभृतभाजनान्याभरणयुक्तप्रधानवसनादीनि च ढौकनानि गृहीत्वा[6] गता राज्ञीसमीपे। तस्या अग्रे वीतरागस्येव बलिविरचनं चक्रिरे। राज्ञी च तुष्टा प्रयोजनविधानेऽभिमुखीभूता। तस्मिन्नेव प्रस्तावे राज्ञः प्रयोजनमुपस्थितम्। राज्ञीसमीपे ततो ढिल्लीदेशसम्बन्धी पुरुष आदेशकारी राज्ञा तत्र प्रेषितः-इदं प्रयोजनं राज्या निवेदय। देव! निवेदयामीति भणित्वा ‡शीघ्रं गतः। राजप्रयोजनं निवेदितं राज्याः। अनेकेऽधिकारिणो नानाढौकनिकाश्च विलोक्य तेन चिन्तितम्–'ये मम देशादागता आचार्यास्तेषां निस्सारणोपायः संभाव्यते, परं मयाऽपि किञ्चित्तेषां पक्षपोषकं राज्ञः पुरो भणनीयम्'। ‡गतस्तत्र। 'देव! प्रयोजनं निवेदितं भवताम्, परं देव! बृहत् कौतुकं तत्र गतेन दृष्टम्'। 'कीदृशं भद्र?'। 'राज्ञी अर्हद्रूपा जाता, यथा[7]ऽर्हतामग्रे बलिविरचनं क्रियत एवं राज्या अप्यग्रे[7]'। राज्ञा चिन्तितम्–'ये मया न्यायवादिनो गुरुत्वेनाङ्गीकृताः, अद्यापि तेषां पृष्ठिं न मुञ्चन्ति'। राज्ञा भणितः सोऽपि पुरुषः–'शीघ्रं गच्छ राज्ञीपार्श्वे[8], गत्वा भणनीयम्–राजा भाणयति राज्ञीं 'यद्दत्तं भवत्या अग्रे तन्मध्यादेकमपि पूगीफलं यदि लास्यसि तदा न त्वं मम नाऽहं तव' इति श्रुत्वा भीता राज्ञी, भणितं च 'भो! यद् येनाऽऽनीतं तत्तेन स्वगृहे नेतव्यम्; मम नास्ति प्रयोजनम्'। सोऽप्युपायो निरर्थको जज्ञे।

४. चतुर्थ उपायश्चिन्तितः–यदि राजा देशान्तरीयमुनीन्द्रान्[10] बहु मंस्यते तदा सर्वाणि देवसदनानि शून्यानि मुक्त्वा देशान्तरेषु गमिष्यामो वयम्। केनापि[11] राज्ञो निवेदितम्। राज्ञाऽभाणि 'यदि तेभ्यो न रोचते तदा गच्छन्तु[12]'। देव-

* एतच्चिह्नान्तर्गतो वाक्यविन्यासो नास्ति प्र०। १ प्र० परं वयं न कस्यापि सम्बन्धिनः। २ 'आचार्याणां'। ३ 'तद्देयम्'। ४ जिनेश्वरेणोक्तं राजपिण्डो न कल्पते। ५ 'चिन्तितः'। ६ 'लात्वा'। ‡ तारकान्तर्गतः पाठो नास्ति प्र०। ७–७ 'बलिढौकनेनेति' इत्येव पदम्। ८ 'समीपे'। ९ 'पूगीफलं न ग्राह्यं यदि'। १० देशान्तरादागतान् मुनीन् मंस्यते। ११ नास्ति प्र० 'केनापि'। १२ 'राज्ञोक्तं गच्छन्तु' इत्येव प्र०।

इस संदर्भ ग्रंथ में 'खरतर' बिरुद प्रदान की बात ही नहीं लिखी है। महो. **विनयसागरजी ने 'खरतरगच्छ के बृहद् इतिहास'** में इसका पूरा अनुवाद किया है, उसमें वाद विजय एवं वसति-मार्ग स्थापन का पृ. 7 पर अनुवाद दिया है। देखिये-

इस प्रकार इस पद्य का अर्थ राजा को सुनाया। राजा ने पूछा-'आप कहाँ निवास करते हैं?' सूरिजी ने कहा-'महाराज! जिस नगर में अनेक विपक्षी हों, वहाँ स्थान की प्राप्ति कैसी?' उनका यह उत्तर सुनकर राजा ने कहा-'नगर के करडि हट्टी नामक मुहल्ले में एक वंशहीन पुरुष का बहुत बड़ा घर खाली पड़ा है, उसमें आप निवास करें।' राजा की आज्ञा से उसी क्षण वह स्थान प्राप्त हो गया। राजा ने पूछा-'आपके भोजन की क्या व्यवस्था है?' सूरिजी ने उत्तर दिया-'महाराज! भोजन की भी वैसी ही कठिनता है।' राजा ने पूछा-'आप कितने साधु हैं?' सूरिजी ने कहा-'अठारह साधु हैं।' राजा ने पुनः कहा-'एक हाथी की खुराक में आप सब तृप्त हो सकेंगे?' तब सूरिजी ने कहा-'महाराज! साधुओं को राजपिण्ड कल्पित नहीं है। राजपिण्ड का शास्त्र में निषेध है।' राजा बोला-'अस्तु, ऐसा न सही। भिक्षा के समय राज कर्मचारी के साथ रहने से आप लोगों को भिक्षा सुलभ हो जायेगी।' फिर वाद-विवाद में विपक्षियों को परास्त करके राजा और राजकीय अधिकारी पुरुषों के साथ उन्होंने वसति में प्रवेश किया। इस प्रकार प्रथम ही प्रथम गुजरात में वसति मार्ग की स्थापना हुई।

इस संदर्भ ग्रंथ में 'खरतर' बिरुद प्रदान की बात ही नहीं लिखी है तथा **स्वयं जिनपीयूषसागरसूरिजी** की **'खरतरगच्छ का उद्भव'** पृ. 5 से 13 तक में इसका अनुवाद दिया है। उसमें भी खरतर बिरुद की बात नहीं लिखी है। वाद-विजय एवं वसतिमार्ग स्थापना विषयक अनुवाद इस प्रकार दिया है कि-'विवाद-विवाद में विपक्षियों को परास्त करके अन्त में राजा और राजकीय अधिकारी पुरुषों के साथ वर्धमान सूरिजी, जिनेश्वरसूरिजी आदि ने सर्वप्रथम गुजरात में वसति में प्रवेश किया और सर्वप्रथम गुजरात में वसति-मार्ग (युगप्रधानाचार्य-गुर्वावली, पृ. 3) की स्थापना हुई।'

इस प्रकार गुर्वावली का पूरा संदर्भ देकर जिनपीयूषसागरसूरिजी पृ.14 पर लिखते हैं-

''जिनेश्वरसूरिजी की स्पष्टवादिता, आचार-निष्ठा तथा प्रखर तेजस्विता को

देखकर ही उन्हें खरतर बिरुद प्रदान किया‘खरतर’ सम्बोधन से सम्बोधित किया गया।’’

समझ में नहीं आता है कि, जब पूरे ग्रंथ में वाद का वर्णन मिलता है परंतु राजा ने **खरतर बिरुद दिया हो अथवा ‘अहो! खरतरा यूयं’ इस प्रकार संबोधन किया हो, ऐसा एक बार भी ‘खरतर’ शब्द का प्रयोग उसमें नहीं मिलता है, तो उस ग्रंथ का प्रमाण देकर खरतर बिरुद की सिद्धि कैसे कर सकते हैं?**

राजा ने जो-जो वाक्य उच्चरे, उनको पीछे के पृ. 110 से 112 मूल संदर्भ ग्रंथ में **Underline किये हैं** तथा सुगमता हेतु संकलित करके यहाँ पर दिये है। इसके अवलोकन से पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि **‘गुर्वावली’ (सं. 1305) तक खरतर बिरुद की कोई बात नहीं मिलती है।**

1. राज्ञाऽभाणि-**‘यद्यत्रैवंविधाः क्षुद्रा आयाताः, तर्हि तेषामाश्रयः केन दत्तः?**... ततो राज्ञोक्तमाकारय तम्।
2. आकारित पुरोहितः, भणितश्च-**‘यद्येवंविधा एते किमिति स्थानं दत्तम्?**
3. ततः पूज्यैः प्रत्यक्षैर्भवितव्यं विचारप्रस्तावे प्रसादं कृत्वा। ततो राज्ञाऽभाणि-**युक्तमेव कर्तव्यमस्माभिः।**
4. राज्ञोक्तम्-**‘पुरोहित! आत्मसम्मतानाकारय’।**
5. ततो राज्ञा भणितम्-**‘अस्माकं देशे पूर्वजवर्णिता राजनीतिः प्रवर्तते नाऽन्या।** ततो जिनेश्वरसूरिभिरूक्तम्-‘महाराज ! अस्माकं मतेऽपि यद् गणधरैश्चतुर्दशपूर्वधरैश्च यो दर्शितो मार्गः स एव प्रमाणीकर्तुं युज्यते, नाऽन्यः। ततो राज्ञोक्तं **युक्तमेव।**
6. ततो राज्ञोक्तास्ते-**‘युक्तं वदन्त्येते, स्वपुरुषान् प्रेषयामि, यूयं पुस्तक-समर्पणे निरोपं ददध्वम्।**
7. राज्ञा भावितं **युक्तमुक्तम्।**
8. या नाठिः (?) सा कस्य सम्बन्धिनी भवति? राज्ञोक्तं **मदीया**
9. ततो राजा भणति-**सर्वेषां गुरुणां सप्त सप्त गब्दिका रत्नपटीनिर्मिताः**

किमित्यस्मद्गुरुणां नीचैरासने उपवेशनं, किमस्माकं गब्दिका न सन्ति?

10.राज्ञोक्तम्–**कुत्र यूयं निवसत?** तैरुक्तम् – 'महाराज! कथं स्थानं विपक्षेषु सत्सु। **अहोऽपुत्रगृहं करडि हट्टी मध्ये बृहत्तरमस्ति, तत्र वसितव्यम्।** 'तत्क्षणादेव लब्धम्। **युष्माकं भोजनं कथम्?** तदपि पूर्ववद्दुर्लभम्। **यूयं कति साधवः सन्ति?** – महाराज! अष्टादश'।**'एकहस्तिपिण्डेन सर्वे तृप्ता भविष्यन्ति'।** ततो भणितं जिनेश्वरसूरिणा– महाराज! राजपिण्डो न कल्पते, साधूनां निषेधः कृतो राजपिण्डस्य'। **'तर्हि मम मानुषेऽग्रे भूते भिक्षाऽपि सुलभा भविष्यति'।** ततो वादं कृत्वा विपक्षान् निर्जित्य राज्ञा राजलोकैश्च सह वसतौ प्रविष्टाः। वसतिस्थापना कृता प्रथमं गूर्जरत्रादेशे।

11. राज्ञा तत्र प्रेषितः– **इदं प्रयोजनं राज्ञ्या निवेदय।**

12. गतस्तत्र। 'देव! प्रयोजनं निवेदितं भवताम्, परं देव! बृहत् कौतुकं तत्र गतेन दृष्टम्'। **'कीदृशं भद्र?'**।

13. राज्ञा चिन्तितम्–**'ये मया न्यायवादिनो गुरुत्वेनाऽङ्गीकृताः, अद्यापि तेषां पृष्ठिं न मुञ्चन्ति'।**

14. राज्ञा भणितः सोऽपि पुरुषः–**शीघ्रं गच्छ राज्ञीपार्श्वे, गत्वा भणनीयम्– राजा भाणयति राज्ञीं 'यद्दत्तं भवत्या अग्रे तन्मध्यादेकमपि पूगीफलं यदि लास्यसि तदा न त्वं मम नाऽहं तव'।**

15. राज्ञाऽभाणि **'यदि तेभ्यो न रोचते तदा गच्छन्तु'।**

राजा के इन उद्गारों में कहीं पर भी खरतर शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ है। **अतः राजा के द्वारा खरतर बिरुद देने की बात ही नहीं आती है।**

अतः **'खरतरगच्छ का उद्भव' पुस्तिका में युगप्रधान आचार्य गुर्वावली के आधार से खरतर बिरुद प्राप्ति की बात जो लिखी है, वह उचित प्रतीत नहीं होती है।**

परिशिष्ट–4

इतिहास प्रेमी ज्ञानसुन्दरजी म.सा. का ऐतिहासिक प्रमाणों से युक्त अभिप्राय

इतिहासप्रेमी ज्ञानसुन्दरजी म.सा. ने ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार से 'खरतरगच्छ' शब्द के प्रयोग की प्रवृत्ति 14वीं शताब्दी से शुरु होनी बतायी है। देखियेः–

अब आगे चलकर हम सर्वमान्य शिलालेखों का अवलोकन करेंगे कि किस समय में खरतरशब्द का प्रयोग किस आचार्य से हुआ है। इस समय हमारे सामने निम्नलिखित शिलालेख मौजूद हैं–

1. श्रीमान् बाबू पूर्णचंदजी नाहर कलकत्ता वालों के संग्रह किये हुए 'प्राचीन शिलालेख संग्रह' खण्ड 1–2–3 जिनमें 2592 शिलालेख हैं, जिसमें खरतर गच्छआचार्यों के वि. सं. 1379 से 1980 तक के कुल 665 शिलालेख हैं।

2. श्रीमान् जिनविजयजी सम्पादित 'प्राचीनलेखसंग्रह' भाग दूसरे में कुल 557 शिलालेखों का संग्रह है जिनमें वि. सं. 1412 से 1903 तक के 25 शिलालेख खरतरगच्छ आचार्यों के हैं।

3. श्रीमान् आचार्य विजयेन्द्रसूरि सम्पादित 'प्राचीनलेखसंग्रह' भाग पहिले में कुल 500 शिलालेख हैं उनमें 29 लेख खरतराचार्य के हैं।

4. श्रीमान् आचार्य बुद्धिसागरसूरि संग्रहीत 'धातु प्रतिमा–लेख संग्रह' भाग पहिले में 1523, भाग दूसरे में 1150 कुल 2673 शिलालेख हैं। जिनमें वि. सं. 1252 से 1795 तक के 50 शिलालेख खरतराचार्यों के हैं।

एवं कुल 6322 शिलालेखों में 779 शिलालेख खरतराचार्यों के हैं। अब देखना यह है कि वि. सं. 1252 से खरतराचार्य के शिलालेख शुरु होते हैं। यदि जिनेश्वरसूरि को वि. सं. 1080 में शास्त्रार्थ के विजयोपलक्ष्य में खरतर–बिरुद मिला होता तो इन शिलालेखों में उन आचार्यों के नाम के साथ खरतर–शब्द का प्रचुरता से प्रयोग होना चाहिये था, हम यहाँ कतिपय शिला–लेख उद्धृत करके पाठकों का ध्यान निर्णय की ओर खींचते हैं।

संवत् 1252 ज्येष्ठ वदि 10 श्री महावीरदेव प्रतिमा अश्वराज श्रेयोऽर्थं पुत्र भोजराज देवेन कारिपिता प्रतिष्ठा जिनचंद्र सूरिभिः।।

आ. बुद्धि धातु प्र. ले. सं. लेखांक 930

ये आचार्य किस गच्छ एवं किस शाखा के थे? शिलालेख में कुछ भी नहीं लिखा है।

'संवत् 1281 वैशाख सुदि 3, शनौ पितामह श्रे. साम्ब पितृ श्रे. जसवीर मातृ लाष एतेषां श्रेयोऽर्थं सुत गांधी गोसलेन बिंबं कारितं प्रतिष्ठितश्च श्री चन्द्रसूरि शिष्यः श्री जिनेश्वर सूरिभिः।।'

आ. बु. धातु ले. सं. लेखांक 627

ये आचार्य शायद् जिनपतिसूरि के पट्टधर हो,इनके समय तक की खरतर शब्द का प्रयोग अपमान बोधक होने से नहीं हुआ था।

'सं. 1351 माघ वदि 1 श्रीप्रल्हादनपुरे श्रीयुगादि देवविधि चैत्य श्रीजिन-प्रबोधसूरि शिष्य श्री जिनचंद्र सूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरि मूर्ति प्रतिष्ठा कारिता रामसिंह सुताभ्यां सा. नोहा कर्मण श्रावकाभ्यां स्वामातृ राई मई श्रेयोऽर्थं।'

आ. बु. धातु ले. सं. लेखांक 734

ये आचार्य जिनदत्तसूरि के पाँचवे पट्टधर थे। इनके समय तक भी खरतर शब्द को गच्छ का स्थान नहीं मिला था।

'ॐ सम्वत् 1379 मार्ग. वदि 5, प्रभु जिनचंद्रसूरि शिष्यैः श्रीकुशलसूरिभिः श्रीशान्तिनाथ बिंबं प्रतिष्ठित कारितश्च सा. सहजपाल पुत्रैः सा. धाधल गयधर थिरचंद्र सुश्रावकैः स्वपितृ पुण्ययार्थं।।'

बाबू पूर्ण खण्ड तीसरा लेखांक 2389

'ॐ सं. 1381 वैशाख वदि 5 श्री पत्तने श्री शांतिनाथ विधि चैत्ये श्री जिनचंद्रसूरि शिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिः श्री जिनप्रबोधसूरि मूर्ति प्रतिष्ठा कारिता च सा. कुमारपाल रतनैः सा. महणसिंह सा. देपाल सा. जगसिंह सा. मेहा सुश्रावकैः सपरिवारैः स्वश्रेयोऽर्थम्।।'

बाबू पूर्ण खण्ड दूसरा लेखांक 1988

'सम्वत् 1391 मा. श्री. 15 खरतरगच्छीय श्री जिनकुशल सूरि शिष्यैः जिनपद्मसूरिभिः श्री पाश्वनार्थ प्रतिमा प्रतिष्ठिता कारिता च भव. बाहिसुतेन रत्नसिंह पुत्र आल्हानादि परिवृतेन स्वपितृ सर्व पितृव्य पुण्यार्थं।।'

बाबू पूर्ण खण्ड दूसरा लेखांक 1926

'सं. 1399 भ. श्रीजिनचन्द्रसूरि शिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिः श्रीपार्श्वनाथ बिंबं प्रतिष्ठितं कारितंच सा. केशवपुत्र रत्न सा. जेहदु सु श्राविकेन पुण्यार्थं।'

बाबू पूर्ण खण्ड दूसरा लेखांक 1545

वह आचार्य-जिनदत्त सूरि के छठे पट्टधर हुए हैं।

पूर्वोक्त शिलालेखों से पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि जिनकुशलसूरि के पूर्व किन्हीं आचार्यों के नाम के साथ खरतर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ पर जिनकुशल सूरि के कई शिलालेखों में खरतर शब्द नहीं है और कई लेखों में खरतरगच्छ का प्रयोग हुआ है, **इससे यह स्पष्ट पाया जाता है कि खरतर शब्द गच्छ के रूप में जिनकुशलसूरि के समय अर्थात् विक्रम की चौदहवीं शताब्दी ही में परिणत हुआ है।** इसका अभिप्राय यह है कि खरतर शब्द न तो राजाओं का दिया हुआ विरुद है और न कोई गच्छ का नाम है। **यदि वि. सं. 1080 में जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में राजादुर्लभ ने खरतरबिरुद दिया होता तो करीब 300 वर्षों तक यह महत्त्वपूर्ण बिरुद गुप्त नहीं रहता।** विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छाचार्यों की यह मान्यता थी कि खरतरगच्छ के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही थे। और यही उन्होंने शिलालेखों में लिखा है। यहाँ एक शिलालेख इस बारे में नीचे उद्धृत करते हैं।

'सम्वत् 1536 वर्षे फागुणसुदि 5 भौमवासरे श्री उपकेशवंशे छाजहड़गोत्रे मंत्रि फलधराऽन्वये मं. जूठल पुत्र मकालू भा. कर्म्मादि पु. नयणा भा. नामल दे ततोपुत्र मं. सीहा भार्यया चोपड़ा सा. सवा पुत्र स. जिनदत्त भा. लखाई पुत्र्या स्नाविका अपुरव नाम्न्या पुत्र समधर समरा संदू संही तया स्वपुण्यार्थ श्रीआदिदेव प्रथम पुत्ररत्न प्रथम चक्रवर्ति श्री भरतेश्वरस्य कायोत्सर्ग स्थितस्य प्रतिमाकारिता प्रतिष्ठिता **खरतरगच्छमण्डन श्री जिनदत्तसूरि**, श्री जिनचंद्रसूरि, श्री जिनकुशल सूरि संतानीय श्री जिनचन्द्रसूरि पं. जिनेश्वरसूरि शाखायां श्रीजिनशेखरसूरि पट्टे श्रीजिनधर्मसूरि पट्टाऽलंकार श्रीपूज्य श्री जिनचन्द्रसूरिभिः'

बा.पू. सं. लेखांक 2401

इस लेख में पाया जाता है कि **सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छ के आदि पुरुष जिनेश्वरसूरि नहीं पर जिनदत्तसूरि ही माने जाते थे।**

(-खरतरमतोत्पत्ति भाग-1, पृ. 16-20)

परिशिष्ट–5

खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह...

1) महोपाध्याय विनयसागरजी

अब यहाँ पर महोपाध्याय विनयसागरजी संपादित 'खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह' में दिये हुए 14वीं शताब्दी तक के लेख दिये जाते हैं। इसमें प्रथम लेख जिनवल्लभगणिजी की '**अष्टसप्ततिका**' है, जिसके बारे में पहले पृ.54 पर उल्लेख किया जा चुका है, अतः यहाँ लेख नं. 2 से प्रारंभ किया जा रहा है।

विशेषता–

1. लेख नं. 5, 8 और 9 में **अभयदेवसूरि संतानीय** इस प्रकार का उल्लेख मिलता है, जो अभयदेवसूरिजी की मूल – शिष्य परंपरा को सूचित करता है। वहाँ पर 'खरतर' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। अतः यह सिद्ध होता है कि **अभयदेवसूरिजी की मूल शिष्य परंपरा खरतरगच्छ से भिन्न थी।** और साथ में यह भी सिद्ध होता है कि **खरतरगच्छ अभयेदवसूरिजी की मूल शिष्य परंपरा रूप नहीं है।**
2. लेख नं. 10, 11, 21, 22 और 84 में **रुद्रपल्लीय** इस प्रकार का उल्लेख मिलता है। **वहाँ पर भी 'खरतर' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है।**
3. सं. 1308 वाले लेख नं. 18, 19 में '**चन्द्रगच्छीय खरतर**' एवं सं. 1379 वाले लेख नं. 50 में '**खरतर सा. जाल्हण**' इस प्रकार का उल्लेख मिलते हैं, **जो खरतर शब्द के प्रारंभिक प्रयोग के आकार को सूचित करती है।** विशेष बात यह है कि यहाँ पर 'खरतर' इस विशेषण का प्रयोग श्रावकों के लिए ही हुआ है।
4. लेख नं. 35 में **विधिचैत्य गोष्ठिकेन** तथा लेख नं. 55 और 70 में **विधिसंघसहिता** तथा कई बार '**विधिचैत्य**' इत्यादि उल्लेख मिलते हैं। जो सूचित करता है कि **14 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक विधिपक्ष या विधिसंघ के रूप में खरतरगच्छ की विशेष प्रसिद्धि थी।**
5. आचार्य के साथ खरतर शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सं. 1360 का मिलता है (लेख नं. 44) उसके पहले सं. 1308 वाले लेख नं. 17 में '**खरतरगच्छ**' शब्द का प्रयोग हुआ है, लेकिन किसी आचार्य आदि के

साथ उसका प्रयोग नहीं हुआ है। लेख नं. 40 में खरतरगच्छ का उल्लेख मिलता है, परंतु उसमें **1354 (?)** इस प्रकार **(?)** प्रश्न चिन्ह लिखा होने से उसे यहां पर नहीं बताया है।

6. लेख नं. 6 में 'खरतरगच्छे श्री जिनचंद्रसूरिभिः' इस प्रकार का उल्लेख है और वह लेख सं. **1234 का बताया गया है, जो अनाभोग से गलत छपा हुआ लगता है।** क्योंकि इस लेख का मूल स्रोत पू. जै. भाग-2 लेखांक 1289 बताया है, **उस मूल लेख में सं. 1534 लिखा है।** उसका प्रमाण इन सभी लेखों के अंत में पृ. 138-139 में दिया है। तथा

7. लेख नं. 46 जो **सं. 1366 का है,** उसमें जिनेश्वरसूरिजी के लिए बहुत लंबा विशेषण दिया है, **परंतु उन्हें खरतर बिरुद से विभूषित नहीं किया है।** इससे भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि **जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला था, ऐसी मान्यता उस समय तक नहीं थी।**

सारः 1. 14वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक जिनदत्तसूरिजी की शिष्य परंपरा भी अपना परिचय 'खरतरगच्छ' इस शब्द से नहीं देती थी।

2. अभयदेवसूरिजी की शिष्य परंपरा एवं रूद्रपल्लीय गच्छ ने स्वयं को खरतरगच्छ से नहीं जोड़ा है, **अतः स्पष्ट होता है कि 'खरतरगच्छ' जिनदत्तसूरिजी की शिष्य परंपरा का ही सूचक है। यानि कि 'जिनेश्वरसूरिजी को खरतर बिरुद मिला' अतः उनकी शिष्य परंपरा 'खरतरगच्छ' कहलायी ऐसा नहीं है।**

2. चित्रकूटीय पार्श्वचैत्य-प्रशस्तिः (कमलदलगर्भम्)

1. (निर्व्वाणार्थी विधत्ते) वरद सुरुचिरावस्थितस्थानगामिन्सर्व्वो (पी)-
2. (ह स्तवं ते)निहतवृजिन हे मानवेन्द्रादिनम्य(।)संसारक्लेशदाह (स्त्व)-
3. (यि) च विनयिनां नश्यति श्रावकानां देव ध्यायामि चित्ते तदहमृषि-
4. (वर)त्वां सदा वच्मि वाचा(।।)-1।। नन्दन्ति प्रोल्लसन्तः सततमपि हठ (क्षि)
5. (प्तचि) तोत्थमल्लं प्रेक्ष्य त्वां पावनश्रीभवनशमितसंमोहरोहत्कुत-
6. (र्क्काः।) भूत्यै भक्त्याप्तपार्श्वा समसमुदितयोनिभ्रमे मोहवार्द्धौ
7. (स्वा) मिन्पोतस्त्वमुद्यत्कुनयजलयुजि स्याः सदा विश्ववं (बं)धो (।।)2।।

---

2. पुरातत्त्व संग्रहालय एवं म्युजियम, चित्तौड़

8. नवनं पार्श्वाय **जिनवल्लभ**मुनिविरचितमिह इति नामांकं च(क्रे।)
9. (स)त्सौभाग्यनिधे भवद्‌गुणकथां सख्या मिथः प्रस्तुतामुत्क्षिप्तैकत–
10. संभ्रमरसादाकर्ण्णयन्त्याः क्षणात्। गंडाभोगमलंकरोति विश (दं)
11. (स्वे)दांवु(बु)सेकादिव प्रोद्‌गच्छन्पुलकच्छलेन सुतनोः श्रृंगारकन्दांकु–
12. (रः) ।।1।। पुरस्तादांकर्ण्णप्रततधनुषं प्रेक्ष्य मृगयुं चलत्तारां चा (रु प्रि)–
13. (य) सहचरी पाशपतितां (ताम्) । भयप्रेमाकूताकुल–तरलचक्षुर्मुहु–
14. (र) हो कुरङ्गः सर्व्वांगं जिगमिषति तिष्ठासति पुनः।।2सद्वृत्त (र)–
15. (म्यप) दया मत्तमातङ्गगामिनी। दोषालकमुखी तन्वी तथा–
16. (पि) रतये नृणां (णाम्)।।3 क्षीरनीरधिकल्लोल–लोललोचनया–
17. नया। क्षा(ल) यित्वेव लोकानां स्थैर्यं धैर्यं च नीयते।।4।।

3) परिकरोपरिलेखः

।।संवत् 1176 मार्गसिर वदि 6 श्रीमज्जांगलकूपदुर्ग्ग नगरे। **श्री वीरचैत्ये विधौ।** श्रीमच्छांतिजिनस्य बिंबमतुलं भक्त्या परं कारितं। तत्रासीद्वरकीर्ति–भाजनमतः श्रीनाढकः श्रावकस्तत्सूनुर्गुणरत्नरोहणगिरि श्रीतिल्हको विद्यते।।110 तेन तच्छुद्धवित्तेन श्रेयोर्थं च मनोरमम्। शुक्लाख्याया निजस्वसुरात्मनो मुक्तिमिच्छता।।2।।छः।।

4) परिकरोपरिलेखः

1. 90 संवतु 1179 मार्ग–
2. सिर वदि 6 पुगेरी (?) अ.
3. जयपुरे **विधिकारि–**
4. **ते** सामुदायिक प्रति–
5. ष्ठाः।। राण समुदायेन–
6. श्री महावीरप्रतिमाका–
7. रिता ।। मंगलं भवतु।।

5) नेमिनाथः

कल्याणत्रये श्री नेमिनाथबिम्बानि प्रतिष्ठितानि नवाङ्गवृत्तिकार–**श्रीमद–भयदेवसूरिसंतानीय** श्री चंद्रसूरिभिः श्रे. सूमिग श्रे वीरदेव श्रेष्ठी गुणदेवस्य भार्या जयतश्री साहूपुत्र वइरा पुना लुणा विक्रम खेता हरपति कर्मट राणा कर्मटपुत्र

3. महावीरस्वामी का मंदिर, डागों में, बीकानेरः ना. बी. लेखांक 1543
4. चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेरः ना. बी. लेखांक 21
5. नमिनाथ मन्दिर, आरासणाः अ. प्र. जै. ले. सं. , भा. 5, लेखांक 11

खीमसिंह तथा वीरदेवसुत–वरसिंह–अरसिंहपुत्रभृतिकुटुम्बसहितेन गांगदेवेन कारितानि।

6) धर्मनाथ–पञ्चतीर्थी:

संतव् 1234 वर्षे आषाढ़ सुदि 1 गुरौ ऊकेशवंशे जहड़गोत्रे सा. उगच पु. सा. खरहकेन भा. नीविणि पुत्र माला वला पासड सहितेन धर्म्मनाथबिंब निजश्रेयोर्थं कारापितं श्रीखरतरगच्छे भ. श्रीजिनचंद्रसूरिभिः।।*

7) महावीर–पञ्चतीर्थी:

सं(व)त् 1260 ज्येष्ठसूदि 2 रेनुमा (?) पु. चोराकेनात्मश्रेयोर्थं श्रीमहावीर–बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं च श्रीअभयदेवसूरिभि।।

8) शान्तिनाथः

दं.।।स्वस्ति श्रीनृपविक्रमसंवत् 1293 वर्षे वैशाखसूदि 15 शनौ अद्येह श्री अर्बुदाचलमहातीर्थे अणहिल्लपुरवास्तव्य श्रीप्राग्वाटज्ञातीय ठ. श्रीचंडप ठ. श्रीचंडप्रसाद महं. श्रीसोमान्वये ठ. श्रीआसराजसुत महं. श्रीमल्लदेव महं. श्रीवस्तुपालयोरनुजमहं. श्रीतेजपालेन कारितश्रीलूणसीहवसहिकायां श्रीनेमिनाथ(*) देवचैत्यजगत्यां श्री चंद्रावतीवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय श्रे. वीरचंद्र भार्या श्रियादेवि पुत्र श्रे. साढदेव श्रे. छाहड श्रे. साढदेव भार्या माऊ पुत्र आसल श्रे. जेलण जयतल जसधर श्रे. छाहडभार्या थिरदेवि पुत्र घांघस श्रे. गोलण जगसीह पाल्हण तथा श्रे. जेलण पुत्र श्रे. समुद्धर श्रे. जयतल पुत्र देवधर मयधर श्रीधर आंबड।।(*) जसधर पुत्र आसपाल। तथा श्रे. गोलण पुत्र वीरदेव विजयसीह कुमरसीह रत्नसीह जगसीह पुत्र सोमा तथा आसपाल पुत्र सिरिपाल विजयसीह पुत्र अरसीह श्रीधर पुत्र अभयसीह तथा श्रे. गोलणसमुद्धर–प्रमुखकुटुंबसमुदायेन श्रीशान्तिनाथदेवबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं **नवांगवृत्तिकारश्री–अभयदेवसूरिसंतानीयैः श्रीधर्म्मघोषसूरिभिः।।**

---

6. धर्मनाथ जिनालय, हीरावाड़ी, नागौरः पू. जैन. भाग 2, लेखांक 1289

* **यह लेख वास्तव में सं. 1534 का है एवं इसकी सिद्धि पृ. 138–139 पर की है।–संपादक**

7. जलमन्दिर, पावापुरीः पू. जै., भाग 2, लेखांक 2029

8. लूणवसही, आबूः प्रा. जै.ले.सं., भाग 2 लेखांख 85

9) शिलालेखः

ॐ।। सं. 1293 फागुण सुदि 11 शनौ ठ. जसचंद्रभआर्या ठ. चाहिणदेवि तत्पुत्र महं पेथड तत् (द्) भार्या महं ललतू तत्पुत्र ठ. जयतपाल भार्या आमदेवि ठ. जयतपालेन पितृमातृश्रेयोर्थं श्रीमहावीरस्य जीर्णोद्धारः कृतः प्रतिष्ठितः **नवाङ्गवृत्तिकारसंतानीय श्रीहेमचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीधर्मघोषसूरिभिः।।छ।।**

10) आदिनाथसपरिकरः

सं. 1302 (वर्षे) मार्ग वदि 9 शनौ.......... संतानीय **श्रीरूद्रपल्लीय श्रीम(दभ) यदेवसूरिशिष्याणां श्रीदेवभद्रसूरीणामुपदेशेन** मं. पल्ल पुत्र मं. चाहड पुत्र्या थेहिकया श्रीमदादिनाथबिंब सपरिकरं आत्मश्रेयोऽर्थं कारितं (प्रतिष्ठितं) च श्रीमद्देवभद्रसूरिभिरेव।।

11) नेमिनाथः

संवत् 1302 श्रीमदर्बुदमहातीर्थे देवश्रीआदिनाथचैत्ये कांतालज्ञातीय ठ. उदयपाल पुत्र ठ. श्रीधर प्रणयिन्या ठ. नागा पुत्र्या ठ. आंब देवसिंह जनन्या वीरिकया खत्तकसमेतं श्रीनेमिनाथबिंबं आत्मश्रेयोऽर्थ कारितं प्रतिष्ठितं **रुद्रपल्लीय श्रीदेवभद्र–सूरिभिरेव**।।

12) ऋषभनाथ–पञ्चतीर्थीः

1 सं. 1305 आषाढ सुदि 10 श्रीऋषभनाथ प्रतिमा श्रीजिनपतिसूरिशिष्य–श्रीजिनेश्वरसूरिभिः प्रतिष्ठिता ग्रामलोक श्रावकेण कारिता।

13) सुमतिनाथ–पञ्चतीर्थीः

सं. 1305 आषाढ़ सुदि 10 श्रीजिनपतिसूरिशिष्यैः श्रीजेनेश्वरसूरिभिः सुमतिनाथ (?) प्रतिमा प्रतिष्ठिता कारिता साक. लोलू श्रावकेण।।

14) अरनाथ–पञ्चतीर्थीः

सं. 1305 आषाढ़ सूदि 13 श्रीजिनपतिसूरिशिष्यैः श्रीजिनेश्वरसूरिभिः

9. संभवनाथ जिनालय, देरणाः अ. प्र. जे. ले. सं. भाग 5, लेखांक 638
10. विमलवसही, आबूः प्रा. जै. ले. सं., भाग 2, लेखांक 210
11. विमलवसही, आबूः प्रा. जै.ले.सं., भाग 2, लेखांक 209
12. निर्ग्रन्थ, अंक 1 घोघानी मध्यकालीन धातुप्रतिमाओ
13. चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर : ना. बी. लेखांक 142
14. चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर : ना. बी. लेखांक 143
15. चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर : ना. बी. लेखांक 145

श्रीअरनाथ प्रतिष्ठिता साक. लोलू. श्रावकेण कारिता।

15) पञ्चतीर्थी:

सं. 1305 आषाढ़ सूदि 10 श्रीजिनपतिसूरिशिष्यैः-श्रीजिनेश्वरसूरिभिः प्रतिष्ठिता स्ता. भुवणपाल भार्यया तिहुणपालही श्राविकया कारिता

16) पञ्चतीर्थी:

सं. 1305 आषाढ़ सुदि 13 श्रीजिनपतिसूरिशिष्य-श्रीजिनेश्वरसूरिभिः प्रतिष्ठिता स्ता. भुवणपाल भार्यया तिहुणपालही श्राविकया कारिता।

17) शान्तिनाथ-पञ्चतीर्थी:

सं. 1308 वर्षे मि. वै. सु. 5 लूणियागोत्रे सा. होपा। श्री शान्तिनाथ बिं. का. प्र. खरतरगच्छे।

18) जीर्णोद्धारलेखः

संवत् 1308 वर्षे फाल्गुन वदि 11 शुक्रे श्रीवालीपुरवास्तव्य **चन्द्रगच्छीय खरतर** सा. दुलहसुत सधीरण तत्सुत सा. वीजा तत्पुत्र सा. सलषणेन पितामही राजमाता साउ भार्या माल्हणदेवी सहितेन श्री आदिनाथसत्क सर्वांगाभरणस्य साउश्रेयोर्थं जीर्णोद्धारः कृतः।

19) स्तम्भदेवः

संवत् 1308 वर्षे फाल्गुन वदि 11 शुक्रे श्री जावालिपुरवास्तवव्य **चन्द्रगच्छीय खरतर सा.** दूलह सुत सधीरण तत्सुत सा. वीजा तत्पुत्र सा. सलषणेन पितामही राजू माता साऊ भार्या माल्हणदेवि (वी) सहितेन श्री आदिनाथसत्क सर्वांगाभरणस्य साऊ श्रेयोर्थ जीर्णोद्धारः कृतः।।

20) नेमिनाथः

।।अर्हं।। विक्रम संवत् 1310 वैशाख सूदि 13 श्रीनेमिनाथप्रतिमा श्रीजिन-

16. चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर : ना. बी. लेखांक 144
17. मुनिसुव्रत जिनालय, मालपुराः प्रतिष्ठा लेख संग्रह, भाग 1, लेखांक 64
18. देवकुलिका लेख, लूणवसही, आबू: प्रा. जै. ले. सं., भाग 2, लेखांक 232
19. विमलवसही, आबू: अ. प्रा. जै. ले. सं., भाग 2 लेखांक 185
20. पार्श्वनाथ मंदिर, जालोर, जिनहरिसागरसूरि लेख संग्रह, अप्रकाशित
21. B. BHATTACHARYA The bhale Symbal of the Jains

पतिसूरिशिष्यैः श्रीजिनेश्वरसूरिभिः प्रतिष्ठिता श्री जावालीपुरे श्रीमहावीरविधिचैत्ये कारिता गोष्ठिक राजा सुत हीरा मोल्हा मनोरथश्रावकेः सत्परिकरश्च हीराभार्या धनदेवही मोल्हा भार्या कामदेवही श्रेयार्थं कारितः।।

21) नमिनाथः

सं. 1311 फाल्गुन सुदि 12 शुक्रे श्रीनमिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं **रुद्रपल्लीय प्रभानंदसूरिभिः।।**

22) नमिनाथ-पञ्चतीर्थीः

सं. 1327 श्रीमदूकेशज्ञातीय सा. लोला सुत सा. हेमा तत्तनयाभ्यां बाहड़-पद्मदेवाभ्यां स्वपितुः श्रेयसे श्रीनमिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं थ (?च) **रुद्रपल्लीय श्रीचंद्रसूरिभिः**

23) शिलालेखः

संवत् 1333 वर्षे ज्येष्ठ वदि 14 भौमे श्रीजिनप्रबोधसूरिसुगुरूपदेशात् उच्चापुरीवास्तव्येन श्रे. आसपालसुत श्रे. हरिपालेन आत्मनः स्वमातृ हरियालाश्च श्रेयोऽर्थं श्रीउज्जयन्तमहातीर्थे श्रीनेमिनाथदेवस्य नित्यपूजार्थं द्र. 200 शतद्वयं प्रदत्तं। अमीषां व्याजेन पुष्पसहस्र 2000 द्वयेन प्रतिदिनं पूजा कर्तव्या श्रीदेवकीय आरामवाटिका सत्कपुष्पानि श्रीदेवक....... पंचकुलेन श्रीदेवाय ऊटापनीयानि।।

24) गौतमस्वामीमूर्तिः

संवत् 1334 वैशाख वदि 5 बुधे श्रीगौतमस्वामीमूर्त्तिः श्री जिनेश्वरसूरिशिष्य-श्रीजिनप्रबोधूसरिभिः प्रतिष्ठिता कारिता च सा. बोहिथसुत व्य. बइजलेन मूलदेवादि भ्रातृसहितेन च स्वश्रेयोर्थं स्वकुटुंबश्रेयोर्थं च।

Berliner Indologische Studion Band 8. 1995 Plate XXII.

22. चिंतामणि जी का मंदिर, बीकानेर : ना. बी., लेखांक 169
23. नेमिनाथ जिनालय, गिरनार : प्र. जै. ले. सं. भाग 2, लेखांक 54, जैन तीर्थ सर्व संग्रह, भाग 1, खंड 1, लेखांक 122
24. जैन मंदिर, भीलडियाजी तीर्थ : जैन. प्र. ले. सं., लेखांक 339; जैन तीर्थ सर्व संग्रह, भाग 1, खंड 1, पृ. 36
25. चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, चिन्तामणि शेरी, राघनपुर : मुनि विशालविजय-रा. प्र. ले. सं., लेखांक 40

25) पार्श्वनाथ–एकतीर्थी:

संवत् 1332 ज्येष्ठ वदि 1 श्री पार्श्वनाथप्रतिमा श्रीजिनेश्वरसूरिशिष्य–श्रीजिनप्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठिता कारिता च नवलक्ष.... श्रावकेण स्वपितृ हरिपाल मातृ पद्मणि (णी) श्रेयोर्थं।

26) जिनदत्तसूरिमूर्ति:

संवत् 1334 वैशाख वदि 5 श्री जिनदत्तसूरिमूर्तिः श्री जिनेश्वरसूरिशीष्य–श्रीजिनप्रबोधसूरि....

27) अनन्तनाथ:

संवत् 1337 ज्येष्ठ वदि 5 श्री अनंतनाथ देवगृ (हिका बिंबं च) श्रीजिनप्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च वटपद्रवास्तव्य सा खीवा आवड़ श्रावकाभ्यां आत्मश्रेयोनिमित्तः।।

28) अजितनाथ–परिकरलेख:

सं. 1337 ज्येष्ठ वदि 5 श्री अजितनाथबिंबं श्रीजिनेश्वरसूरिशिष्य–श्रीजिन–प्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठितं श्रीमुनिचंद्रसूरिवंशीय.... सा. नाहडा तत्पुत्र शा भालु.... आत्मश्रेयोर्थं। शुभमस्तु।

29) सुपार्श्वनाथ–पञ्चतीर्थी:

संवत् 1337 ज्येष्ठ वदि 5 श्रीसुपार्श्वजिनबिंबं श्रीजिनेश्वरसूरिशिष्यैः श्री जिन–प्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं....... सुतेन.......।

30) सुविधिनाथ–परिकरलेख:

संवत् 1337 ज्येष्ठ वदि 5 श्री सुविधिनाथबिंबं देवगृहिका च

---

26. झवेरीवाडा का जैन मंदिर, पाटणः प्रा. जै.ले.सं., भाग 2, लेखांक 524
27. शत्रुंजय गिरिना केटलाक अप्रकट प्रतिमा लेखों– मधु. ढांकी व लक्ष्मण भोजक–सम्बोधि वो. 7, नं. 4; भंवर. (अप्रकाशित), लेखांक 103
28. देहरी क्रमांक 97/1, शत्रुंजय : श. गि. द., लेखांक 86
29. खरतरवसही, शत्रुंजय : भँवर. (अप्रका.) लेखांक 68
30. खरतरवसही, समवसरण 2, शत्रुंजय : श. गि. द. लेखांक 122; भँवर. (अप्रका.) लेखांक 82
31. देहरी क्रमांक 92/5, खरतरवसही, शत्रुंजय : श. गि. द., लेखांक 116; भँवर. (अप्रका.) लेखांक 70
32. खरतरवसही शत्रुंजय–भँवर. (अप्रका.) लेखांक 81; खरतरवसही, समवसरण, शत्रुंजयः श.

श्रीजिनप्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च शा. मोहणप्रमुखपुत्रैर्निजमातुः पदमलश्राविकायाः श्रेयोर्थम्।।

31) श्रेयांसनाथ–परिकरलेखः

संवत् 1337 ज्येष्ठ वदि 5 श्री श्रेयांसबिंबं देवकुलिका च श्रीजिनप्रबोध–सूरिभिः प्रतिष्ठितं ।। शा. तिहुणसिंह सुत भीमसिंह............ आत्मश्रेयोर्थं।

32) शान्तिनाथ–परिकरलेखः

संवत् 1337 ज्येष्ठ वदि 5, श्रीशांतिनाथदेवबिंबं श्रीजिनप्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठितं गौर्जर ज्ञातीय ठ. श्रीभीमसिंह बृहत्भ्रातृश्रेयोर्थं ठकुर श्रीउदयदेवेन प्रतिपन्नसारेण सुविचारेण कारितं।

33) शान्तिनाथ–परिकरलेखः

संवत् 1337 ज्येष्ठ वदि 5 श्री शांतिनाथबिंबं श्री जिनप्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च उकेशवंशीय शा. सोला पुत्र शा. रत्नसिंहश्रावकेण आत्म–श्रेयोनिमित्तं।।

34) मल्लिनाथ–पञ्चतीर्थीः

संवत् 1337 ज्येष्ठ वदि 5 श्रीमल्लिनाथदेवगृहिका–बिंबं च श्रीजिनप्रबोध–सूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च ऊकेशवंशीय ठ. (?) ऊदाकेन–जनातृ तील्ह (?) श्रेयोर्थं।

35) मुनिसुव्रत–परिकरलेखः

संवत् 1337 ज्येष्ठ वदि 5 मुनिसुव्रतस्वामी बिंबं च श्रीजिनेश्वरसूरिशिष्यैः श्रीजिनप्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठितं। कारितं च देहड़सुतेन...... पालेन.... **विधि–चैत्यगोष्ठिकेन** स्वश्रेयार्थे शुभम्।।

गि. द. लेखांक 121

33. खरतरवसही, समवसरण–3, शत्रुंजयः श. गि. द. लेखांक 123; खरतरवसही, शत्रुंजय : भँवर. (अप्रका.), लेखांक 83
34. शत्रुंजयगिरिना अप्रकट प्रतिमालेखो– मधुसूदन ढांकी एवं लक्ष्मण भोजक–सम्बोधि, वो. 7, नं. 4,भँवर. (अप्रका.) लेखांक 104
35. देहरी क्रमांक 106, खरतरवसही, शत्रुंजय : श. गि. द., लेखांक 120, भँवर. (अप्रका.), लेखांक 72
36. शत्रुंजय गिरिना केटलाक अप्रकट प्रतिमा लेखो–मधुसूदन ढांकी और लक्ष्मण भोजनक–सम्बोधि, वो. 7, नं. 4 भँवर. (अप्रका.) लेखांक 102
37. महावीर स्वामी का मंदिर, बीकानेर : ना. बी. लेखांक 1357
38. शांतिनाथ जिनालय, जीरारपाड़ो, खंभात : जै. धा. प्र. ले. सं., भाग–2, लेखांक 734

36) महावीर–पञ्चतीर्थी:

संवत् 1337 ज्येष्ठ वदि 5 श्रीमहावीरबिंबं श्रीजिनेश्वरसूरिशिष्यैः श्रीजिन–प्रबोधसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च श्रीमालवं(शी)य ठ. हासिल पुत्र ठ. देहड़ रामदेव–थिरदेवश्रावकैरात्मश्रेयोर्थं।।शुभंभवतु।।

37) सपरिकरपार्श्वनाथ–पञ्चतीर्थी:

।।र्द.।। सं. 1346 वैशाख सुदि 7 श्रीपार्श्वनाथबिंबं श्रीजिनप्रबोधसूरिशिष्यैः श्रीजिनचंद्रसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं.... रा. खीदा सुतेन सा. भुवण श्रावकेन स्वश्रेयोर्थं अच्चंद्रार्क नंदतात्

38) जिनप्रबोधसूरिमूर्तिः

सं. 1351 माघ वदि 1 श्री प्रह्लादनपुरे श्रीयुगादिदेव**विधिचैत्ये** श्रीजिनप्रबोध–सूरिशिष्य–श्रीजिनचंद्रसूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरिमूर्तिः प्रतिष्ठिता कारिता.... रामसिंह सुताभ्यां सा. नोहा–कर्मण–श्रावकाभ्यां स्वमातृराईमईश्रेयोऽर्थं।।

39) शान्तिनाथः

सम्वत् 1353 माघ वदि 1 श्रीशान्तिनाथ प्रति. श्रीजिनचंद्रसूरिभिः प्रतिष्ठिता च सा. हेमचंद्र भा. रतन सुत श्रावकाभ्यां देव (?) लक्ष्मी श्रेयोर्थं।

40) आदिनाथ पञ्चतीर्थी:

सं. 1354(?) वर्षे आषाढ़ सुदि 2 दिने ऊकेशवंशे बोहिथिरा गोत्रे सा. तेजा भा. वर्जू पुत्र सा. मांडा सुश्रावकेण भार्या माणिकदे पु. ऊदा भा. उत्तमदे पुत्र सधारणादि परिवारयुतेन श्रीआदिनाथबिंबं कारितं श्रीखरतरगच्छे श्री जिनभद्रसूरि–पट्टालंकार–श्रीजिनचंद्रसूरिभिः प्रतिष्ठितः।।

41) जिनचंद्रसूरि–मूर्तिः

सं. 1354 कार्त्तिक सुदि 15 गुरौ महं श्रीमंडलीकेन श्रीशत्रुंजयमहातीर्थे श्रीजिनचंद्रसूरीणां मूर्ति........।

---

39. बड़ा मंदिर, नागपुर, जै. धा. प्र. लेख. सं. भाग–1 लेखांक 20
40. महावीर जिनालय (वेदों का) बीकानेर : ना. बी. लेखांक 1258
41. देहरी क्रमांक 442– शत्रुंजयः श. गि. द. लेखांक 102
42. जैन मंदिर, जूना बाड़मेर; जैन तीर्थ सर्व संग्रह, भाग 1, खंड 2, पृ. 182
43. जैन मंदिर, जूना बाड़मेर; जैन तीर्थ सर्व संग्रह, भाग 1, खंड 2, पृ. 182
44. लूणवसही, आबू : अ. प्रा. जै. ले. सं. भाग 2, लेखांक 317
45. चिन्तामणि जी का मंदिर, भूमिगृह बीकानेर; ना. बी., लेखांक 225

42) शिलालेखः

ॐ ।। संवत् 1356 कार्तिक्यां श्रीयुगादिदेवविधिचैत्ये श्री जिनप्रबोधसूरि-पट्टालंकार श्री जिनचंद्रसूरिसुगुरूपदेशेन सा. जाल्हण सा. नागपालश्रावकेण सा. गहणादिपुत्रपरिवृतेन मध्यचतुष्किका स्व. पुत्र सा. मूलदेव श्रेयोर्थं सर्वसंघप्रमोदार्थं कारिता। आचंद्रार्कं।।शुभं।।

43) शिलालेखः

ॐ ।। संवत् 1356 कार्तिक्यां श्रीयुगादिदेवविधिचैत्ये श्रीजिनप्रबोधसूरिपट्टा-लंकार श्रीजिनचंद्रसूरिसुगुरूपदेशेन सा. आल्हण सुत सा. राजदेव सत्पुत्रेण सा. सलखणश्रावकेण सा. मोकलसिंह तिहूणसिंह परिवृतेन स्वमातुः सा पउमिणिसुश्राविकायाः श्रेयोर्थं सर्वसंघप्रमोदार्थं पार्श्ववर्तिचतुष्किकाद्वयं कारितं।। आचंद्रार्कं नंदतात्।।

44) शिलालेखः

संवत् 1360 आषाढ़ वदि 4 श्रीखरतरगच्छे जिनेश्वरसूरि-पट्टनायक-श्रीजिन-प्रबोधसूरिशिष्य श्रीदिवाकराचार्याः पंडित लक्ष्मीनिवासगणि हेमतिलकगणि मतिकलशमुनि मुनिचंद्रमुनि अमररत्नगणि यशःकीर्तिमुनि साधु-साध्वी-चतुर्विध-**श्रीविधिसंघसहिताः।** श्री आदिनाथ-नेमिनाथ-देवाधिदेवौ नित्यं प्रणमंति।

45) महावीर-पञ्चतीर्थीः

सं. 1361 वैशाख सुदि 6 श्री महावीरबिंबं श्रीजिनप्रबोधसूरिशिष्य-श्रीजिनचन्द्रसूरिभिः प्रतिष्ठितं। कारितं च श्रे. पद्मसी सुत ऊधासीह पुत्र सोहड़ सलखण पौत्र सोमपालेन सर्वकुटुंबश्रेयोर्थं।।

46) शिलालेखः

ॐ अर्हं।। संवत् 1366 वर्षे प्रतापाक्रांतभूतल-श्रीअलावदीनसुरत्राणप्रति-शरीरश्रीअल्पखानविजयराज्ये श्रीस्तंभतीर्थे **श्रीसुधर्म्मस्वामिसंताननभोनभोमणि-**

---

46. स्तम्भन पार्श्वनाथ जिनालय, खंभातः जैन. धा. प्र. ले. सं. भाग 2, लेखांक 1054; प्रा. जै. ले. सं., भाग 2, ले. 447
47. शत्रुंजयगिरिना केटलाक अप्र. प्रतिमा लेखोंः, मधुसूदन ढांकी और लक्ष्मण भोजक, संबोधि वो. नं. 4; भँवर. (अप्रका.), लेखांक 105
48. शीतलनाथ जिनालय, जैसलमेरः पू. जै. भाग 3, लेखांक 2389
49. कुंथुनाथ मंदिर, अचलगढ़, अ. प्रा. जै. ले. स. भाग 2, लेखांक 527.

सुविहितचूड़ामणिप्रभु–श्रीजिनेश्वरसूरिपट्टालंकारप्रभु–श्रीजिनप्रबोधसूरिशिष्य–चूड़ामणियुगप्रधानप्रभुश्रीजिनचंद्रसूरिसुगुरूपदेशेन ऊकेशवंशीय–साह– जिनदेव साह–सहदेवकुलमंडनस्य श्रीजेसलमेरौ **श्रीपार्श्वनाथविधिचैत्ये** कारितश्रीसंमेत–शिखरप्रासादस्य साह–केसवस्य पुत्ररत्नेन श्रीस्तंभतीर्थे निर्म्मापितसकलस्वपक्ष–परपक्षचमत्कारकारि–नानाविधमार्गणलोकद्रारिद्र्यमुद्रापहारि–गुणरत्नाकर–स्वगुरुगुरुतरप्रवेशकमहोत्सवेन संपादित श्रीशत्रुंजयोज्जयंतमहातीर्थयात्रासमुपा–र्ज्जितपुण्यप्राग्भारेण श्रीपत्तनसंस्थापित–कोद्दंडिकालंकार–श्रीशांतिनाथ **विधि–चैत्यालय**श्रीश्रावकपौषधशालाकारापणोपचितप्रसृमरयशःसंभारेण भ्रातृ–साह–राजदेव–साह वोलिय–साह–जेहड–साह–लषपति–साह–गुणधर–पुत्ररत्न–साह–जयसिंह–साह–जगधर–साह–सलषण–साह–रत्नसिंहप्रमखपरिवारसारेण श्रीजिनशासनप्रभावकेण सकलसाधर्म्मिकवत्सलेन साहजेसलसुश्रावकेण कोद्दंडिकास्थापनपूर्व श्री श्रावकपौषधशालासहितः**सकलविधिलक्ष्मी–विलासालयः** श्रीअजितस्वामिदेव**विधिचैत्यालयः** कारित आचंद्रार्कं यावन्नन्दतात् शुभमस्तु श्रीर्भूयात् श्रीश्रमणसंघस्य।।छ।।श्रीः।।

47) चन्द्रप्रभः

संवत् 1376 कार्तिक सुदि 14 श्रीपत्तने **श्रीशांतिनाथविधिचैत्ये** श्रीचन्द्रप्रभस्वामिबिंबं श्रीशत्रुंजययोग्यं श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिः प्रतिष्ठितं कारितं स्व–पितृ–मातृ सा. धीणा सा. धन्नी सा. भुवनपाल सा. गोसल सा. खेतसिंह सुश्रावकैः पुत्र गणदेव–छूटड़ जयसिंह–परिवृतैः।

48) शान्तिनाथ–पञ्चतीर्थीः

ॐ संवत् 1379 मार्ग. वदि 5 प्रभु श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशल–सूरिभिः श्रीशांतिनाथबिंबं प्रतिष्ठितं कारितं च सा. पूना पुत्र सा. सहजपाल पुत्रैः सा घाघल गयधर थिरचंद्र स्वपितृपुण्यार्थं।।

49) महावीर–एकतीर्थीः

ॐ सवत् 1309 (? 1379) मार्गशीर्ष वदि 5 श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिन–कुशलसूरिभिः श्रीमहावीरदेवबिंबं प्रतिष्ठितं कारितं च स्वश्रेई (य) से भण.

गांगा सुतेन भण. बचरा सुश्रावकेण पुत्र सोनपाल सहितेन।।

50) जिनरत्नसूरि–मूर्तिः

संवत् 1379 मार्ग वदि 5 श्रीजिनश्वरसूरिशिष्य–श्रीजिनरत्नसूरिमूर्ति श्रीजिन–चंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठिता कारिता च **खरतर सा. जाल्हण पुत्ररत्न** तेजपाल रुद्रपाल श्रावक......... श्री समुदायसहितं। (उपर जिन प्रतिमा दोनों ओर 12 आचार्य)

51) जिनरत्नसूरि–मूर्तिः

सं. 1379 मार्ग वदि 5 श्रीजिनेश्वरसूरिशिष्यश्रीजिनरत्नसूरिमूर्तिः श्रीजिनचंद्र–सूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रति। का। खरतरगच्छे।

52) जिनचंद्रसूरि–मूर्तिः

सं. 1379 मार्ग व. 5 खरतर. श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीजिनचंद्रसूरि.......... प्रतिमा प्रतिष्ठितं।।

53) समवसरणं (धातुः)

सं. 1379 मार्ग व. 5 आ। जिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीसमवसरण (णं) प्रतिष्ठितं कारितं सा. वीजडसुतेन सा. पातासुश्रावकेण।।

54) पद्मप्रभमूर्ति–परिकरलेखः

संवत् 1379 श्रीपत्तने **श्रीशांतिनाथविधिचैत्ये** श्रीपद्मप्रभबिंबं श्रीजिनचंद्र–सूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च शा. हेमल पुत्र कडुआ शा. पूर्णचन्द्र शा. हरिपाल–कुलधर–सुश्रावकैः पुत्र ककुआ प्रमुखसर्वकुटुंबपरिवृतैः स्वश्रेयोर्थं।। शुभमस्तु।।

55) परिकरलेखः

संवत् 1379 श्रीमत्पत्तने श्रीशांतिनाथीयचैत्ये श्रीअणंतनाथदेवस्य बिंबं

---

50. खरतरवसही, शत्रुंजय : भँवर. (अप्रका.) लेखांक 87
51. छीपावसही, शत्रुंजयः भँवर. (अप्रका.), लेखांक 28, देहरी क्रमांक 784/34/2, शत्रुंजयः श. गि. द., लेखांक 144
52. शान्तिनाथ मंदिर भण्डारस्थ, नाकोड़ा; विनयसागर, नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, लेखांक 8
53. पार्श्वनाथ मंदिर, हाला, पाकिस्तान, जैन तीर्थ सर्व संग्रह भाग 2, पृ. 372
54. देहरी क्रमांक 104, खरतरवही, शत्रुंजयः श. गि. द., लेखांक 119
55. देरी क्रमांक 97/2 शत्रुंजयः श. गि. द. लेखांक 87

श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं । कारितं व्य. ब्रह्मशांति व्य. कडुक व्य. मेतुलाकेन।।

56) महावीर -मूर्तिः

संवत् 1379 श्रीपत्तने श्रीशांतिनाथीयचैत्ये श्रीमहावीरदेवबिंबं श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं सा. सहजपाल पुत्रैः सा. गयधर सा. थिरचन्द्र सुश्रावकैः सर्वकुटुंबपरिवृतेन भगिनी वीरिणी श्राविका श्रेयार्थं।

57) परिकरलेखः

संवत् 1379 श्रीशत्रुंजये यु.......... जिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं।।

58) पार्श्वनाथ-पञ्चतीर्थीः

सं. 1399 (? 1379) भ. श्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीपार्श्वनाथबिंबं प्रतिष्ठितं कारितं च सा केशव पुत्ररत्न सा जेहदु सुश्रावकेन पुण्यार्थं।

59) मुनिसुव्रत-परिकरलेखः

संवत् 1380 आषाढ़ वदि 8 श्रीशत्रुंजये श्रीमुनिसुव्रतस्वामिबिंबं श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च पद्मा.... त. रासल त. राजपाल पुत्र त. नायड त. नेमिचंद त. दुसलश्रावकैः पुत्र त. वीरम - डमकू-देवचंद्र-मूलचंद्र-महणसिंह....... ठारपुरिष्ठनिजकुटुंब-श्रेयोर्थं।। शुभमस्तु।।

60) महावीरः

सं. 1380 कार्तिक सुदि 12(?14) खरतरगच्छलङ्कार-श्रीजिनकुशलसूरि श्रीमहावीरदेवबिंबं प्रतिष्ठितं।।

---

56. खरतरवसही, शत्रुंजयः भँवर. (अप्रका.), लेखांक 73; देहरी क्रमांक 101, ख. शत्रुंजय : श. गि. द. लेखांक 118
57. देरी क्रमांक 67/3, शत्रुंजयः श. गि. द. लेखांक 82
58. पद्मप्रभ मंदिर, लखनऊ, पू. जै. भाग-2, लेखांक 1545
59. खरतरवसही, शत्रुंजयः भँवर. (अप्रका.) लेखांक 71; श. गि. द., लेखांक 117
60. जैन मंदिर, सराणा, जिनहरिसागरसूरि ले. सं., अप्रकाशित

61) पञ्चतीर्थी:

सं. 1380 वर्षे कार्तिक सुदि 13 खरतर श्री जिनचंद्रसूरिपट्टालंकार....... श्रीजिनकुशल.......... प्रतिष्ठितं।।

62) अम्बिका-मूर्तिः

सं. 1380 कार्त्तिक सूदि 14 श्री जिनचंद्रसूरि-शिष्य-जिनकुशलसूरिभिः श्रीअंबिका प्रतिष्ठितं।

63) आदिनाथमूर्तिः

संवत् 1381 वर्षे वैशाख वदि 5 गुरौ? वारे...... श्रीजिनकुशलसूरिभिः (आदि) नाथदेवबिंबं कारितं सा. वामदेव।

64)

सं. 1381 वैशाख वदि 5 श्रीपत्तने श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिन-कुशलसूरि (प्रति)ष्ठितं। कारितं च श्रीदेवगिरिवास्तव्य ऊकेशवंशीय सो. नाना पुत्ररत्नेन सो. गोगा सुश्रावकेण सो. .... तस्य भ्रातृ सा. सागण भार्या काऊ सुश्राविकायाः श्रे(योर्थ)आचंद्रार्क नंदतात् ।।6।। शुभं भ (वतु)

65) अम्बिकामूर्तिः

सं. 1381 वैशाख व. 5 श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिरंबिका प्रतिष्ठिता।।

66) जिनप्रबोधसूरिमूर्तिः

।।सं. 1381 वैशाख व. 5 श्रीपत्तने श्रीशांतिनाथ**विधिचैत्ये** श्रीजिनचंद्रसूरि-शिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरिमूर्तिः प्रतिष्ठिता।। कारिता सपरिवारैः स्वश्रेयोऽर्थं।।6।।

---

61. भाभा पार्श्वनाथ देरासर, पाटणः जै. धा. प्र. ले. सं., भाग 1, लेखांक 236; भो. पा. लेखांक 1590
62. हाला मंदिर, ब्यावर, भँवर. (अप्रका.) क्रमांक 1; जै. ती. सर्व. भाग 2 पृ. 372
63. खरतरवसही, शत्रुंजयः भँवर. (अप्रका.), लेखांक 69
64. 'शत्रुंजय गिरिराज अप्रकट प्रतिमालेखो', मधुसूदन ढांकी और लक्ष्मण भोजकः संबोधि, वो. 7, नं. 4; भँवर. (अप्रका.) लेखांक 106
65. महावीर जिनालय (वैदो का) बीकानेरः ना. बी. लेखांक 1312
66. हाला मंदिर, ब्यावरः भँवर. (अप्रका.) क्रमांक 1

67) जिनप्रबोधसूरिमूर्तिः

।।सं. 1381 वैशाख वदि 5 श्रीपत्तने श्रीशांतिनाथ**विधिचैत्ये** श्रीजिनचंद्र-सूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरिमूर्तिः प्रतिष्ठिता।। करिता च सा. कुमारपालरत्नैः सा. महणसिंह सा. देपाल सा. जगसिंह सा. मेहा सुश्रावकैः सपरिवारैः स्वश्रेयोऽर्थं।।6।।

68) नमिनाथ-परिकरलेखः

संवत् 1381 वर्षे वैशाख वदि 9 गुरौ वारे खरतरगच्छीय-श्रीमद्जिनकुशल-सूरिभिः श्रीनमिनाथदेवबिंबं प्रतिष्ठितं........ देवकुल प्रदीपक......श्रीमद्देव-गुरुआज्ञाचिन्तामणि........ संगमकेन..................।।

69) शान्तिनाथ-पञ्चतीर्थीः

सं. 1381 वर्षे आषाढ़ वदि........ खरतरश्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीशांति-नाथबिंबं का. प्र. श्रेयोर्थं देहसुतेन धामासुश्रावकेण।।

70) धर्मनाथः

।।र्द.।। संवत् 1381 श्रीधर्मनाथबिंबं श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यश्रीजिनकुशलसूरि-भिः प्रतिष्ठितं कारितं सा. सामंतसुत सा. रउला भार्या तेजू पुत्रैः सा. धणपति सा. नरसिंघ सा. रणसिंह सा. गोविन्द सा. हकीमसिंघ सुश्रावकैः......... आचंद्रार्कं नंदतात्। शुभंभवतु। **सकलविधिसंघस्य।**

71) परिकरलेखः

संवत् 1381 श्रीधर्मनाथबिंबं श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च। सा. सामंत सुत राउल भार्या तेजु पुत्रैः सा. धणपति सा. नरसिंघ सा. गोविंद सा. भीमसिंह उपकेशगच्छे (सातेउरीगच्छे) राउल भार्या श्रेयार्थं।।छः।। शुभं भवतु चतुर्विधसंघस्य।।

---

67. खरतरवसही, ऋषभदेव मंदिर, देलवाड़ा (उदयपुर) प्रा. ले. सं., लेखांक 56; पू. जै. भाग 2, ले. 1988
68. देहरी क्रमांक 86, खरतरवसही, शत्रुंजयः श. गि. द. लेखांक 113
69. शांतिनाथ देरासर, कनासा पाड़ा, पाटणः भो. पा, लेखांक 1729 अ; महावीर जिनालय, कनासानो पाडो, पाटणः जै. धा. प्र. ले. सं., भाग 1, लेखांक 378
70. खरतरवसही, शत्रुंजयः भँवर (अप्रका.) लेखांक 67
71. देहरी क्रमांक 849/82, खरतरवसही, शत्रुंजयः श. गि. द. लेखांक 112

72) चारुचन्द्रसूरिमूर्तिः

1) संवत् 1383 वर्षे ज्येष्ठ वदि 8 गुरौ रौद्र-

2) पल्लीय श्रीचारुचंद्रसूरीणां मूर्तिः.... कु..... म

3) चंद्रशिष्य बुद्धिनिवास कारापिता।।

(अष्टापदमंदिरे पाषाणस्थंते स्थिता साधुभिमूर्तिः सन्मुखे चामरधारश्च साधुमूर्तिर्मस्तकोपरितनभागे जिनमूर्तिः।।)

73) चारुचन्द्रसूरि-मूर्तिः

संवत् 1383 वर्षे ज्येष्ठ वदि 8 गुरौ रौद्रपल्लीय श्रीचारुचंद्रसूरीणां मूर्ति वा. कुमुदचंद-शिष्य वा. बुद्धिनिवासेन कारापिता।।

74) पार्श्वनाथ-पञ्चतीर्थीः

।।60।। संवत् 1383 वर्षे फाल्गुन वदि नवमी दिने सोमे श्रीजिनचंद्रसूरिशिष्य श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीपार्श्वनाथबिंबं प्रतिष्ठिता कारितं दो. राजा पुत्रेण दो. अरसिंहेन स्वमातृः पितृः श्रेयोर्थं।।

75) आदिनाथ-पञ्चतीर्थीः

सं. 1384 माघ सुदि 5 श्री जिनकुशलसूरिभिः श्रीआदिनाथबिंबं प्रतिष्ठितं कारितं च सा. सोमण पुत्र सा. लाखण श्रावकेन भावग हरिपाल युतेन।

76) अम्बिकामूर्तिः

ॐ।। सं. 1384 माघ सुदि 5 श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च...... सा. उ...........पाली स।।

77. पञ्चतीर्थीः

ॐ।। सं. 1384 माघ सुदि 5 श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं च..... सा. उ......... पाली स।।

---

72. अनुपूर्ति लेख, शत्रुंजयः श. गि. द., लेखांक 533
73. दैहरी क्रमांक 268/2-शत्रुंजयः श. गि. द., लेखांक 101
74. सुपार्श्वनाथ जिनालय, नाहटों में, बीकानेरः ना. बी. लेखांक 1767
75. चिन्तामणि जी का मंदिर, बीकानेरः ना. बी. लेखांक 299
76. पार्श्वनाथमंदिर, श्रीमालों की दादाबाड़ी, जयपुरः प्र. ले. सं., भाग 1, लेखांक 124
77. बड़ा मंदिर, नागोरः जिनहरिसागरसूरि लेख संग्रह अप्रकाशित

77. पञ्चतीर्थीः

सं. 1384 माघ शु. 5 श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं च शा. बठेर पालीका

78. समवशरणं (धातुः)

श्रीजिनचंद्रसूरि शिष्य श्रीजिनकुशलसूरिभिः

79) भरतेश्वरमूर्तिः

सं. 1391 माघ सुदि 15 श्री पत्तने श्रीशांतिनाथदेव**विधिचैत्ये** श्रीजिनकुशल-सूरिशिष्यैः श्रीजिनपद्मसूरिभिः श्रीभरतेश्वरमूर्ति प्रतिष्ठित कारिता च व्य. घड़सिंह भार्या राणी सुश्राविकया पु........

80) बाहुबलिमूर्तिः

संवत् 1391 माघ सुदि 15 श्रीपत्तने श्रीशांतिनाथविधि (चैत्य) खरतर श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीबाहुबलिमूर्ति प्रतिष्ठितं च कारितं व्य. .... सिंह पुत्रैः जा।

81) पार्श्वनाथ-पञ्चतीर्थीः

सं. 1391 मा. सु. 15 खरतरगच्छीय श्रीजिनकुशलसूरिशिष्यैः श्री जिनपद्मसूरिभिः श्रीपार्श्वनाथ प्रतिमा प्रतिष्ठिता कारिता च मव. बाहि सुतेन रत्नसिंहेन पुत्र आल्हादि परिवृतेन स्वपितृव्य सर्व पितृव्य पुण्यार्थं।

82) पट्टिकालेखः

श्रीमुनिसुव्रतजिनः । **खरतर जाल्हपुत्र** तेजाकेन श्रीपुत्री वीरी श्रे. कारितं।।

83) वाचक-हेमप्रभमूर्तिः

वा. हेमप्रभमूर्त्ति

---

78. हाला मंदिर, ब्यावरः भँवर. (अप्रका.) क्रमांक 2
79. वल्लभ विहार, शत्रुंजयः भँवर. (अप्रका.) लेखांक 53
80. रायणवृक्ष के पास, देहरी में, वल्लभ विहार, शत्रुंजयः भँवर., लेखांक 52
81. पार्श्वनाथ मंदिर, करेड़ाः पू. जै. भाग-2, लेखांक 1926
82. विमलवसही, आबूः प्रा. जै.ले.सं. भाग2, लेखांक 181; अ. प्रा. जै. ले. सं., भाग 2, लेखांक 113
83. वल्लभ-विहार, शत्रुंजयः भँवर. (अप्रका), लेखांक 54;1 (इन्हें 1336 वै. व. 7 को वाचनाचार्य पद मिला था)

84) वासुपूज्य-पञ्चतीर्थी:

सं. 1400 वर्षे वैशाख सुदि 10 रवौ उपकेशज्ञा. माए...... भा. धांधलदेवि द्वि.भा. कणकूश्रेयोर्थं वणसिंहेन श्रीवासुपूज्यबिंबं का. प्र. **रुद्रपल्लीयपक्षे** श्रीसूरिभिः।।

85) पार्श्वनाथ - पञ्चतीर्थी:

सं. 1408 वैशाख सुदि 5 उपकेश साधु पेथड़ भार्या वील्हू सुत महं. बाहड़ेन पूर्वजनिमित्तं श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं खरतरगच्छे श्रीजिनचंद्र-सूरिभिः।।

86) राजगृहगतपार्श्वनाथमंदिर-प्रशस्तिः

1) प.।। ॐ नमः श्रीपार्श्वनाथाय।। श्रेयश्रीविपुलाचलामरगिरिस्थेयः स्थितिस्वीकृतिः

---

84. जैन मंदिर, ऊँझा : जै. धा. प्र. ले. सं., लेखांक 191
85. चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर : ना. बी. लेखांक 417
86. पार्श्वनाथ मंदिर, राजगृहः पू. जै., भाग-1, लेखांक 236 ; प्रा. जै. ले. सं. भाग 2, लेखांक 380

खरतरगच्छ का लेख तो सही! परंतु सं. 1234 का नहीं (सं. 1534 का है, उसकी सिद्धि)

पृ. 114 पर दिया गया ख. प्र. ले. संग्रह का लेख नं. 6 जो पू. जैन भाग–2 में 1289 नं. पर है, उस मूल ग्रंथ से यह लेख सं. 1534 का सिद्ध होता है। देखिये–

जैन लेख संग्रह ।

कतिपय चित्र और आवश्यक तालिकायों से युक्त

द्वितीय खंड ।

संग्रह कर्त्ता

पूरण चंद नाहर, एम० ए०, बी० एल०,

वकील हाईकोर्ट, रयाल एसिआटिक सोसाइटी, एसियाटिक सोसाइटी बंगाल, रिसार्च सोसाइटी विहार–उड़ीसा आदिके मेम्बर, विश्वविद्यालय कलकत्ता के परीक्षक इत्यादि २

कलकत्ता ।

वीर सम्वत् २४५३

[1288]

सं० १५३४ वर्षे आषाढ सुदि १ गुरौ उप० कयणश्चा गोत्रे सा० लषमण भार्या लषमादे पु० टिता साभा भा० कील्हणदे स्वश्रेयसे श्री शीतलनाथ बिंबं कारितं प्र० जापड़ाण गच्छे श्री कमलचन्द्र सूरिभिः ॥

[1289]

सं० १५३४ वर्षे आषाढ सुदि १ गुरौ ऊकेश वंशे जहड गोत्रे सा० उगच पुत्र सा० खरहकेन भा० नीविणि पुत्र माला वला पासड सहितेन धर्म्मनाथ बिंबं निज श्रेयोर्थं कारापितं श्री खरतरगच्छे भट्टा० श्री जिनचन्द्र सूरिभिः ॥

[1290]

संवत् १५३४ वर्षे माह वदि ५ तिथौ सोमे उपकेश ज्ञाती धरावही गोत्रे लखण वीर्पा म०.कान्हा भार्या हीमादे पुत्र सतपाक तिहुअणाभ्यां पित्रोः पुण्यार्थं श्री शीतलनाथ बिंबं कारितं श्री कन्हरसा तपागच्छे श्री पुण्यरत्न सूरि पट्टे श्री पुण्यवर्द्धन सूरिभिः प्रतिष्ठितं ॥

[1291]

सं० १५३४ मा० शु० १० डा० व्य० नरसिंह भार्या नमलदे पुत्र मेलाकेन भा० वीराणि सुत रातादि कुटुम्बयुतेन स्वश्रेयसे श्री आदिनाथ बिंबं कारितं प्र० श्री लक्ष्मीसागर सूरिभिः ॥ पालणपुरे ॥

[1292]

संवत १५३५ वर्षे आषाढ द्वितीया दिने उपकेश ज्ञातीय आयार गोत्रे लूणाउत शाखायां सा० झांझा पु० चउत्थ० भा० मयलहदे पु० मूलाकेन आत्मश्रेयसे श्री पद्मप्रभ बिंबं कारितं ककुदाचार्य सन्ताने प्रतिष्ठितं श्री देवगुप्त सूरिभिः ॥

[1293]

संवत १५४६ वर्षे आषाढ विदि २ ओसवाल ज्ञातौ श्रेष्ठि गोत्रे वैद्य शाखायां सा०

परिशिष्ट–6

रुद्रपल्लीय गच्छ खरतरगच्छ की शाखा नहीं हैं।

महो. विनयसागरजी ने 'खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह' के पुरोवाक् पृ. xxxi में खरतरगच्छ की शाखाओं आदि का उल्लेख इस प्रकार किया है–

''खरतरगच्छ की जो 10 शाखाएँ – मधुकर, रुद्रपल्लीय, लघु, पिप्पलक, आद्यपक्षीय, बेगड़, भावहर्षीय, आचार्य, जिनरंगसूरि और मंडोवरा शाखा एवं 4 उपशाखाओं – क्षेमकीर्ति, सागरचंद्रसूरि, जिनभद्रसूरि और कीर्तिरत्नसूरि के भी जो लेख प्राप्त होते हैं वे इसमें संकलित किये गए हैं।''

इस उल्लेख में उन्होंने रुद्रपल्लीय गच्छ को भी खरतरगच्छ की शाखा गिनी है, वह उचित नहीं है, क्योंकि पृ. 19 पर बताये अनुसार–जैसे रुद्रपल्लीय गच्छ के ग्रंथों में चांद्रकुल से ही रुद्रपल्लीय गच्छ की उत्पत्ति बताई है, एवं रुद्रपल्लीय शब्द के साथ कहीं पर भी खरतर शब्द का प्रयोग अपने गच्छ के संबोधन हेतु नहीं किया है। **इसी तरह 'खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह' में रुद्रपल्लीय गच्छ के करीबन 40–50 लेख दिये हैं, उनमें भी कहीं पर भी खरतर शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है।**

इस परिशिष्ट में खरतरगच्छ की विभिन्न शाखाओं के लेख दिये हैं, उनमें 'खरतर' शब्द का प्रयोग साथ में किया हुआ मिलता है। केवल मधुकर गच्छ के लेखों मे कही पर मधुकरगच्छे, कहीं पर खरतरमहुकर इस प्रकार वैकल्पिक प्रयोग मिलता है। अगर रूद्रपल्लीयगच्छ खरतरगच्छ की शाखा होता तो उसमें भी खरतर शब्द का प्रयोग मिलता, परंतु वैसा नहीं है।

अतः रुद्रपल्लीय गच्छ के ग्रंथों में दिये गये अपने गच्छ की उत्पत्ति के उल्लेख, प्रशस्तिओं एवं लेखों के संग्रह से सिद्ध होता है कि रुद्रपल्लीय गच्छ, खरतरगच्छ की शाखा नहीं है, परंतु जिनशेखरसूरिजी से निकला हुआ खरतरगच्छ (जो जिनदत्तसूरिजी (सं. 1204) से शुरु हुआ) का समकालीन गच्छ है।

खरतरगच्छ की शाखाओं एवं रुद्रपल्लीय गच्छ के लेख यहाँ पर दिये जा रहे हैं, जिनके अवलोकन से उपरोक्त बात स्पष्ट समझ में आ जाएगी।

1. लघु खरतरगच्छ का लेख

(1028) शीतलनाथ–पञ्चतीर्थीः

सं. 1567 वर्षे माघ सु. 5 दिने श्रीमालज्ञातीय धांधीया गोत्रे सा. दोदा

भार्या संपूरी पुत्र सा. उदयराज भा. टीलाभ्यां श्रीशीतलनाथबिंबं कारितं वृद्धभ्रातृ सा. डालण पुण्यार्थं प्रतिष्ठितं **श्रीलघुखरतरगच्छे** श्री जिनराजसूरिपट्टे श्रीजिनचंद्र–सूरिभिः। वैशाख सु. 10

2. बृहद् खरतरगच्छ के लेख :–

(1460) सुविधिनाथः

स्वस्ति श्री।। संवत् 1712 वर्षे फाल्गुण वदि 8 , गुरौ लोढागोत्रे सं. वीरधवल भार्यया पूनमदेवी नाम्न्या श्रीसुविधिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं च ..... **श्रीबृहत्खरतरगच्छे श्रीजिनहर्षसुरिभिः** ।।श्रीरस्तु।।

(1845) सुमतिनाथ–मूलनायकः

सं. 1879 फागण वदि 12 तिथौ शनिवासरे ओशवंशीय नीनाकेन श्रीसुमतिजिनबिंबं कारितं, प्रतिष्ठितं **बृहत्खरतरगच्छीय भट्टारक** श्रीजिनहर्षसूरिभि .... शुभं भवतु

3. आद्यपक्षीय गच्छ के लेखः–

(1463) पार्श्वनाथः–

संवत् 1714 वैशाख सुदि पंचम्यां महाराजाधिराज महाराजा श्रीजसवंतसिंहजी विजयिराज्ये भं. ताराचंद भार्यया कल्याणदेव्या श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारितं । **श्रीबृहत्खरतरगच्छे श्रीआद्यपक्षीय भट्टारक** श्रीजिनहर्षसूरिभिः ।। शुभं भूयात्।

(1464) पार्श्वनाथः

संवत् 1714 वैशाख सुदि पंचम्यां महाराजाधिराज महाराजा श्रीजसवंतसिंहजी विजयिराज्ये भं. ताराचंद भार्यया कल्याणदेव्या श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारितं । **श्रीबृहत्खरतरगच्छे श्रीआद्यपक्षीय भट्टारक** श्रीजिनहर्षसूरिभिः ।। शुभं भूयात्।

4) आचार्यगच्छीय के लेखः–

(1970) कुन्थुनाथः

1. ।। संवत् 1897 वर्षे शाके 1762 प्रवर्त्तमाने मासे वैशाखमासे शुक्लपक्षे तिथौ षष्ठ्यां गुरुवारे विक्रमपु–

2. र वास्तव्ये ओसवंशे गोलछा गोत्रीय साहजी श्रीमुलतानचंदजी तद्भार्या तीजां तत्पुत्र मिलापचंद्र श्रीकुंथुनाथबिं-

3. बं कारितं च तथा **बृहत्खरतरआचार्यगच्छीय** भट्टारक श्रीजिनचंद्रसूरि पदस्थित श्रीजिनोदयसूरिभिः प्रतिष्ठितं।

4. श्रीरतनसिंघजी बिजै राज्ये कारक पूजकानां सदा वृद्धिं भूयात् ।। श्री

(1848) शालालेखः

श्रीगणेशायनमः।। संवत् 1881 रा वर्षे शाके 1746 प्रवर्त्तमाने मासोत्तममासे मिगसरमासे कृष्ण पक्षे त्रयोदशी तिथौ गुरुवारे महाराजाधिराजा महाराजा जी श्रीगजसिंहजी विजयराज्ये **बृहत्खरतर आचारगच्छे** जंगम युगप्रधान भट्टारक श्रीजिनचंद्रसूरिजी तत् बृहत्शिष्य पं।प्र। श्रीअभयसोमगणि संवत् 1878 रा मिति माहसुदि 12 दिने स्वर्ग प्राप्तः तदोपरि पं. । ज्ञानकलशेन इदं शाला कारापिता संवत् 1881 रा मिति मिगसिर वदि 13 दिने भट्टारक श्रीजिनउदयसूरिजी री आज्ञातः पं. ।।प्र.। लब्धिधीरेण प्रतिष्ठिते श्रीसंघेन हर्षमहोत्सवो कृतः सीलावटो गजधर अलीलखानी शाला कृता।। यावत् जम्बुद्वीपे यावत् नक्षत्र मण्डिपो मेरु यावत् चंद्रादित्यो तावत् शाला स्थिरी भवतु 1 लिपिकृतारियं। पं। हर्षरंग मुनिभिः।। शुभंभवतु।। श्रीकल्याण-मस्तु।। ।।श्री।।

5. बेगड़ गच्छ के लेखः-

(1514) बेगड़गच्छ-उपाश्रयलेखः

1) ।।ॐ।।ॐ नमः श्रीपार्श्वनाथाय नमः।। श्रीवागडेशाय नमः

2) ।। संवत् 1781 वर्षे शाके 1746 प्रवर्त्तमाने महामांगल्यप्रदो

3) मासोत्तम चैत्रमासे लीलविलासे शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां

4) गुरुवारे उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रे वृद्धिनामयोगे एवं शुभदि-

5) ने श्रीजैसलमेरूगढ़ महादुर्गे राउल श्री 8 अषैसिंहजी विजैराज्ये

6) **श्रीखरतरवेगड़गच्छे** भट्टारक श्रीजिनेश्वरसूरिसंताने भट्टारक

7) श्रीजिनगुणप्रभसूरिपट्टे भ. श्रीजिनेशरसूरि तत्पट्टे भट्टारक

8) जिनचंद्रसूरि पट्टे भट्टारक श्रीजिनसमुद्रसूरि तत्पट्टालंकारहार सा.

9. भट्टारक श्री 107 श्रीजिनसुंदरसूरि तत्पट्टे युगप्रधान भट्टारक श्री

10. श्रीजिनउदयसूरि विजयराज्ये प्राज्यसम्राज्ये।। श्रीरस्तुः।।श्री।।

6. भावहर्ष गच्छ के लेखः–

(2194) चन्द्रप्रभः

।।सं. 1910 शाके 1775 मासोत्तममासे माघमासे शुक्लपक्षे 5 तिथौ गुरुवारे श्रीपालीनगरे अंजनशलाका कृतं। समस्तसंघसंयुतेन स्वश्रेयसे श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र–बिंबं कारितं। प्रतिष्ठितं।। श्रीजिनपद्मसूरिभिः **खरतरश्रीभावहर्षगच्छे।** श्रीमद्–वीरमपुरनगरे जिनालय स्थापितं।।

7. पिप्पलक गच्छ का लेख–

(1949) पञ्चतीर्थीः

।।सं. 1893 माघशित 10 बु। से.। मोतीचंद तेन श्रीपञ्चतीर्थी कारितं **खरतरपीप्पलीयगच्छे** भ। श्रीजिनचंद्रसूरिभिः विद्या प्रति खरतरगच्छे भ।। श्री जिनमहेन्द्रसूरिभिः।

8. जिनरंग शाखा का लेखः–

(937) पादुकायुग्मः

सं. 1780 मा. वर्षे सिते 12।। **बृहत्खरतरगच्छे यु. भ. श्रीजिनरङ्गसूरि–शाखायां.** शि. चरणरेणुना दीपविजयायाः स्थापिते। श्रीकीर्त्तिविजयायां...... चरणसरसीरुहे प्रतिष्ठितं।। साध्वी।। श्रीसौभाग्यविजयाया। पादपद्म प्रतिष्ठितं।

9. मधुकर गच्छ के लेख–

(937) शीतलनाथ–पञ्चतीर्थीः

संवत् 1547 वर्षे माघ सुदि 13 रवौ श्रीश्रीमालज्ञातीय शिया भार्या हेली सुत दो. धाइंयाकेन भा. सलखू सु. दो दासां राणा कर्ण सा गांगा पौत्र कमलसीह भा. पोता डाहिया प्र. कुटुम्बयुतेन प्र. **श्रीमधुकरीयखरतर** श्रीमुनिप्रभसूरिभिः।। श्री शीतलबिंबं कारितं।

(1092) नमिनाथ–पञ्चतीर्थीः

सं. 1585 वर्ष माघ सुदि 1 शुक्रे श्रीश्रीमालज्ञातीय सं. वइरसी भा. लष्मादे सु. वानर भा. मेठू सु. गहगाकेन पितृ–मातृ–आत्मश्रेयसे श्रीनमिनाथबिंबं का प्र. **श्रीमधुकरगच्छे** भ. श्रीधनप्रभसूरिभिः।। पाररीवा.।।

यहाँ पर खरतर शब्द का वैकल्पिक प्रयोग पाया जाता है।

10. रूद्रपल्लीय गच्छ के लेखः–

(721) आदिनाथ–पञ्चतीर्थीः

संवत् 1525 वर्षे फागुण सुदि 7 शनौ उपकेशज्ञातीय श्रीनाहरगोत्रे सा. देवराजसंताने सा. लोलापुत्र साह सोनपालेन भार्या पुत्र वूवासहितेन स्वपुण्यार्थं श्री आदिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं **श्रीरुद्रपल्लीयगच्छे** श्रीजिनराजसूरिपट्टे श्रीजिनोदयसूरिभिः।

(722) सुमतिनाथ–चतुर्विंशतिः

।।सं. 1525 वर्षे फागुण सुदि 7 शनौ उपकेशज्ञातीय श्रीनाहरगोत्रे सा. जाटा माल्हा संताने सा. देवराज पुत्र सा. लाला भार्या पुत्र सं. सुख्यतेन भार्या सूदी पुत्र सं. करमा सहितेन स्वपुण्यार्थ श्रीसुमतिनाथचतुर्विंशतिपट्टः कारितः प्रतिष्ठतं **श्रीरुद्रपल्लीयगच्छे** श्रीजिनराजसूरिपट्टे भ. श्रीजिनोदयसूरिभिः ।।श्री।।

(917) चतुर्विंशतिः

।।ॐ।। संवत् 1538 वर्षे जेठ सुदि 2 मंगलवारे उपकेशज्ञातीय सोनीगोत्री सं. तिणाया पुत्र सा. संसारचंद्र पुण्यार्थ श्रीचतुर्विंशति कारापितं। प्र.। **रुद्रपल्लीयगच्छे** भट्टारक श्रीजिनदत्तसूरिपट्टे (? श्रीजिनचंद्रसूरिपट्टे) भ. श्रीदेवसुन्दरसूरिभिः।।

रुद्रपल्लीय गच्छ के इन लेखों में कहीं पर भी 'खरतर' शब्द का प्रयोग नहीं है। अतः स्पष्ट है कि रुद्रपल्लीय गच्छ खरतरगच्छ की शाखा नहीं है।

परिशिष्ट–7

निष्पक्ष इतिहासकार पं. कल्याणविजयजी का ऐतिहासिक उपसंहार

इतिहास साधन होने के कारण हमने तपागच्छ, खरतरगच्छ, आंचलगच्छ आदि की यथोपलब्ध सभी पट्टावलियों तथा गुर्वावलियाँ पढ़ी हैं और इससे हमारे मन पर जो असर पड़ा है उसको व्यक्त करके इस लेख को पूरा कर देंगे।

वर्तमानकाल में खरतरगच्छ तथा आंचलगच्छ की जितनी भी पट्टावलियां हैं, उनमें से अधिकांश पर कुल गुरुओं की बहियों की प्रभाव है, विक्रम की दशवीं शती तक जैन श्रमणों में शिथिलाचारी साधुओं की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि उनके मुकाबले में सुविहित साधु बहुत ही कम रह गये थे। शिथिलाचारियों ने अपने अड्डे एक ही स्थान पर नहीं जमाये थे, उनके बड़ेरे जहाँ–जहाँ फिरे थे, जहाँ–जहाँ के गृहस्थों को अपना भाविक बनाया था, उन सभी स्थानों में शिथिलाचारियों के अड्डे जमे हुए थे, जहाँ उनकी पौषधशालाएँ नहीं थीं वहाँ अपने गुरु–प्रगुरुओं के भाविकों को सम्हालने के लिये जाया करते थे, जिससे कि उनके पूर्वजों के भक्तों के साथ उनका परिचय बना रहे, गृहस्थ भी इससे खुश रहते थे कि हमारे कुलगुरु हमारी सम्हाल लेते हैं, उनके यहाँ कोई भी धार्मिक कार्य प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, संघ आदि का प्रसंग होता, तब वे अपने कुलगुरुओं को आमन्त्रण करते और धार्मिक विधान उन्हीं के हाथ से करवाते, धीरे–धीरे वे कुलगुरु परिग्रहधारी हुए; वस्त्र, पात्र के अतिरिक्त द्रव्य की भेंट भी स्वीकारने लगे, तबसे कोई गृहस्थ अपने कुलगुरु को न बुलाकर दूसरे गच्छ के आचार्य को बुला लेता और प्रतिष्ठादि कार्य उनसे करवा लेता तो उनका कुलगुरु बना हुआ आचार्य कार्य करने वाले अन्य गच्छीय आचार्य से झगड़ा करता।

इस परिस्थिति को रोकने के लिए कुलगुरुओं ने विक्रम की 12वीं शताब्दी से अपने–अपने श्रावकों के लिए अपने पास रखने शुरू किये, किस गाँव में कौन–कौन गृहस्थ अपना अथवा अपने पूर्वजों का मानने वाला है उनकी सूचियां बनाकर अपने पास रखने लगे और अमुक–अमुक समय के बाद उन सभी श्रावकों के पास जाकर उनके पूर्वजों की नामावलियाँ सुनाते और उनकी कारकीर्दियों की प्रशंसा करते, तुम्हारे बड़ेरों को हमारे पूर्वज अमुक आचार्य महाराज ने जैन बनाया था, उन्होंने बड़ेरों को हमारे पूर्वज अमुक आचार्य महाराज ने जैन बनाया था, उन्होंने

अमुक 2 धार्मिक कार्य किये थे इत्यादि बातों से उन गृहस्थों को राजी करके दक्षिणा प्राप्त करते।

यह पद्धति प्रारम्भ होने के बाद वे शिथिल साधु धीरे-धीरे साधुधर्म से पतित हो गए और 'कुलगुरु' तथा 'बही वंचों' के नाम से पहिचाने जाने लगे। आज पर्यन्त ये कुलगुरु जैन जातियों में बने रहे हैं, परन्तु विक्रम की बीसवीं सदी से वे लगभग सभी गृहस्थ बन गए हैं, फिर भी कतिपय वर्षों के बाद अपने पूर्वज-प्रतिबोधित श्रावकों को वन्दाने के लिए जाते हैं, बहियाँ सुनाते हैं और भेंट पूजा लेकर आते हैं।

इस प्रकार के कुलगुरुओं की अनेक बहियाँ हमने देखी और पढ़ी हैं उनमें बारहवीं शती के पूर्व की जितनी भी बातें लिखी गई हैं वे लगभग सभी दन्तकथामात्र हैं, इतिहास से उनका कोई सम्बन्ध नहीं, गोत्रों और कुलों की बहियाँ लिखी जाने के बाद की हकीकतों में आंशिक तथ्य अवश्य देखा गया है, **परन्तु अमुक हमारे पूर्वज आचार्य ने तुम्हारे अमुक पूर्वज को जैन बनाया था और उसका अमुक गौत्र स्थापित किया था, इन बातों में कोई तथ्य नहीं होता, गौत्र किसी के बनाने से नहीं बनते, आजकल के गौत्र उनके बड़ेरों के धन्धों रोजगारों के ऊपर से प्रचलित हुए हैं, जिन्हें हम 'अटक' कह सकते हैं।**

खरतरगच्छ की पट्टावलियों में अनेक आचार्यों के वर्णन में लिखा मिलता है कि अमुक को आपने जैन बनाया और उसका यह गौत्र कायम किया, अमुक आचार्य ने इतने लाख और इतने हजार अजैनों को जैन बनाया, इस कथन का सार मात्र इतना ही होता है कि उन्होंने अपने उपदेश से अमुक गच्छ में से अपने सम्प्रदाय में इतने मनुष्य सम्मिलित किए। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की बातों में कोई सत्यता नहीं होती, लगभग आठवीं नवमीं शताब्दी से भारत में जातिवाद का किला बन जाने से जैन समाज की संख्या बढ़ने के बदले घटती ही गई है। इक्का-दुक्का कोई मनुष्य जैन बना होगा तो जातियों की जातियाँ जैन समाज से निकलकर अन्य धार्मिक सम्प्रदायों में चली गई हैं, इसी से तो करोड़ों से घटकर जैन समाज की संख्या आज लाखों में आ पहुँची है।

ऐतिहासिक परिस्थिति उक्त प्रकार की होने पर भी बहुतेरे पट्टावली लेखक अपने अन्य आचार्यों की महिमा बढ़ाने के लिए हजारों और लाखों मनुष्यों को नये जैन बनाने का जो ढिण्ढोरा पीटे जाते हैं। इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता,

इसलिए ऐतिहासिक लेखों प्रबन्धों और पट्टावलियों में इस प्रकार की अतिशयोक्तियों और कल्पित–कहानियों को स्थान नहीं देना चाहिए।

हमने तपागच्छ की छोटी–बड़ी पच्चीस पट्टावलियां पढ़ी हैं और इतिहास की कसौटी पर उनको कसा है, हमको अनुभव हुआ कि **अन्यान्य गच्छों की पट्टावलियों की अपेक्षा से तपागच्छ की पट्टावलियों में अतिशयोक्तियों और कल्पित कथाओं की मात्रा सब से कम है और ऐसा होना ही चाहिए, क्योंकि कच्ची नींव पर जो इमारत खड़ी की जाती है,** इसकी उम्र बहुत कम होती है।

हमारे जैन संघ में कई गच्छ निकले और नामशेष हुए , इसका कारण यही है कि उनकी नींव कच्ची थी, आज के जैन समाज में तपागच्छ, खरतरगच्छ, आंचलगच्छ आदि कतिपय गच्छों में साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकात्मक चतुर्विध जैन संघ का आस्तित्व है, इसका कारण भी यही है कि इनमें वास्तविक सत्यता है। **जो भी सम्प्रदाय वास्तविक सत्यता का प्रतिष्ठित नहीं होते, वे चिरंजीवी भी नहीं होते, यह बात इतिहास और अनुभव से जानी जा सकती है।**

–पं. कल्याणविजयजी गणि

परिशिष्ट–8

जिनपीयूषसागरसूरिजी के पत्र एवं उनकी समीक्षा

पत्र नं.1

पुज्यपाद गीतार्थ गच्छाधिपति आचार्यदेवेश

श्री विजय जयघोष सूरीश्वरजी म.सा. आदि ठाणा

यथायोग्य वंदन–/अनुवंदन स्वीकारें

आपश्री का आरोग्य रत्नत्रय की आराधना व शासन प्रभावना के अनुकूल होगा। देव–गुरु कृपा एवं आपश्री के असीम अनुग्रह से अत्र सर्व कुशल मंगल वर्त्त रहा है। आपश्री के प्रभावी सान्निध्य में प्रवचन, वाचना, स्वाध्याय, जप, तप आदि अनुष्ठानों का अद्‌भूत आध्यात्मिक महायज्ञ चल रहा होगा। अत्र वर्षावास में आराधना साधना निरंतर प्रवर्तमान है।

विषय– संवेगरंग शाला के कर्त्ता अर्हन्नीति के उन्नायक खरतरगच्छीय आचार्यश्री जिनचंद्रसूरि को प्र.प्रशांत वल्लभ विजयजी के द्वारा **पाप पडल परिहरों** में तपागच्छीय उल्लेखित करना।

क) पूज्यश्री! वर्षावास के पूर्व शेषकाल में विहार के दौरान ब्यावर (राज.) श्री शांतिनाथ जैन श्वेताम्बर मंदिर में स्थित ज्ञान भण्डार में संवेगरंगशाला ग्रंथ से उदृत पाप पडल परिहरों पुस्तक पढ़ने को मिला। यह पुस्तक आपश्री की प्रेरणा/आशीर्वाद से प्र. प्रशांत वल्लभ विजय जी ने संकलन किया है। इस पुस्तक में श्री संवेगरंगशाला ग्रंथ के परिचय में रचनाकार खरतरगच्छीय जिनचंद्रसूरि को तपागच्छीय सम्बोधन से सम्बोधित करने का अनधिकृत कार्य किया गया है।

ख) सं. 1080 में पाटण में दुर्लभराजा के समक्ष खरतरविरुदधारक, चैत्यवासी परंपरा उन्मूलक आचार्यदेवेश श्री जिनेश्वरसूरि के शिष्य बने संवेगरंगशाला के रचनाकार श्री जिनचंद्रसूरि। आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि ने श्री जिनचंद्रसूरि को एवं नवांगी टीकाकार स्थंभनपार्श्वनाथ प्रगटकर्ता श्री अभयदेवसूरि को एक ही दिन सूरिपद प्रदान किया था। (देखें श्री जिनचंद्रसूरि जीवनवृत्तांत (संलग्न))

ग) 18000 श्लोक प्रमाण संवेगरंगशाला की रचना प्राकृत भाषा में वि. सं. 1125 में की है। इस सत्य को प्र. प्रशांतवल्लभविजयजी ने भी मान्य किया है। खरतरगच्छ की उद्‌भव काल वि. सं. 1285 श्री जगच्चन्द्रसूरिजी से हुआ है।

स्पष्ट है कि संवेगरंगशाला की रचना व तपागच्छ के उद्भव में 160 वर्ष का सुदीर्घ अन्तराल है। फिर भी प्र. प्रशांतवल्लभविजयजी के द्वारा खरतरगच्छीय जिनचंद्रसूरि को जबरदस्ती तपागच्छीय लिखने का आधार क्या?*

घ) खरतरगच्छ की पट्टावली, युगप्रधानाचार्य गुर्वावली आदि ग्रंथों के अनुसार संवेगरंगशाला के कर्त्ता श्री जिनचंद्रसूरि श्री जिनेश्वरसूरि के पट्टधर बने। इन्हीं जिनचंद्रसूरि को शासनदेवी माता पद्मावती ने खरतरगच्छ के हर चौथे पाट पर आरूढ़ सूरि को जिनचंद्रसूरि नाम रखने को कहा। जिसकी परिपालना लगभग 17वीं शताब्दी तक अनवरत चलती रही। (देखें 'खरतरगच्छ पट्टावली' (संलग्न))

च) तपा. श्रीपद्मसूरीश्वर जी ने संवेगरंगशाला का अनुवाद किया था, उन्होंने निष्पक्षता से आ. जिनचंद्रसूरि को खरतरगच्छीय मान्य किया है।

कलिकाल में आप जैसे गीतार्थ आचार्यश्री की तारक उपस्थिति में अप्रमाणिकता से संवेगरंगशाला के रचनाकार खरतरगच्छीय श्री जिनचंद्रसूरि को प्र. प्रशांत वल्लभ विजयजी द्वारा तपागच्छीय लिखने का दुस्साहस कैसे हुआ है! पूज्यवर आप जैसे मूर्धन्य शास्त्रवेत्ता 'पक्षपाता न मे' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए निष्पक्षता से प्रमाणिक तथ्यों को ध्यान में रखकर आचार्य जिनचंद्रसूरि को खरतरगच्छ के हैं यह इस सत्य प्रमाणित इतिहास पर आपश्री स्वीकृति की मोहर लगाएँगे।

जिनाज्ञा आदि साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाओं में संवेगरंगशाला के कर्त्ता खरतरगच्छीय आचार्य श्री जिनचंद्रसूरि हैं। ऐसा स्पष्टीकरण प्रकाशित हो जाने से भविष्य में पुनः गलत इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होगी। आपश्री के द्वारा निष्पक्षता एवं सत्यप्रियता से दोनों ही गच्छों में सौमनस्यता की प्रतिष्ठा होगी।

सभी चारित्रात्माओं को यथोचित् वन्दन/अनुवंदन।

यथायोग्य कार्य विदित करें। अन्यथा अनुचित के लिए क्षमायाचना।

प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा।

गुरुचरणरज्

जिनपीयूषसागरसूरिः

* 'तपागच्छ' यह चान्द्रकुल का नामांतरण ही है, 'पाप पडल परिहरो' में इस अपेक्षा से चान्द्रकुल में हुए जिनचंद्रसूरि को तपागच्छीय लिखा है, ऐसा समझना चाहिए।-संपादक

महाप्रज्ञ आचार्य श्रीजिनचंद्रसूरि

'संवेगरंगशाला' के रचनाकार आचार्य जिनचंद्रसूरि एक विश्रुत व्यक्तित्व एवं उदात्त चिन्तक थे।

जैन धर्म के प्रभावापन्न आचार्यों में ये एक हैं।

अर्हन्नति के उन्नयन में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही।

जीवन–वृत्त

आचार्य जिनचंद्रसूरि का जीवन–वृत्त अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया है। प्राप्त शोध–संदर्भों में मात्र इनकी साहित्यिक सेवाओं का उल्लेख किया गया है। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार से आचार्य जिनेश्वरसूरि के पट्ट पर आसीन हुए। इन्हें सभी विद्वानों ने महागीतार्थ आचार्य के रूप में स्वीकार किया है। इन्हें अष्टादश नाममाला आदि ग्रंथ कण्ठस्थ थे। सर्वशास्त्रों में इनकी पारंगतता थी। (युगप्रधानाचार्य गुर्वावली, पृष्ठ 6)

साहित्य

आचार्य जिनचंद्रसूरि ने सं. 1125 में संवेगरंगशाला जैसे महान ग्रंथ की रचना की। जिसका श्लोक–परिमाण 18000 है। यह ग्रंथ भव्य जीवों के लिए मोक्ष महल का सोपान है। इन्होंने जावालिपुर/जालौर में श्रावकों की सभा में चीवंदण भावस्तव इत्यादि गाथाओं की व्याख्या करते हुए जो सिद्धान्त–संवाद कहे थे, उनका उन्हीं के शिष्य ने लिखकर 300 श्लोक परिमित दिनचर्या नामक ग्रंथ निबद्ध किया जो श्रावक वर्ग के लिए बहुत उपकारी एवं लाभकारी सिद्ध हुआ। (खरतरगच्छ पट्टावली, पत्र 2)

किन्तु यह कृति प्राप्त नहीं हो पायी है। इनके अलावा जिनचंद्रसूरि द्वारा रचित अन्य कृतियाँ भी प्राप्त होती हैं। यथा–पंचपरमेष्ठी नमस्कार फलकुलक, क्षपकशिक्षा प्रकरण, जीवविभक्ति, आराधना पार्श्व स्तोत्र आदि। उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और विशद् ग्रंथ संवेगरंगशाला है। इसकी भाषा प्राकृत है। ग्रंथ 10056/10050 गाथाओं में निबद्ध है। *इसका रचनाकाल वि. सं. 1125 है।

* ग्रंथ अगर 10056/10050 गाथाओं में निबद्ध है तो 18000 श्लोक प्रमाण है ऐसा जो उपर लिखा है वह अप्रमाणिक सिद्ध होता है।–संपादक

यह ग्रंथ उन्होंने अफने लघु गुरु-भाई आचार्य अभयदेव की प्रार्थना से निबद्ध किया था। इस ग्रंथ को साहित्य-संसार में अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

उपर्युक्त कृतित्व की जानकारी परवर्ती विद्वानों ने आचार्य जिनचंद्र की प्रशंसा करते हुए उनकी रचनाओं की भी प्रशंसा की है।

-ःखरतरगच्छ आचार्यों द्वारा संवेगरंगशाला की अनुमोदना के उदाहरणः-

सिर अभयदेवसूरि पत्तकिसती परं भवणे।
जैग कुबोह महारिअ बिहम्ममाणस्सनरव हस्सेव।।
सुयधम्मरस दृढ़त्तं, निव्वत्तियमं गवित्तीहिं।
तमसत्यणवसओ सिर जिण चंदमुनिवरेइमाण।।
मालागारेण व उच्चिअणवरवयण कुसुमाह।
मूलसुय-काणणाओ गुंथित्ता निययभई गुणेण ढंढ।।

-संवेगरंगशाला 10041-34

संवेगरंगशाला के सम्बन्ध में लिखा है कि भुवन में श्रेष्ठ कीर्ति पानेवाले अभयदेवसूरि हुए। जिन्होंने कुबोध रूप महारिपु द्वारा विनष्ट किये जाते नरपति जैसे श्रुतधर्म का दृढ़त्व अंगों की कृतियों द्वारा रक्षण किया। उनकी अभ्यर्थना के वश से जिनचंद्र मुनिवर ने मालाकार की तरह मूलश्रुत रूप उद्यान से श्रेष्ठ वचन कुसुमों का चयन कर अपने मति गुण से दृढ़ गुंथन करके विविध अर्थ-सौरभयुक्त यह आराधना माला रची है।

संवेगरंगशाला विसालसावोवमा कयाजेण।
रागाइवेरिमयमीय-भव्यहजणरक्तखाणनिमित्तं।

-गणधर सार्द्धशतक

आचार्य जिनदत्तसूरि ने स्वयं संवेगरंगशाला की प्रशंसा की। उन्होंने लिखा है कि जिन्होंने (जिनचंद्रसूरि) रागादि शत्रुओं से भयभीत होकर भव्यजनों के रक्षण-निमित्त विशाल किले जैसी संवेगरंगशाला की रचना की।

नतेपितुसंवेगंपुनर्नणां लुप्तनृत्यमिवकालिना।
संवेगरंगशाला जैन विशाला व्यरचि रुचिर।।

-पंचलिंगी विवरण

आचार्य जिनपतिसूरि ने संवेगरंगशाला का स्मरण किया है। उनके अनुसार जिन्होंने अर्थात् जिनचंद्रसूरि ने कलिकाल से जिनका नृत्य लुप्त हो गया था, वैसे मनुष्यों के संवेग को नृत्य कराने के लिए विशाल मनोहर संवेगरंगशाला रची।

संवेगरंगशाला सुरभिः सुरविटपि–कुसुममालेव।
शुचिसरसा मरसरिदिव यस्य कृतिर्जयति कीर्तिरिव।।

– बीजापुर वृतान्त

रिक्त संखपुर–जैन मंदिर की एक भित्ति में सं. 1326 में अंकित एक शिलालेख में लिखा है कि जिनकी (जिनचंद्रसूरि) कृति संवेगरंगशाला सुगंधित कल्पवृक्ष की कुसुममाला जैसी, पवित्र सरस गंगानदी जैसी और उनकी कीर्ति जैसी जयवंती है।

तस्याभूतां शिष्यो, तत्प्रथमः सूरिराज जिनचंद्रः।
संवेगरंगशालां, व्यधितकथां यो रसविशालाम्।।
वृहन्नमस्कारफलंनंदीतुलोकसुधाप्रपाम्।
चक्रे क्षपकशिक्षां च, यः संवेगविवृद्धये।।

– अभयकुमार चरित काव्य

उपाध्याय चंद्रतिलक के अनुसार सूरिराज जिनचंद्र ने हम विशाल श्रोता लोगों के लिए अमृत प्रपा जैसी 'संवेगरंगशाला' कथा की और वृहन्नमस्कारफल तथा संवेग की विवृद्धि के लिए 'क्षपक शिक्षा' की रचना की थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उक्त उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि आचार्य जिनचंद्रसूरि ने विविध धार्मिक साहित्य की संरचना की थी, जिनमें संवेगरंगशाला/आराधना नाममाला ग्रंथ विशिष्ट है।

प्रतिबोध

आचार्य जिनचंद्रसूरि ने अपने प्रभाव से अनेक लोगों को जैन बनाया। यति श्रीपाल ने लिखा है कि आचार्य जिनचंद्रसूरि ने श्रीमाल और महत्तियाण जातियों को पुनः प्रतिबोध देकर जैन बनाया।

– जैन शिक्षा प्रकरण, उद्धृत–ओसवाल वंश, पृष्ठ 38

समय-संकेत

जिनचंद्र का ग्यारहवीं सदी की उत्तरार्ध से बारहवीं सदी के पूर्वार्ध तक रहा है। इनकी लिखी 'संवेगरंगशाला' कृति सं. 1125 की है। उसी के आधार पर ये समय-संकेत किया गया है।

शासन नायक भगवान महावीर स्वामी के बाद

खरतरगच्छ पट्टावली

क्र.	नाम.	विशेष
1.	आर्य सुधर्मास्वामी	भ. महावीर के पाट के पहले पट्टधर
2.	आर्य जम्बूस्वामी	अन्तिम केवली
3.	आर्य प्रभवस्वामी	
4.	आर्य शय्यंभव	दशवैकालिक सूत्र के रचयिता
5.	आर्य यशोभद्र	
6.	आर्य संभूतविजयजी	
7.	आर्य भद्रबाहु स्वामी	अंतिम चतुर्दश पूर्वधर
8.	आर्य स्थूलीभद्रस्वामी	
9.	आर्य महागिरी	
10.	आर्य सुहस्तिसूरि	
11.	आर्य सुस्थितसूरि	क्रोड़ बार सूरिमंत्र का जाप कर कोटिक गण प्रारंभ किया
12.	आर्य इन्द्रदिन्न सूरि	
13.	आर्य दिन्नसूरि	
14.	आर्य सिंहगिरि	जाति स्मरण ज्ञान के धारक
15.	आर्य वज्रस्वामी	वज्रशाखा प्रारंभ – 10 पूर्वों के ज्ञाता
16.	वज्रसेनाचार्य	
17.	श्री चंद्रसूरि	चंद्रकुल की उत्पत्ति
18.	समन्त चन्द्रसूरि	
19.	देवसूरि	
20.	प्रद्योतनसूरि	
21.	मानदेवसूरि	लघुशान्ति के कर्त्ता
22.	मानतुंगसूरि	भक्तामर स्तोत्र के रचयिता
23.	वीरसूरि	श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने वीर सं. 980-वल्लभीपुर में सर्वशास्त्र लिपिबद्ध करवाये।

क्र. नाम.	विशेष
24. जयदेवसूरि	
25. देवानंदसूरि	
26. विक्रमसूरि	
27. नरसिंहसूरि	
28. समुद्रसूरि	
29. मानदेवसूरि	
30. विबुधदेवसूरि	
31. जयानंदसूरि	
32. रविप्रभसूरि	
33. यशोभद्रसूरि	
34. विमलचंद्रसूरि	
35. देवसूरि	सुविहित पक्ष चालू
36. नेमिचंद्रसूरि	
37. उद्योतनसूरि	84 गच्छ स्थापनकर्त्ता
38. वर्धमानसूरि	धरणेन्द्र की आराधना कर सूरिमंत्र शुद्ध करवाया
39. जिनेश्वरसूरि	खरतर विरुद धारक
40. जिनचंद्रसूरि	वि.सं. 1125 में संवेगरंग शाला की रचना की। हर चौथे पाट पर जिनचंद्रसूरि रखने का पद्मावतिदेवी ने कहा।
41. अभयदेवसूरि	नवांगटीकाकार, स्थंभन पार्श्वनाथ को प्रगट किया
42. जिनवल्लभसूरि	संघ पट्टक रचना, 10 बागडियों को प्रतिबोध, खरतर मधुकर शाखा प्रारंभ हुई।
43. युगप्रधान जिनदत्तसूरि	प्रथमदादा–विक्रमसंवत् 1204 जिन शेखराचार्य से रुद्रपल्ली खरतर शाखा निकली
44. मणिधारी जिनचंद्रसूरि	द्वितीय दाता–मस्तक में मणि
45. जिनपति सूरि	
46. जिनेश्वरसूरि	वि. सं. 1280 आपके समय लघुखरतर शाखा निकली।

क्र. नाम.	विशेष
47. जिनप्रबोधसूरि	
48. जिनचंद्रसूरि	कलिकाल केवली, 4 राजाओं को प्रतिबोध
49. जिनकुशलसूरि	प्रकटप्रभावी तीसरे दादा 50 हजार नूतन जैन बनाए
50. जिनपद्मसूरि	
51. जिनलब्धिसूरि	
52. जिनचंद्रसूरि	
53. जिनोदयसूरि	आपके समय में वि.सं. 1422 बेगड़शाखा निकली
54. जिनराजसूरि	
55. जिनभद्रसूरि	आपके समय में वि.सं. 1461 में जिन वर्चन सूरि से पिपलिया खरतर शाखा प्रारंभ-इसी शाखा के अन्तर्गत वि.सं. 1566 में श्री जिन देवसूरि से आद्यपक्षीय शाखा प्रारंभ हुई।
56. जिनचंद्रसूरि	
57. जिनसमुद्रसूरि	
58. जिनहंससूरि	
59. जिनमाणिक्यसूरि	
60. जिनचंद्रसूरि	चौथे दादा-अकबर प्रतिबोधक*
61. जिनसिंहसूरि	वि.सं. 1612 में भाव हर्ष गणि से भाव हर्षीय खरतर शाखा का उद्भव
62. जिनराजसूरि	सं. 1686 जिनसागरसूरि से लघु आचर्यीय खरतर शाखा प्रारंभ
63. जिनरत्नसूरि	
64. जिनचंद्रसूरि	
65. जिनसौख्यसूरि	
66. जिनभक्तिसूरि	

*** ''जिनचंद्रसूरिजी 'अकबर प्रतिबोधक' थे या हीरविजयसूरिजी'' यह जानने के लिए पढ़ें हमारी पुस्तक 'अकबर प्रतिबोधक कौन ?'-संपादक**

क्र. नाम.	विशेष
67. प्रीतिसागरजी	
68. वाचानाचार्य अमृतधर्मजी	
69. महोपाध्याय क्षमाकल्याणजी	1872 सं. कत्थाई वस्त्र यहाँ से चालू, शिथला चार देख परमसंवेगी वैरागी साधु हुए
70. धर्मानन्दजी म.	
71. राजसागरजी	प्रकाण्ड पण्डित
72. ऋद्धिसागरजी	
73. गणाधीश्वरसुखसागरजी	वि.सं. 1925 से 'सुखसागर समुदाय'
74. गणाधीश भगवानसागरजी	
75. गणाधीश छगनसागरजी	52 उपवास कर कालधर्म
76. गणाधीश त्रैलोक्यसागरजी	
77. जिनहरिसागरसूरि	
78. जिनआनंदसागरसूरि	
79. जिनकवीन्द्रसागरसूरि	
80. गणाधीश हेमेन्द्रसागरजी	
81. जिनउदयसागरसूरि	
82. जिनमहोदयसागरसूरि	

पत्र नं. 1 की समीक्षा

इस प्रथम पत्र में आचार्य श्री ने 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' पृ. 6 के आधार पर आ. जिनचंद्रसूरिजी को आ. जिनेश्वरसूरिजी का पट्टधर बताया तथा 'संवेगरंगशाला,' 'गणधर सार्द्धशतक', 'पंचलिंगी प्रकरण' बीजापुर वृत्तांत तथा अभयकुमार चरित्र काव्य के प्रमाण दिये थे। **उनसे इतना ही सिद्ध होता है कि संवेगरंगशाला के कर्ता आ. जिनचंद्रसूरिजी थे।**

इन प्रमाणों के अनुसार ''**आ. जिनचंद्रसूरिजी, आ. जिनेश्वरसूरिजी के पट्टधर और संवेगरंगशाला के कर्ता थे**'' **ऐसा सिद्ध होता है, जो सर्वमान्य है, उसमें हमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन इन प्रमाणों से उनके खरतरगच्छीय होने की सिद्धि नहीं होती है।** अंत में उन्होंने खरतरगच्छ पट्टावली का प्रमाण दिया है, जिसमें जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' बिरुद धारक बताया है। वह पट्टावली अर्वाचीन है तथा 15-16वीं शताब्दी में शुरु हुई अपने गच्छ की मान्यतानुसार लिखी गयी है।[*1] तथा पुरातत्त्वाचार्य जिनविजयजी ने इन पट्टावलियों को अनैतिहासिक मानी है।[*2] अतः उससे जिनचंद्रसूरिजी का खरतरगच्छीय होना सिद्ध नहीं होता है।

---

*1 खरतरगच्छ के प्राचीन ग्रंथों में 'खरतर' बिरुद की बात ही नहीं है। विशेष के लिये देखें – पृ. 14 से 30

*2 देखें पृ. 31 से 35

पत्र नं.2

पूज्यपाद गीतार्थ गच्छाधिपति आचार्य देवेश **श्रीविजयजयघोषसूरीश्वरजी** म.सा. आदि ठाणा यथायोग्य वन्दन/अनुवंदन स्वीकारें।

आप श्री का वपुरत्न रत्नत्रय की आराधना शासन प्रभआवना के अनुकूल होगा । देव गुरु कृपा एवं आपश्री के असीम अनुग्रह से अत्र सर्व कुशल मंगल वर्त्त रहा है। वर्षावास का प्रत्येक आयोजन स्व- पर कल्याणार्थ सिद्ध हुआ होगा। आपश्री की निश्रा में अपूर्व आनंद वर्त्त रहा होगा।

वर्षावास प्रारंभ में श्रावण वदि पक्ष में एक पत्र आपश्री की सेवा प्रेषित किया था। उस पत्र का विषय था '**सवेगरंगशाला**' के कर्त्ता अर्हन्नीति के उन्नायक **खरतरगच्छीय आचार्यश्री जिनचंद्रसूरि** को प्र. प्रशांत वल्लभ विजयजी के द्वारा **पाप पडल परिहरों** में तपागच्छीय उल्लेखित करना। इस विषय से सम्बन्धित प्रमाणिक प्रमाण भिजवाएँ थे। उसका प्रत्युत्तर अभी भी अपेक्षित है।

इस पत्र के साथ लेखक पण्डित लालचंद्र भगवान गांधी बड़ौदा वालों का लेख श्रीजिनचंद्रसूरिजी की श्रेष्ठ रचना 'संवेगरंगशाला आराधना' भिजवा रहे हैं। उन्होंने भी ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध करके कहा है कि संवेगरंगशाला के रचनाकार श्री जिनचन्द्रसूरि खरतरगच्छीय है। उन्होंने इस लेख के पेज नं. 12 पर लिखा है कि आचार्यदेव विजय मनोहरसूरि के शिष्य श्री हेमेन्द्रविजयजी ने श्री जिनचंद्रसूरि के साथ तपागच्छीय विशेषण लगाया है। जो अप्रमाणिक है।

पूज्यवर आपश्री जैसे गीतार्थ आचार्य प्रवर के श्रीचरणों में करबद्ध निवेदन है कि इस तरह के अनुचित अप्रमाणिक असत्य इतिहास के विरुद्ध आप श्री की न्यायसंगत कार्यवाही की जरुरत है। ताकि सभी गच्छ /परंपरा के आपसी समन्वय, सौहार्दमय भावनाएँ सदैव विकसित होती रहे।

अनुचित/अन्यथा लिखने में आया है तो मिच्छामि दुक्कड़ं! पूर्व व वर्त्तमान पत्र के प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा को अविलंबता से पूर्ण करोगे। स्वाध्याय की प्रसादी जरुर भिजवाएँ।

पुनश्च सुखशाता पृच्छा ! सहवर्ती चारित्रात्माओं को यथायोग्य वन्दना-नुवन्दना।

शेष शुभ !

जिन महोदय सागर सूरि चरणरज

जिन पीयूषसागर सूरि

स्थल- अजमेर (दादावाड़ी) 22-10-2016

श्री जिनचन्द्रसूरिजी की श्रेष्ठ रचना
संवेगरंगशाला आराधना
(संक्षिप्त परिचय)
ले. पं. लालचंद्र भगवान् गांधी, बड़ौदा

(सुविहित मार्ग प्रकाशक आचार्य जिनेश्वरसूरिजी के पट्टधर श्रीजिनचंद्रसूरिजी हुए। उनका विस्तृत परिचय तो प्राप्त नहीं होता। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में इतना ही लिखा है कि 'जिनेश्वरसूरि ने जिनचंद्र और अभयदेव को योग्य जानकर सूरिपद से विभूषित किया और वे श्रमण धर्म की विशिष्ट साधना करते हुए क्रमशः युगप्रधान पद पर आसीन हुए।

आचार्य जिनेश्वरसूरि के पश्चात् सूरिश्रेष्ठ जिनचंद्रसूरि हुए जिनके अष्टादश नाममाला का पाठ और अर्थ साङ्गोपाङ्ग कण्ठाग्र था, सब शास्त्रों के पारंगत जिनचंद्रसूरि ने अठारह हजार श्लोक परिमित संवेगरंगशाला की सं. 1125 में रचना की। यह ग्रंथ भव्य जीवों के लिए मोक्ष रूपी महल के सोपान सदृश हैं।

जिनचन्द्रसूरि ने जावालिपुर में जाकर श्रावकों की सभा में 'चीवंदण मावस्सय' इत्यादि गाथाओं की व्याख्या करते हुए जो सिद्धान्त संवाद कहे थे उनको उन्हीं के शिष्य ने लिखकर 300 श्लोक परिमित दिनचर्या नामक ग्रंथ तैयार कर दिया जो श्रावक समाज के लिए बहुत उपकारी सिद्ध हुआ। वे जिनचंद्रसूरि अपने काल में जिन-धर्म का यथार्थ प्रकाश फैलाकर देवगति को प्राप्त हुए।

आपके रचित पंच परमेष्ठी नमस्कार फल कुलक, क्षपक-शिक्षा प्रकरण, जीव-विभक्ति, आराधना, पार्श्व स्तोत्र आदि भी प्राप्त हैं।

संवेगरंगशाला अपने विषय का अत्यन्त महत्वपूर्ण विशद ग्रंथ है। जिसका संक्षिप्त परिचय हमारे अनुरोध से जैन साहित्य के विशिष्ट विद्वान पं. लालचन्द्र भ. गांधी ने लिख भेजा है। इस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होना अति आवश्यक है। – सं.)

श्री जिनशासन के प्रभाव, समर्थ धर्मोपदेशक, ज्योतिर्धर गीतार्थ जैनाचार्यों में श्रीजिनचंद्रसूरिजी का संस्मरणीय स्थान है। मोक्षमार्ग के आराधक, मुमुक्षु-जनों के परम माननीय, सत्कर्त्तव्य-परायण जिस आचार्य ने आज से नौ सौ वर्ष पहले-विक्रम सं. 1125 में प्राकृत भाषा में दस हजार 53 गाथा प्रमाण संवेगमार्ग-प्रेरक

संवेगरंगशाला आराधना की श्रेष्ठ रचना की थी, जो (900) नौ सौ वर्षों के पीछे विक्रमसंवत् 2025 में पूर्णरूप से प्रकाश में आई है, परम आनन्द का विषय है।

बड़ौदा राज्य की प्रेरणा से सुयोग्य विद्वान चीमनलाल डा. दलाल एम.ए. ईस्वी सन् 1916 के अन्तिम चार मास वहीं ठहर कर जेसलमेर किल्ले के प्राचीन ग्रंथ-भंडार का अवलोकन बड़ी मुश्किल से कर सकें। वहाँ की रिपोर्ट कच्ची नोंध व्यवस्थित कर प्रकाशित कराने के पहिले ही वे ईस्वी सन् 1917 अक्टोबर मास में स्वर्गस्थ हुए।

आज से 50 वर्ष पहिले-ईस्वी सन् 1920 अक्टोबर में बड़ौदा-राजकीय सेन्ट्रल लाइब्रेरी (संस्कृत पुस्तकालय) में 'जैन पंडित' उपनाम से हमारी नियुक्ति हुई, और विधिवशात् सद्गत ची. डा. दलाल एम. ए. के अकाल स्वर्गवास से अप्रकाशित वह कच्ची नोंध-आधारित 'जेसलमेर दुर्ग-जैन ग्रंथभण्डार-सूचीपत्र' सम्पादित-प्रकाशित कराने का हमारा योग आया। दो वर्षों के बाद ईस्वी सन् 1923 में उस संस्था द्वारा गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज नं. 21 में यह ग्रंथ बहुत परिश्रम से बम्बई नि. सा. द्वारा प्रकाशित हुआ है। बहुत ग्रंथ गवेषणा के बाद उसमें प्रस्तावना और विषयवार अप्रसिद्ध ग्रंथ, ग्रंथकृत-परिचय परिशिष्ट आदि संस्कृत भाषा में मैंने तैयार किया था। उसमें जैसलमेर दुर्ग के बड़े भण्डार में नं. 183 में रही हुई उपर्युक्त संवेगरंगशाला (28½X2½ साईज) 347 पत्रवाली ताड़पत्रीय पोथी का सूचन है। वहाँ अंतिम उल्लेख इस प्रकार हैः-

''इति **श्रीजिनचंद्रसूरि**कृता तद्विनेय श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्यसमभ्यर्थित-गुणचन्द्रगणि प्रतिर्यत्कृ(संस्कृ)ता जिनवल्लभगणिना संशोधिता **संवेगरंगशाला**भिधानाराधना समाप्ता।

सं. 1207 वर्षे ज्येष्ठ सुदि 10 गुरौ अद्यह श्रीवटपद्रके दंड. श्रीवोसरि प्रतिपत्तौ **संवेगरंगशाला** पुस्तकं लिखितमिति।''

-स्व. दलाल ने इसकी पीछे की 27 पद्योवाली लिखानेवाले की प्रशस्ति का सूचन किया है, अवकाशाभाव से वहाँ लिखी नहीं थी।

जे. भां. सूचीपत्र में 'अप्रसिद्ध ग्रंथ-ग्रंथकृत्परिचय' कराने के समय मैंने 'जैनोपदेशग्रंथाः' इस विभाग में पृ. 38-39 में 'संवेगरंगशाला' के संबंध में अन्वेषण पूर्वक संक्षिप्त परिचय सूचित किया था। उसकी रचना सं. 1125 में हुई थी। लि. प्रति सं. 1207 की थी। रचना का आधार नीचे टिप्पणी में मैने मूलग्रंथ

की अर्वाचीन से. ला. की ह. लि. प्रति से अवतरण द्वारा दर्शाया था-

''विक्कमनिवकालाओ समइक्कंतेसु वरिसाण।
एक्कारमसु सएसु पणवीस समहिएसु।।
निष्पत्तिं संपत्ता एसाराहण त्ति फुडपायडपयत्था।''

भावार्थ- विक्रमनृपकाल से 1125 वर्ष बीतने के बाद स्फुट प्रगट पदार्थवाली यह आराधना सिद्धि को प्राप्त हुई।

इसके पीछे मैंने बृहट्टिप्पणिका का भी संवाद दर्शाया था-'संवेगरङ्गशाला 1125 वर्ष **नवाङ्गाभयदेववृद्ध भ्रातृजिनचंद्रीया** 10053''

मैंने वहाँ संस्कृत में संक्षेप में परिचय कराया था कि 'आराधनेत्यपराह्वेयं **नवाङ्गवृंत्तकाराभयदेवसूरेरम्यर्थनया** विरचिता। विरचयिता चायं जिनेश्वरसूरेर्मुख्यः शिष्योऽभयदेवसूरेश्च वृद्धसतीर्थ्यः।'

अभयदेवसूरि पर टिप्पणी में मैंने उसी संवेगरंगशाला की से. ला. की ह. लि. प्रति से पाठ का अवतरण वहाँ दर्शाया था-

''सिरिअभयदेवसूरि त्ति पत्तकित्ती परं भवणे।।(10041)

जेण कुबोह महारिउ विहम्ममाणस्स नरवइस्सेव।
सुयम्मस्स दढत्तं, निव्वत्तियमंगवित्तीहिं।। (10042)

तस्सब्भत्थणवसओ सिरिजिणचंदमुनिवरेण इमाण।
मालागारेण व उच्चिणिऊण वरवयणकुसुमाइं।।(10043)

मूलसुय-काणणाओ, गुंथित्ता नियमइगुणेण दढं।
विविहत्थ-सोरभभरा, निम्मवियाराहणामाला।।(10044)''

भावार्थ - भक्त में श्रेष्ठ कीर्ति पानेवाले श्री अभयदेवसूरि हुए। जिसने कुबोध रूप महारिपु द्वारा विनष्ट किये जाते नरपति जैसे श्रुतधर्म का दृढ़त्व अंगों की वृत्तियों द्वारा किया। उनकी अभ्यर्थना के वश से श्री जिनचन्द्र मुनिवर ने मालाकार की तरह, मूलश्रुत रूप उद्यान से श्रेष्ठ वचन-कुसुमों का उच्चुंटन कर, अपने मतिगुण से दृढ़ गुंथन करके विविध अर्थ-सौरभ-भरपूर यह आराधनामाला रची है।

इसके पीछे मैंने वहाँ सूचन किया है कि ''पाश्चात्यैरनेकैर्ग्रन्थकारैरस्यः कृतेः

संस्मरणमकारि।'' इसका भावार्थ यह है कि–इस संवेगरंगशाला कृति का संस्मरण, पीछे होनेवाले अनेक ग्रंथकारों ने किया है। इसका समर्थन करने के लिए मैंने वहाँ (1) गुणचन्द्रगणि का महावीरचरित, (2) जिनदत्तसूरि का गणधरसार्धशतक, (3) जिनपतिसूरि का पंचलिंगीविवरण (4) सुमतिगणि की गणधरसार्धशतक वृत्ति, (5) संघपुर मंदिर–शिलालेख, (6) चन्द्रतिलक उपाध्याय का अभयकुमार चरित तथा (7) भुवन हित उपाध्याय के राजगृह–शिलालेख में से–अवतरण टिप्पणी में दर्शाये थे, वे इस प्रकार है–

श्रीगुणचंद्र गणिने विक्रम संवत् 1139 में रचित प्राकृत महावीरचरित में प्रशंसा की है कि–

''संवेगरंगसाला न केवलं कव्वविरयणा जेण।
भव्वजणविम्हयकरी विहिया संजम–पवित्ती वि।।''

भावार्थ – जिसने (श्री जिनचन्द्रसूरि ने) सिर्फ संवेगरंगशाला काव्य–रचना ही नहीं की, भव्यजनों को विस्मय करानेवाली संयमप्रवृत्ति भी की थी।

(2)

श्रीजिनदत्तसूरिजी ने विक्रम की बारहवीं शताब्दी–उत्तरार्ध में रचित प्रा. गणधरसार्धशतक में प्रशंसा की है कि–

संवेगरंगसाला विसालसालोवमा कया जेण।
रागाइवेरिभयभीय–भव्वजणरक्खण निमित्तं।।''

भावार्थ– जिसने (श्रीजिनचंद्रसूरिजी ने) रागादि वैरियों से भयभीत भव्यजनों के रक्षण–निमित्त विशाल किला जैसी संवेगरंगशाला की।

(3)

श्रीजिनपतिसूरिजी द्वारा विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में रचित पंचलिंगी–विवरण सं. में प्रशंसा की है कि–

''नर्तयितुं संवेगं पुनर्नृणां लुप्तनृत्यमिव कलिना।
संवेगरङ्गशाला येन विशाला व्यरचि रुचिरा।।''

भावार्थः– जिसने (श्रीजिनचंद्रसूरिजी ने), कलिकाल से जिसका नृत्य लुप्त हो गया था, वैसे मानो मनुष्यों के संवेग को नृत्य कराने के लिए विशाल मनोहर संवेगरंगशाला रची।

(4)

विक्रम संवत् 1295 में सुमतिगणि ने गणधरसार्धशतक की सं. बृहद्वृत्ति में उल्लेख किया है कि–

''पश्चाज्जिनचंद्रसूरिवर आसीद् यस्याष्टादशनाममाला सूत्रतोऽर्थतश्च मनस्यासन् सर्वशास्त्रविदः। येनाष्टा(?) दशसहस्त्रप्रमाणा संवेगरङ्गशाला मोक्षप्रासादपदवी भव्यजजन्तूनां कृता। येन जावालिपुरे दू(ग)तेन श्रावकाणामग्रे व्याख्यानं 'चीवंदणमावस्सय' इत्यादि गाथायाः कुर्वता सिद्धान्तसंवादाः कथितास्ते सर्वे सुशिष्येण लिखिताः शतत्रय-प्रमाणो दिनचर्याग्रंथः श्राद्धानामुपकारी जातः।''

(यह पाठ मैंने बडौदा-जैनज्ञानमंदिर-स्थित श्रीहंसविजयजी मुनिराज के संग्रह की अर्वाचीन ह. लि. प्रति से उद्घृत कर दर्शाया था)

भावार्थ :– पीछे (श्रीजिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के अनन्तर) श्रीजिनचंद्र सूरिवर हुए। सर्वशास्त्रविद् जिसके मन में 18 नाममालाएँ सूत्र से और अर्थ से उपस्थित थीं। जिसने दस हजार गाथा प्रमाण संवेगरंगशाला भव्यजीवों के लिए मोक्ष प्रासाद-पदवी की। जावालिपुर में गए हुए जिसने श्रावकों के आगे 'चीवंदणमावस्सय' इत्यादि गाथा का व्याख्यान करते हुए सिद्धान्त के संवाद कहे थे, उन सबको सुशिष्य ने लिख लिए, तीन सौ श्लोक-प्रमाण 'दिनचर्या' नामक ग्रंथ श्रावकों के लिए उपकारी हो गया।

(5)

रिक्त संघपुर-जैन मंदिर की भित्ति में लगे हुए प्रायः सं. 1326 (?) के अपूर्ण शिलालेख की नकल स्व. बुद्धिसागरसूरिजी की प्रेरणा से 'बीजापुर-वृत्तान्त'' के लिए मैंने 54 वर्ष पहिले उद्धृत की थी, उसमें यह पद्य है–

संवेगरङ्गशाला सुरभिः सुरविटपि-कुसुममालेव।
शुचिसरसाऽमरसरिदिव यस्य कृतिर्जयति कीर्तिरिव।।

भावार्थ– जिसकी (श्रीजिनचंद्रसूरिजी की) कृति संवेगरंगशाला सुगन्धि कल्पवृक्ष की कुसुममाला जैसी और पवित्र सरस गंगानदी जैसी, और उनकी कीर्ति जैसी जयवती है।

उनकी परम्परा के चंद्रतिलक उपाध्याय ने वि.सं. 1312 में रचे हुए सं.

अभयकुमार रचित काव्य में दो पद्य हैं कि-

"तस्याभूतां शिष्यौ, तत्प्रथमः सूरिराज जिनचंद्रः।
संवेगरङ्गशालां, व्यधित कथां यो रसविशालाम्।।
बृहन्नमस्कारफल, श्रोतृलोकसुधाप्रपाम्।
चक्रे क्षपकशिक्षां च, यः संवेगविवृद्धये।।"

भावार्थ- उनके (श्रीजिनेश्वरसूरिजी के) दो शिष्य हुए। उनमें प्रथम सूरिराज जिनचंद्र हुए; जिसने रसविशाल श्रोता लोगों के लिये अमृत-परब जैसी संवेगरंगशाला कथा की, और जिसने बृहन्नमस्कारफल तथा संवेग की विवृद्धि के लिये क्षपकशिक्षा की थी।

राजगृह में विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी का जो शिलालेख उपलब्ध है, उसमें उनके अनुयायी भुवनहित उपाध्याय ने संस्कृत प्रशस्ति में श्रीजिनचंद्रसूरिजी की संवेगरंगशाला का संस्मरण इस प्रकार किया है-

"ततःश्रीजिनचन्द्राख्यो बभूव मुनिपुंगवः।
संवेगरङ्गशालां यश्चकार च बभार च।।"

भावार्थ- उसके बाद (श्रीजिनेश्वरसूरिजी के पीछे) श्रीजिनचंद्रनामके श्रेष्ठ सूरि हुए, जिसने संवेगरंगशाला की, और धारण-पोषण की।

-उत्तमोत्तम यह संवेगरंगशाला ग्रंथ कई वर्षों के पहिले श्रीजिनदत्तसूरि-ज्ञानभंडार, सूरत के तीन हजार पद्य-प्रमाण अपूर्ण प्रकाशित हुआ था। दस हजार, तिरेपन गाथा प्रमाण परिपूर्ण ग्रंथ **आचार्यदेवविजयमनोहरसूरि शिष्याणु मुनि परम-तपस्वी श्रीहेमेन्द्रविजयजी** और पं. बाबूभाई सवचन्द के शुभ प्रयत्न से संशोधित संपादित होकर, विक्रम सं. 2025 में अणहिलपुर पत्तनवासी झवेरी कान्तिलाल मणिलाल द्वारा मोहमयी मुम्बापुरी से पत्राकार प्रकाशित हुआ है। मूल्य साढ़े बारह रूपया है। गत सप्ताह में ही संपादक मुनिराज ने कृपया उसकी 1 प्रति हमें भेंट भेजी है।

इस ग्रंथ के टाइटल के ऊपर तथा समाप्ति के पीछे कर्त्ता श्रीजिनचंद्रसूरिजी का विशेषण तपागच्छीय छपा है, घट नहीं सकता।* 'तपागच्छ' नामकी प्रसिद्धि

* **तपागच्छ चान्द्रकुल का ही नामान्तरण है, इस अपेक्षा से अर्थघटन किया जा सकता है।**
-संपादक

सं. 1285 से श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी से है, और इस ग्रंथ की रचना वि. सं. 1125 में अर्थात् उससे करीब डेढ़ सौ वर्ष पहले हुई थी। और वहाँ गुजराती प्रस्तावना में इस ग्रंथकार श्रीजिनचंद्रसूरिजी को समर्थ तार्किक महावादी श्री सिद्ध सेन दिवाकर सूरिजी कृत संमतितर्क ग्रंथ पर असाधारण टीका लिखनेवाले पू. आचार्यदेव श्रीअभयेदवसूरिजी महाराज के वडील गुरुबन्धु सूचित किया, वह उचित नहीं है। इस संवेगरंगशाला की प्रान्त प्रशस्ति में स्पष्ट सूचन है कि वे अंगों की वृत्ति रचनेवाले श्रीअभयदेवसूरिजी के वडील गुरुबंधु थे, उनकी अभ्यर्थना से इस ग्रंथ की रचना सूचित की है।

अभयदेवसूरिजी ने अङ्गों (आगम) पर वृत्तियाँ विक्रम संवत् 1120 से 1128 तक में रची थी, प्रसिद्ध है।

इस संवेगरंगशाला के कर्त्ता ने अन्त में 10026 गाथा से अपनी परम्परा का वंशवृक्ष सूचित किया है। उसमें चौवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के अनन्तर सुधर्मास्वामी, जम्बूस्वामी, प्रभवस्वामी, शय्यंभव स्वामी की परम्परारूप अपूर्व वंशवृक्ष की, वज्रस्वामी की शाखा में हुए श्रीवर्धमानसूरिजी का वर्णन 10034-35 गाथा में किया है। उनके दो शिष्य 1. जिनेश्वरसूरि और 2. बुद्धिसागरसूरि का परिचय 10036 से 10039 गाथाओं में कराया है-

'तस्साहाए निम्मलजसधवलो सिद्धिकामलोयाणं।
सविसेसवंदणिज्जो य, रायणा थो(थे)रप्पवग्गोव्व।।10034।।

कालेणं संभूओ, भयवं सिरिवद्धमाण मुणिवसभो।
निप्पडिम पसमलच्छी-विच्छड्डाखंड-भंडारो।।10035।।

ववहार-निच्छयनय व्व, दव्व-भावत्थय व्व धम्मस्स।
परमुन्नइजणगा तस्स, दोण्णि सीसा समुप्पण्णा।। 10036।।

पढमो सिरिसूरिजिणेसरो त्ति, सूरो व्व जम्मि उइयम्मि।
होत्था पहाऽवहारो, दूरंत-तेयस्सि चक्कस्स।।10037।।

अज्ज वि य जस्स हरहास-हंसगोरं गुणाण पब्भारं।
सुमरंता भव्वा उव्वहंति रोमंचमंगेसु।।10038।।

बीओ पुण विरइय-निउण-पवर-वागरण-पमुह-बहुसत्थो।
नामेण बुद्धिसागर-सूरित्ति अहेसि जयपयडो।।10039।।

तेसिं पय-पंकउच्छंग-संग-संपत्त परम-माहप्पो।
सिस्सो पढमो जिणचंदसूरि नामो समुप्पन्नो।।10040।।
अन्नो य पुन्निमाससहरोव्व, निव्वविय-भव्व-कुमुयवणो।।'

(गाथा 10041 से 10044 तक पहिले दर्शाया है।)

भावार्थ- उन (वज्रस्वामी) की शाखा में काल-क्रम से निर्मल उज्ज्वल यशवाले, सिद्धि चाहने वाले लोगों के लिए राजा द्वारा स्थविर आत्मवर्ग की तरह (?) विशेष वंदनीय, अप्रतिम प्रशमलक्ष्मीवैभव के अखंड भण्डार, भगवान श्रेष्ठ श्रीवर्धमानसूरिजी हुए। उनके व्यवहारनय ओर निश्चयनय जैसे अथवा द्रव्यस्तव और भावस्तव जैसे धर्म की परम उन्नति करने वाले दो शिष्य हुए। उनमें प्रथम श्रीजिनेश्वरसूरि सूर्य जैसे हुए। जिसके उदय पाने पर अन्य तेजस्वि-मंडल की प्रभा का अपहरण हुआ था। जिसके हर-हास और हंस जैसे उज्जवल गुणों के समूह को स्मरण करते हुए भव्यजन आज भी अंगों पर रोमांच को धारण करते हैं।

और दूसरे, निपुण श्रेष्ठ व्याकरण प्रमुख बहुशास्त्रकी रचना करने वाले बुद्धिसागरसूरि नाम से जगत् मे प्रख्यात हुए।

उनके (दोनों के) पद पंकज और उत्संग-संग से परम माहात्म्य पानेवाला प्रथम शिष्य जिचंद्रसूरि नामवाला उत्पन्न हुआ। ओर दूसरा शिष्य अभयदेवसूरि पूर्णिमा के चन्द्र जैसा, भव्यजनरूप कुमुदवन को विकम्बर करनेवाला हुआ। (इसके पीछे का 10041 से 10044 तक गाथा का सम्बन्ध उपर आ गया है।)

10045 गाथा में ग्रंथकार ने सूचित किया है कि-श्रमण मधुकरों के हृदय हरनेवाली इस आराधनामाला (संवेगरंगशाला) को भव्यजन अपने सुख (शुभ) निमित्त विलासी जनों की तरह सर्व आदर से अत्यन्त सेवन करें। 10046 से 10054 गाथाओं में कृतज्ञताका और रचना स्थलका सूचन किया है कि - 'सुगुण मुनिजनों के पद-प्रणाम से जिसका भाल पवित्र हुआ है, ऐसे सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी गोवर्धन के सुत विख्यात् जज्जनाग के पुत्र जो सुप्रशस्त **तीर्थयात्रा** करने से प्रख्यात हुए, असाधारण गुणों से जिन्होंने उज्ज्वल विशाल कीर्ति उपार्जित की है। **जिनबिंबों की प्रतिष्ठा कराना, श्रुतलेखन** वगैरह धर्मकृत्यों द्वारा आत्मोन्नति करनेवाले, अन्य जनों के चित्त को चमत्कार करनेवाले, जिनमत-भावित बुद्धिवाले **सिद्ध** और **वीर** नामवाले श्रेष्ठियों के परम साहाय्य और आदर से यह रचना की है। इस आराधना की रचना से हमने जो कुछ कुशल (पुण्य) उपार्जन

किया, उससे भव्यजन, जिन **वचन की परम आराधना को प्राप्त करें।** छत्रा वल्लिपुरी में जेज्जयके पुत्र पासनाग के भुवन में **विक्रमनृप के काल से 1125 वर्ष व्यतीत होने** पर स्फुट प्रकट पदार्थवाली यह आराधना सिद्धि को प्राप्त हुई है। इस रचना को, विनय-नय-प्रधान, समस्त गुणों के स्थान, **जिनदत्त गणि नामक शिष्य** ने प्रथम पुस्तक में लिखी । संमोह को दूर करने के लिए गिनती से निश्चय करके इस ग्रंथ में **तिरेपन गाथा से अधिक दस हजार गाथाएँ स्थापित की हैं।**

अन्त में संस्कृत के गद्य में उल्लेख है कि, श्रीजिनचंद्र सूरि कृत, उनके शिष्य प्रसन्नचन्द्राचार्य-समभ्यर्थित, गुणचन्द्र गणि-प्रतिसंस्कृत और जिनवल्लभगणि द्वारा संशोधित संवेगरंगशाला नाम की आराधना समाप्त हुई।

अन्त में प्रति-पुस्तक लिखने का समय संवत् 1207 (सं. 1203 नहीं) और स्थान वटपद्रक में (अर्थात् इस बडौदा में समझना चाहिये।) प्रकाशित आवृत्ति में दंडश्रीवासरे प्रतिपत्तो छपा है, वहाँ दडश्रीवोसरि-प्रतिपत्तो होना चाहिए, मैंने अन्यत्र दर्शाया है। (देखें, जे.भां. सूचीपत्र- गा. ओ.सि.नं. 21 पृ. 21) 'वटपद्र (बड़ौदा) का ऐतिहासिक उल्लेखों' हमारा 'ऐतिहासिक लेख संग्रह' सयाजी साहित्यमाला क्र. 335 वगैरह।

ग्रंथ निर्दिष्ट नाम- वर्धमानसूरिजी की संवत् 1055 में रचित उपदेशपद-वृत्ति, जिनेश्वरसूरिजी की जावालिपुर में सं. 1080 में रचित अष्टकप्रकरणवृत्ति, प्रमालक्ष्म आदि, तथा बुद्धिसागरसूरिजी का सं. 1080 मं रचित व्याकरण (पंचग्रन्थी) और अभयदेवसूरिजी की सं. 1120 से 1128 में रचित स्थानांग वगैरह अंगों की वृत्तियों की प्राचीन प्रतियों का निर्देश हमने 'जेसलमेर-भंडार-ग्रंथसूची' (गा. ओ. सि. नं. 21) में किया है, जिज्ञासुओं को अवलोकन करना चाहिए।

पाठकों को स्मरण रहे कि, इस संवेगरंगशाला आराधना रचने वाले श्रीजिनचंद्रसूरिजी के गुरुवर्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने गुजरात में अणहिलवाड़ पत्तन (पाटण) में दुर्लभराज राजा की सभा में चैत्यवासियों को वाद में परास्त किया था, 'साधुओं को चैत्य में वास नहीं करना चाहिये, किन्तु गृहस्थों के निर्दोष स्थान (वसति) में वास करना चाहिए' ऐसा स्थापित किया था। उपर्युक्त निर्णय के अनुसार जिनेश्वरसूरिजी के प्रथम शिष्य जिनचंद्रसूरिजी ने इस ग्रंथ की रचना पूर्वोक्त गृहस्थ के भवन में ठहर कर की थी। उपर्युक्त घटना का उल्लेख जिनदत्तसूरिजी के प्रा. गणधरसार्धशतक में, तथा उनके अनेक अनुयायियों से अन्यत्र प्रसिद्ध किया

है, जो जेसलमेर भंडार की ग्रंथसूची (गा.ओ.सि.नं.21), तथा अपभ्रंशकाव्यत्रयी (गा.ओ.सि.नं. 27) के परिशिष्ट आदि के अवलोकन से ज्ञात होगा। **खरतरगच्छ वालों की मान्यता यह है कि, उस वाद में विजय पाने से महाराजा ने विजेता जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' शब्द कहा या विरुद दिया। इसके बाद उनके अनुयायी खरतरगच्छ वाले पहचाने जाते हैं। दुर्लभराज का राज्य समय वि. सं. 1065 से 1078 तक प्रसिद्ध है तो भी खरतरगच्छ की स्थापना का समय सं. 1080 माना जाता है।**

संवेगरंगशालाकार इस जिनचंद्रसूरिजी की प्रभावकता के कारण खरतरगच्छ की पट्ट-परंपरा में उनसे चौथे पट्टधर का नाम 'जिनचंद्रसूरि' ऱखने की प्रथा है।

आराधना-शास्त्र की संकलना

प्रतिष्ठित पूर्वाचार्यों से प्रशंसित इस संवेगरंगशाला आराधना ग्रंथ अथवा आराधना शास्त्र को संकलता श्रेष्ठ कवि श्रीजिनचंद्रसूरिजी ने परम्परा-प्रस्थापित सरल सुबोध प्राकृत भाषा में की, उचित किया है। प्रारम्भ में शिष्टाचार-परिपालन करने के लिए विस्तार से मंगल, अभिधेय, संबंध, प्रयोजनादि दर्शाया है। ऋषभादि सर्व तीर्थाधिप महावीर, सिद्धों, गौतमादि गणधरों, आचार्यों, उपाध्यायों और मुनियों को प्रणाम करके सर्वज्ञकी महावाणी को भी नमन किया है। प्रवचन की प्रशंसा करके, निर्यामक गुरुओं और मुनियों को भी नमस्कार किया है। सुगति-गमन की मूलपदवी चार स्कन्धरूप यह आराधना जिन्होंने प्राप्त की, उन मुनियों को वन्दन किया और गृहस्थों को अभिनन्दन दिया (गा. 14), मजबूत नाव जैसी यह आराधना भगवती जगत् में जयवंती रहो, जिस पर आरूढ होकर भव्य भविजन रौद्र भव-समुद्र को तरते हैं। वह श्रुतदेवी जयवती है कि, जिसके प्रसाद से मन्दमति जन भी अपने इच्छित अर्थ निस्तारण में समर्थ कवि होते हैं। जिन के पद-प्रभाव से मैं सकल जन-श्लाघनीय पदवी को पाया हूँ, विबुधजनों द्वारा प्रणत उन अपने गुरुओं को मैं प्रणिपात करता हूँ। इस प्रकार समस्त स्तुति करने योग्य शास्त्र विषयक प्रस्तुत स्तुतिरूप गजघटाद्वारा सुभटकी तरह जिसमें प्रत्यूह (विघ्न)-प्रतिपक्ष विनष्ट किया है, ऐसा मैं स्वयं मन्दमति होने पर भी बड़े गुण-गणसे गुरु ऐसे सुगुरुओं के चरण-प्रसाद से भव्यजनों के हित के लिए कुछ कहता हूँ।(19)

भयंकर भवाटवी में दुर्लभ मनुष्यत्व और सुकुलादि पाकर, भावि भद्रपन से,

भयके शेषपन से, अत्यन्त दुर्जय दर्शन-मोहनीय के अबलपन से, सुगुरु के उपदेश से अथवा स्वयं कर्म ग्रंथि के भेद से, भारी पर्वत नदी से हरण किये जाते लोगों को नदी-तट का प्रालंब (प्रकृष्ट अवलम्बन) मिल जाय, अथवा रंकजनों को निधान प्राप्त हो जाय, अथवा विविध व्याधि-पीड़ित जनों को सुवैद्य मिल जाय, अथवा कुएँ के भीतर गिरे हुए को समर्थ हस्तावलंब मिल जाय; इसी तरह सविशेष पुण्यप्रकर्ष से पाने योग्य, चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्ष को जीतने वाले, निष्कलंक परम (श्रेष्ठ) सर्वज्ञ-धर्म को पाकर, अपने हितकी ही गवेषणा करनी चाहिए। वह हित ऐसा हो कि, जो अहित से नियम से (निश्चय से) कभी भी, किससे भी, और कभी भी बाधित न हो। वैसा अनुपम अत्यन्त एकान्तिक परम हित (सुख) मोक्ष में होता है, और मोक्ष कर्मों के क्षय से होता है और कर्मक्षय, विशुद्ध आराधना आराधित करने से होता है। इसलिए हितार्थी जनों को आराधना में सदा यत्न करना चाहिए; क्योंकि उपाय के विरह से उपेय (प्राप्त करने योग्य साध्य) प्राप्त नहीं हो सकता।

आराधना करने के मनवालों को उस अर्थ को प्रकट करने वाले शास्त्रों का ज्ञान चाहिए। इसलिए 'गृहस्थों और साधुओं दोनों विषयक इस आराधना शास्त्र को मैं तुच्छ बुद्धि वाला होने पर भी कहूँगा। आराधना चाहने वाले को चाहिए कि वह मन,वचन काया इस त्रिकरण का रोध करे।'

इस आराधना शास्त्र में (1) परिकर्म-विधान (2) परगण-संक्रमण (3) ममत्वव्यच्छेद और (4) समाधि-लाभ नामवालेचार स्कन्ध (विभाग) हैं।

पहले (1) **परिकर्म-विधान** में (1) अर्ह (2) लिङ्ग, (3) शिक्षा, (4) विनय, (5) समाधि, (6) मनोऽनुशास्ति, (7) अनियत विहार, (8) राजा, (9) परिणाम साधारण द्रव्यके 10 विनियोग स्थानों, (10) त्याग, (11) मरण-विभक्ति-17 प्रकार के मरणों पर विचार, (12)अधिकृत मरण, (13) सीति (श्रेणी), (14) भावना और (15) संलेखना इस प्रकार के 15 द्वारों को विविध बोधक दृष्टान्तों से स्पष्ट रूप में समझाया है।

दुसरे (2) **परगण संक्रमण** स्कन्ध (विभाग) में (1) दिशा, (2) क्षामणा, (3) अनुशास्ति, (4) सुस्थित गवेषणा, (5) उपसंपदा, (6) परीक्षा, (7) प्रतिलेखना, क(8) पृच्छा, (9) प्रतीज्ञा, (10)

इस प्रकार दस द्वारों को विविध दृष्टान्तों से स्पष्टरूप में समझाया है।

तीसरे (3) **ममत्वव्युच्छेद** स्कन्ध (विभाग) में (1) आलोचनाविधान, (2)

शय्या, (3) संस्तारक, (4) निर्यामक, (5) दर्शन, (6) हानि, (7) प्रत्याख्यान, (8) खामणा-क्षमापना, (9) क्षमा इस तरह नौ द्वारों को विविध दृष्टान्तों से स्पष्ट समझाया है।

चोथे (4) **समाधि-लाभ** नामक स्कन्ध (विभाग) में (1) अनुशास्ति, (2) प्रतिपत्ति, (3) सा(स्मा)रणा, (4) कवच, (5) समता, (6) ध्यान, (7) लेश्या, (8) आराधना-फल और (9) विजहना द्वार में अनेक ज्ञातव्य विषय समझाये गये हैं।

- इसके (1) अनुशास्ति द्वार में त्याग करने योग्य 18 अठारह पापस्थानकों के विषय में, (2) त्याग करने योग्य 8 आठ प्रकार के मदस्थानों के विषय में, (3) त्याग करने योग्य क्रोधादि कषायों के विषय में, (4) त्याग करने योग्य 5 पाँच प्रकार के प्रामद के विषय में, (5) प्रतिबन्ध-त्याग विषय में, (6) सम्यग्त्व - स्थिरता के विषय में, (7) अर्हन् आदि छः की भक्तिमत्ता के विषय में, (8) पंचनमस्कारतत्परता के विषय में (9) सम्यग् ज्ञानोपयोग के विषय में, (10) पंच महाव्रत विषय में, (11) चतुःशरण-गमन, (12) दुष्कृतगर्हा, (13) सुकृतों की अनुमोदना, (14) अनित्य आदि 12 बारह भावना, (15) शील-पालन, (16) इन्द्रिय-दमन, (17) तप में उद्यम और (18) निःशल्यता-नियाण-निदान, माया, मिथ्यात्व-शल्य-त्याग इस प्रकार 18 द्वारों को अन्वय-व्यतिरेक से विविध दृष्टान्तों द्वारा विवेचन करके अच्छी तरह से समझाया गया है।

इसके प्रथम स्कन्ध के परिणाम द्वार में श्रावकों की 11 प्रतिमाओं के अनन्तर साधारण द्रव्य के 10 विनियोग स्थान दर्शाये हैं, विचारने समझने योग्य हैं; अन्य 7 क्षेत्रों में द्रव्यवपन करने का उपदेश है। आज से 29 वर्ष पहले मैंने 1 लेख 'सुशील जैन महिलाओनां संस्मरणो' मुंबई और मांगरोल जैन सभा के सुवर्ण महोत्सव अंक के लिए गुजराती में लिखा था, वह संवत् 1998 में प्रकाशित हुआ था। और सयाजी राव ग्रंथमाला पुष्प 331 में हमारे ऐतिहासिक लेख संग्रह से (क. 10, 331 से 347 में) सं. 2019 में प्राच्यविद्यामंदिर द्वारा महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, बड़ौदा से प्रकाशित है। उसमें मैंने इस संवेगरंगशाला में से श्रमणी और श्रावक, श्राविका, स्थानों के लिए द्रव्य-विनियोग वक्तव्य दर्शाया था। साथ में कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य के स्वोपज्ञ विवरण वाले संस्कृत योगशास्त्र से भी परामर्श सूचित किया था। इस संवेगरंगशाला की रचना विक्रमसंवत् 1125 में, और श्रीहेमचन्द्राचार्य का जन्म विक्रमसंवत् 1145 में (बीस वर्ष पीछे) हुआ था,

प्रसिद्ध है

संवेगरंगशाला में परिणामद्वार में आयुष्यपरिज्ञान के जो 11 द्वारों (1) देवता, (2) शकुन, (3) उपश्रुति, (4) छाया, (5) नाड़ी, (6) निमित्त, 7) ज्योतिष, 8) स्वप्न, 9) अरिष्ट, 10) यन्त्र-प्रयोग और, 11) विद्याद्वार दर्शाये हैं। इसी तरह श्रीहेमचंद्राचार्य ने अपने संस्कृत योगशास्त्र में (पाँचवें प्रकाश में) काल-ज्ञान का विचार विस्तार से दर्शाया है। तुलनात्मक दृष्टि से अभ्यास करने योग्य हैं।

पाटण और जेसलमेर आदि के जैन ग्रंथ भण्डारों में आराधना-विषयक छोटे-मोटे अनेक ग्रंथ हैं, सूचीपत्र में दर्शाये हैं। इन सबका प्राचीन आधार यह संवेगरंगशाला आराधनाशास्त्र मालूम होता है। वर्तमान में, अन्तिम आराधना कराने के लिए सुनाया जाता आराधना प्रकीर्णक, चउसरणपयन्ना और उ. विनयविजयजी म. का पुण्य प्रकाश स्तवन इत्यादि इस संवेगरंगशाला ग्रंथ का 'ममत्व-व्युच्छेद' 'समाधि-लाभ' विभाग का संक्षेप है- ऐसा अवलोकन से प्रतीत होगा।*

दस हजार से अधिक 53 प्राकृत गाथाओं का सार इस संक्षिप्त लेख में दिग्दर्शन रूप सूचित किया है। परम उपकारक इस ग्रंथ का पठन-पाठन, व्याख्यान, श्रवण, अनुवाद आदि से प्रसारण करना अत्यन्त आवश्यक है, परमहितकारक स्वपरोपकारक है।

आशा है, चतुर्विध श्रीसंघ इस आराधना शास्त्र के प्रचार में सब प्रकार से प्रयत्न करके महसेन राजा की तरह आत्महित के साथ परोपकार साधेंगे। मुमुक्षु जन आराधना रसायन से उनसे अजरामर बने-यही शुभेच्छा।

संवत् 2027 पोषवदि 3 गुरु

(मकर संक्रान्ति)

बड़ी बाड़ी, रावपुरा, बडौदा (गुज.)

लालचन्द्र भगवान् गांधी

(नियुक्त - 'जैनपण्डित' बड़ौदा राज्य)

* शायद लालचंद्र जी को ध्यान नहीं था कि आराधना प्रकीर्णक एवं चउसरणपयन्ना पूर्वाचार्यों की कृतियाँ है अन्यथा उन्हें संवेगरंगशाला ग्रंथ के विभाग के संक्षेप के रूप में नहीं बताते। -संपादक

पत्र नं. 2 की समीक्षा

दूसरे पत्र में आचार्य श्री ने लालचंद भगवानदास गांधी का जो प्रमाण दिया है, जिसमें आ. जिनचंद्रसूरिजी 'संवेगरंगशाला' के कर्ता थे, इस बात को सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिये हैं, परंतु उनके खरतरगच्छीय होने का एक भी प्रमाण नहीं दिया है। इतना ही नहीं उसमें तो इस प्रकार लिखा है–*'**खरतरगच्छ वालों की मान्यता यह है** कि उस वाद में विजय पाने से महाराजा ने विजेता जिनेश्वरसूरिजी को 'खरतर' शब्द कहा या बिरुद दिया। इसके बाद उनके अनुयायी खरतरगच्छ वाले पहचाने जाते हैं। **दुर्लभराज का राज्य समय वि. सं. 1065 से 1078 तक प्रसिद्ध है तो भी खरतरगच्छ की स्थापना का समय सं. 1080 माना जाता है।**'

इसमें तो उन्होंने, 'खरतरगच्छ वाले इस प्रकार मानते हैं' ऐसा लिखा है यानि उसमें उनकी खुद की सम्मति नहीं है तथा उन्होंने अंतिम वाक्य में '**तो भी**' शब्द से इतिहास में 1078 तक ही दुर्लभराज का राज्य होना सिद्ध होने पर भी खरतरगच्छ के द्वारा सं. 1080 में दुर्लभराज द्वारा खरतर बिरुद दिये जाने की विसंवादी प्ररूपणा की जाने की बात स्वीकारी है। अतः इस प्रमाण से आ. जिनचंद्रसूरिजी का खरतरगच्छीय होना सिद्ध नहीं होता है।

इस प्रकार सूक्ष्म अवलोकन करने पर उनके दोनों पत्रों में दिये गये प्रमाण अर्वाचीन एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वहीन सिद्ध होते हैं।

---

* देखें पृ. 168

मिशन जैनत्व जागरण द्वारा प्रसारित साहित्य

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित हिन्दी पुस्तक

मूल्य

1. जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा 100/-
2. जैनत्व जागरण 200/-
3. जागे रे जैन संघ 30/-
4. पाकिस्तान में जैन मंदिर 100/-
5. पल्लीवाल जैन इतिहास 100/-
6. दिगंबर संप्रदाय एक अध्ययन 100/-
7. श्रीमहाकालिका कल्प एवं प्राचिन तीर्थ पावागढ़ 100/-
8. अकबर प्रतिबोधक कौन? 50/-
9. इतिहास गवाह है। 30/-
10. तपागच्छ इतिहास 100/-
11. सांच को आंच नहीं 100/-
12. आगम प्रश्नोत्तरी 20/-
13. जगजयवंत जीरावला 100/-

मूल्य

14. द्रव्यपूजा एवं भावपूजा का समन्वय 50/-
15. प्रभुवीर की श्रमण परंपरा 20/-
16. इतिहास के आइने में-नवाङ्गीटीकाकार अभयदेवसूरिजी का गच्छ 100/-
17. जिनमंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता 100/-
18. जहाँ नमस्कार वहाँ चमत्कर 50/-
19. प्रतिमा पूजन रहस्य 300/-
20. जैनत्व जागरण भाग-2 200/-
21. जिनपूजा विधि एवं जिनभक्तों की गौरवगाथा 200/-
22. अनुपमंडल और हमारा संघ 100/-

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित गुजराती पुस्तक

१. મંત્રં સંસાર સારં ૨૦૦/-
૨. જંબૂ જિનાલય શુદ્ધિકરણ ૩૦/-
૩. જાગે રે જૈન સંઘ ૨૦/-
૪. ઘંટનાદ
૫. શ્રુત રત્નાકર
(પૂ.ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. નું. જીવન ચરિત્ર)

भूषण शाह द्वारा संपादित अंग्रेजी पुस्तक

1. Lights 300/-
2. History of Jainism 300/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा लिखित/संपादित

मूल्य

1. समत्वयोग (1996) 100/-
2. अनेकांतवाद (1999) 100/-
3. अणुपेहा (2001) 100/-
4. आणंदा (1999) 50/-
5. सदयवत्स कथानकम् (1999) 50/-
6. संप्रतिनृप चरित्रम् (1999) 50/-
7. दान एक अमृतमयी परंपरा (2012) 310/-

मूल्य

8. हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप (1992) 100/-
9. दोहा पाहुडं (1999) 50/-
10. बाराक्खर कवक (1997) 50/-
11. प्रभुवीर का अंतिम संदेश (2000) 50/-
12. दोहाणुपेहा (संपादित-1998) 50/-
13. तरंगवती (1999) 50/-
14. हरिवंशपुराण -
१५. નંદાવર્ત નું નંદનવન (૨૦૦૩) 50/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा अनुवादित

1. संवेदन की सरगम (2007) 50/-
2. संवेदन की सुवास (2008) 50/-
3. संवेदन की झलक (2008) 50/-
4. संवेदन की मस्ती (2007) 50/-
5. आत्मकथाएँ (संपादित) (2013) 50/-
6. शासन सम्राट(जीवन परिचय) 1999 50/-
7. विद्युत सजीव या निर्जीव (1999) 50/-

प. पू. मुनिराज ज्ञानसुंदरजी म.सा. द्वारा लिखित साहित्य

1. मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास 100/-
2. श्रीमान् लोंकाशाह 100/-
3. हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है 30/-
4. सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली 100/-
5. बत्तीस आगम सूत्रों से मूर्तिपूजा सिद्धि 50/-
6. क्या जैन धर्म में प्रभु-दर्शन-पूजन की मान्यता थी? 50/-

अन्य साहित्य

1. नवयुग निर्माता (पुनः प्रकाशन) (पू.आ.वल्लभसूरि म.सा.) 200/-
2. मूर्तिपूजा (गुजराती-खुबचंदजी पंडित) 50/-
3. लोंकागच्छ और स्थानकवासी (पू. कल्याण वि. म.) 100/-
4. हमारे गुरुदेव (पू. जंबूविजयजी म.सा. का जीवन) 30/-
5. सफलता का रहस्य - सा. नंदीयशाश्रीजी म.सा. 20/-
6. क्या जिनपूजा करना पाप है? (पू.आ. अभयशेखरसूरिजी म.सा.) 30/-
7. जैन शासन की आदर्श घटनाएँ (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.) 30/-
8. उन्मार्ग छोडिए, सन्मार्ग भजीए (पं. शांतिलालजी जैन) 30/-
9. जड़पूजा या गुणपूजा - एक स्पष्टीकरण (हजारीमलजी) 30/-
10. पुनर्जन्म - (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.) 30/-
11. क्या धर्म में हिंसा दोषावह है? 30/-
12. तत्त्व निश्चय (कुए की गुंजार पुस्तक की समीक्षा) --
13. चलो कदम उठाएँ (सं. पू.मु. ऋषभरत्न वि.म.सा.) 50/-
14. जिनमन्दिर ध्वजारोहण विधि-सं. जे.के. संघवी/सोहनलालजी सुराणा

चल रहे कार्य

1. जैन इतिहास (श्री आदिनाथ परमात्मा से अभी तक)
2. सूरि मंत्र कल्प

।। जैन शासन–जैनागम जयकारा।।

संपादित ग्रंथों की सूचि : (प्रकाशनाधीन)

1. जैन दर्शन का रहस्य
2. प्राचीन जैन तीर्थ – अंटाली
3. श्री सराक जैन इतिहास
4. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 1,4,5 (साथ में)
5. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 2,3 (साथ में)
6. जैन स्तोत्र संग्रह
7. जैन नगरी तारातंबोल – एक रहस्य
8. Research on Jainism
9. मिशन जैनत्व जागरण और मेरे विचार
10. जैन ग्रंथ– नयचक्रसार
11. प्राचीन जैन पूजा विधि– एक अध्ययन
12. जैनत्व जागरण की शौर्य कथाएँ
13. जैनागम अंश
14. जैन शासन का मुगल काल और मुगल फरमान
15. जैन योग और ध्यान
16. जैन स्मारकों के प्राचीन अंश
17. યુગ યુગમાં ભળજો જૈન શાસન (ગુજરાતી)
18. मंत्रं संसार सारं (भाग –2) (पुनः प्रकाशन)
19. मंत्रं संसार सारं (भाग –3) (पुनः प्रकाशन)
20. मंत्रं संसार सारं (भाग –4) (पुनः प्रकाशन)
21. मंत्रं संसार सारं (भाग –5) (पुनः प्रकाशन)
22. अज्ञात जैन तीर्थ
23. प्राचीन जैन स्मारकों का रहस्य
24. जैन दर्शन – अध्ययन एवं चिंतन
25. जैन मंदिर शुद्धिकरण
26. सूरिमंत्र कल्प संग्रह

27. अजमेर प्रांत के जैन मंदिर
28. जैनत्व जागरण – 3
29. विविध तीर्थ कल्पों का अध्ययन
30. जैनदेवी महालक्ष्मी–मंत्रकल्प
31. जैन सम्राट संप्रति – एक अध्ययन
32. जैन आराधना विधि संग्रह
૩૩. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૧, ગુજરાતી)
૩૪. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૨, ગુજરાતી)
૩૫. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૩, ગુજરાતી)
૩૬. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૪, ગુજરાતી)
૩૭. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૫, ગુજરાતી)
38. सम्मेतशिखर महात्म्य सार
39. मेवाड़ देश में जैन धर्म
40. જંબૂ શ્રુત એન્સાયક્લોપિડિયા (પૂ. ગુરૂદેવશ્રી ને સમર્પિત શ્રુત પુષ્પ)
41. जैन धर्म और स्वराज्य
42. ચંદ્રોદય (પૂ. સા. ચંદ્રોદયાશ્રીજી મ.સા. નું જીવનકવન)
43. जैन श्राविका शान्तला
44. પૂ. બાપજી મહારાજ (સંઘસ્થવિર આ. ભ. સિદ્ધિસૂરિજી મ.સા.નું ચરિત્ર)
45. મારા ગુરૂદેવ (પૂ. જંબૂવિજયજી મ.સા. નું સંક્ષિપ્ત જીવન દર્શન)
46. જૈન દર્શન અને મારા વિચાર
47. श्री भद्रबाहु संहिता – (आ. भद्रबाहु स्वामी द्वारा निमित्त ज्ञान प्रकरण)
48. પ્રશસ્તિ સંગ્રહ (પ. પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. દ્વારા લખાયેલી પ્રશસ્તિ-પ્રસ્તાવના સંગ્રહ)
49. ગુરૂમૂર્તિ-દેવીદેવતા મૂર્તિ અંગે વિચારણા...

*** नोंध – सभी ग्रंथों का कार्य पूर्ण हो चुका है। सभी ग्रंथ जल्द ही प्रकाशित होंगे।**